सचित्र मासिक
विश्वमित्र
मूल्य
॥=)
विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

DELICIOUS
Lily
BISCUITS
LILY'S CREAM CRACKERS
नव वर्ष तथा अन्य सभी
विशेष शुभ अवसरों के निमित्त
अपने प्रियजनोंको लिलि बिस्कुट
का उपहार देकर तृप्त करें।
सर्वदा ताजा और कुरकुरा
स्वाद व सुगन्धमें अतुलनीय
लिलि ब्राण्ड बार्ली, भारत का
श्रेष्ठ पथ्य और पेय खाद्य
थकावट और सुस्ती दूर
करने में अतुलनीय।
LILY BISCUIT Co.
CALCUTTA BOMBAY
MANUFACTURERS OF THE FAMOUS "LILY BRAND" BARLEY

नवम्बर, १९ ... र्तिक, २०००

स्वयं मिटा अपनी लघु संसृति निज, असीम संसार कर चुका!

अणु-अणु में, कण-कण में मेरे
प्रिय की सुन्दर परछाईं है;
प्रिय की मोहक रूप-माधुरी
दृग-प्यालों में भर आयी है!
कर प्रियको मैं प्यार सहज ही, निखिल विश्वको प्यार कर चुका!
मैं सीमा-विस्तार कर चुका!!

प्रियकी स्मृति, मेरा चिर-बन्धन;
प्रिय की साँसें, हृदय-स्पन्दन;
प्रिय के सुन्दर स्वप्न रँगीले
मेरी आँखों के अक्षय धन!
मैं प्रिय की सीमा में अपनी सीमा एकाकार कर चुका!
मैं सीमा-विस्तार कर चुका!!

—जितेन्द्र कुमार

सम्पादक—
रामाशीष सिंह

नवम्बर, १९४३ वर्ष १२ संख्या २ कार्तिक, २०००

सीमा-विस्तार

मैं सीमा-विस्तार कर चुका !
स्वयं मिटा अपनी लघु संसृति निज, असीम संसार कर चुका!

अणु-अणु में, कण-कण में मेरे
प्रिय की सुन्दर परछाईं हैं;
प्रिय की मोहक रूप-माधुरी
दृग-प्यालों में भर आयी है !
कर प्रियको मैं प्यार सहज ही, निखिल विश्वको प्यार कर चुका!
मैं सीमा-विस्तार कर चुका !!

प्रियकी स्मृति, मेरा चिर-बन्धन;
प्रिय की साँसें, हृदय-स्पन्दन;
प्रिय के सुन्दर स्वप्न रँगीले
मेरी आँखों के अक्षय धन !
मैं प्रिय की सीमा में अपनी सीमा एकाकार कर चुका !
मैं सीमा-विस्तार कर चुका !!

—जितेन्द्र कुमार

सुखमय दाम्पत्य-जीवन

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल०

दाम्पत्य-जीवनके आधारको सुदृढ़ एवं स्थायी बनानेके लिए यौन-सम्बन्ध एक बहुत बड़ा बन्धन है। बिना प्रेमके वासना अथवा मानसिक उत्तेजना हो सकती है, किन्तु बिना वासना या कामनाके प्रेम नहीं हो सकता। अपनी पत्नीके साथ वासनारहित प्रेम करनेवाला व्यक्ति विकृत मस्तिष्कके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। नर-नारी दोनोंके जीवनकी सार्थकताके लिए किसी-न-किसी अंशमें यौन-सम्बन्धकी आवश्यकता है। वासनाहीन प्रेमके द्वारा दाम्पत्य-जीवन सफल नहीं हो सकता। काम-गन्ध-हीन दाम्पत्य-जीवन कुछ अंशोंमें अपूर्ण ही रह जाता है और इस प्रकारके जीवनमें प्रेम-तरु रसके अभावमें अकालमें ही कुम्हलाकर सूख जाता है। कारपेण्टरने लिखा है कि नर-नारीके बीच प्रेमका जो घनिष्ट सम्बन्ध होता है, उसका आधार यदि केवल बौद्धिक एवं नैतिक साम्य होता है और उसमें दैहिक मिलनका एकान्त अभाव होता है, तो इस प्रकारका प्रेम-सम्पर्क कदाचित् ही गम्भीर एवं स्थायी होता है। किसी भी रूपमें दैहिक मिलनका सर्वथा अभाव होनेसे दाम्पत्य-जीवनकी घनिष्ठता उसी प्रकार सूखकर मर जाती है, जिस तरह मिट्टीमें अच्छी तरह न रोपा गया पौधा। इसी सम्बन्धमें एक दूसरे मनीषी विद्वान एच० जी० वेल्सका कथन इस प्रकार है—पुरुषके लिए और नारीके लिए तो अवश्य ही, यौन-मिलन उनके अस्तित्वका एक आवश्यक अङ्ग है। इसके बिना जीवनमें एक अपूर्णता रह जाती है, जीवन-चक्रमें एक विफलता, शक्ति एवं स्फूर्तिमें वास्तविक म्लानता एवं असफलता रह जाती है और मनकी विकृत अवस्थाओंका विकास होता है। इसलिए दाम्पत्य-जीवनको सुखमय बनानेके लिए यौन-सम्बन्धका यथार्थ सन्तुलन होना आवश्यक है। फ्रायडने तो यहां तक लिखा है कि पुरुष-नारीमें यौन-सम्बन्ध नियमित होनेसे किसी प्रकारकी मानसिक व्याधि हो ही नहीं सकती। इसके साथ-साथ हम यह भी कह सकते हैं कि यौन-सम्बन्ध नियमित एवं सन्तुलित होनेसे दाम्पत्य-जीवनमें कलह हो ही नहीं सकता। मानव-जीवनमें दाम्पत्य-प्रेमका स्थान बहुत ऊंचा है। इस प्रेममें ही हमारी समस्त वासनाओंकी सिद्धि निहित है; यहां तक कि भगवत-प्रेमकी उपलब्धि करनेके लिए भी दाम्पत्य-प्रेमकी प्रयोजनीयता अस्वीकार नहीं की जा सकती।

सभी धर्मोंके सन्त-महात्माओंकी जीवनव्यापी साधनाका पर्यवेक्षण करनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि भगवत-प्रेमकी उपलब्धि करनेके लिए दाम्पत्य-सम्बन्धके समस्त बन्धनोंको विच्छिन्न करना आवश्यक है। नारी नरकका द्वार है, इस मतवादके पीछे कोई सत्य निहित नहीं है। नारी या नर, दोनोंमेंसे कोई एक दूसरेके अधःपतनका कारण हो सकता है, यदि उनका प्रेम परस्परको आश्रय करके ऊर्ध्वगामी न हो। दाम्पत्य-प्रेम असफल होनेसे ही दम्पतिके जीवनमें उस दुर्लभ प्रेमकी उन्मादना नहीं रह जाती, जो सोमरसकी तरह हमारी नस-नसमें एक अनिर्वचनीय आनन्दकी रसधारा गभीर रूपमें सञ्चारित कर देती है। संयमहीन देहप्रधान प्रेमको हम प्रेम न कहकर कार्पेण्टरकी भाषामें प्रेमका इतरतत्व कह सकते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि दैहिक-मिलनको अस्वीकार करके दाम्पत्य-प्रेमका कोई अस्तित्व नहीं हो सकता; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि दाम्पत्य-जीवनमें केवल देहसर्वस्व प्रेमके अतिरिक्त और किसी मनोवृत्तिका प्रयोजन नहीं होता, विवाहित जीवनकी परिपूर्णताके लिए। यह सत्य है कि प्रथम यौवनमें नर-नारीके बीच रूपके आकर्षणसे ही काम-तृष्णाजन्य प्रेम होता है, किन्तु यह प्रबल आवेग एक-न-एक दिन अवश्य शिथिल पड़ जाता है। फिर भी विवाह-बन्धन एक अपार्थिव प्रेमके मात्रास्पर्शसे आजीवन सुदृढ़ बना रहता है। क्यों? इसलिए कि दम्पतिके मानसिक जीवनमें एक प्रकारका समन्वय स्थापित हो जाता है। दोनों एक दूसरेके मनोभावसे भली-भांति परिचित हो जाते हैं। यह मानसिक समन्वय ही वैवाहिक-जीवनका मूलाधार है। जो दम्पति रूप एवं सौन्दर्यके आकर्षणपर मुग्ध होकर परस्परके मनोभावके सम्बन्धमें अपरिचित बने रहते हैं, उनका वैवाहिक-जीवन कभी सुदृढ़ नहीं हो सकता। वह एक दिन ताशके घरकी तरह अवश्य छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

केवल जीव-विज्ञानकी दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो विवाहका एकमात्र उद्देश्य सन्तानोत्पादन ही कहा जायेगा। मानव-वंशकी वृद्धि एवं विस्तारके लिए प्रकृतिने

नारीके मनमें सृजनकी जो प्रवृत्ति उत्पन्न की है, उसीकी अदम्य प्रेरणासे नारी नरके साथ दैहिक मिलनके लिए बाध्य होती है। बर्नार्ड शा तो दम्पत्ति-जीवनमें प्रेमकी अपेक्षा इस सृजन-प्रवृत्तिकी ही प्रधानता मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्रकृति केवल वंश-विस्तार चाहती है। व्यक्तिका सुख-स्वाच्छन्द्य अथवा उसके जीवनको आनन्दमय बनाना उसका लक्ष्य नहीं। किन्तु यह बात निम्न स्तरके जीवोंके सम्बन्धमें ही लागू हो सकती है। वहां नर-मादामें दैहिक-मिलन एकमात्र सृजन प्रवृत्तिकी प्रेरणासे ही होता है। मानसिक समन्वयका वहां कोई प्रश्न ही नहीं होता। पशु-पक्षियोंके काम-जीवनमें व्यक्तिगत सुख-दुःखका वह मधुर स्पर्श नहीं, जो मानव-जीवनमें होता है; किन्तु पशुओंमें भी जीवन-सङ्गी या सङ्गिनीकी मृत्यु होनेपर शोक करते देखा जाता है। प्रणयिनीको लेकर प्रतिद्वन्दी प्रणयकांक्षी पशुओंमें विकट द्वन्द्व युद्ध भी बहुधा देखा जाता है। फिर भी इनमें मानसिक शक्ति उतनी विकसित नहीं होती, जितनी मनुष्यमें। मनुष्यका स्थान जीव-जगतमें सर्वश्रेष्ठ होनेसे, उसमें एक व्यक्तित्व एवं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य होता है और उसकी मानसिक शक्ति समुन्नत होती है। अपनी इसी मानसिक शक्तिके द्वारा, दो विपरीत स्वभाववाले स्त्री-पुरुष परस्परकी विरोधी प्रवृत्तियों अथवा प्रकृतिगत विभिन्नताओं-के बीच भी सामञ्जस्य कायम रखते हुए आजीवन एकत्र वास करनेमें समर्थ होते हैं।

वैवाहिक-जीवनको स्थायी एवं सुखमय बनानेके लिए प्रत्येक दम्पतिको परस्परके मनोभावसे परिचित होनेका प्रयत्न करना चाहिये। किन्तु इसमें एक कठिनाई यह है कि पति या पत्नीके लिए एक-दूसरेके मनोजगतका सन्धान लेना उतना सहज नहीं है, जितना यह कहनेमें मालूम होता है। पुरुष और स्त्री परस्परकी विरोधी प्रवृत्तियोंसे एक दूसरेके प्रति आकर्षित होते हैं। पुरुषमें पुंसत्वभाव जितना ही अधिक होगा, स्त्रीमें स्त्रीत्वभाव उतना ही अधिक और दोनोंका साहचर्य्य भी अत्यन्त आवेगपूर्ण एवं प्रगाढ़ होगा। यौन-मिलनका प्रभाव शरीर एवं मन दोनोंपर पड़ता है। इस दृष्टिसे पुरुष और स्त्रीके बीच बहुत बड़ी विभिन्नता है। परस्पर घनिष्ट भावसे संयुक्त होनेपर भी दोनोंके बीच विभिन्नताकी एक दीवार-सी खड़ी है। इसलिए स्त्री और पुरुषके भौतिक स्वभावगत शारीरिक एवं मानसिक वैषम्य-के कारण दोनोंके बीच स्थायी संयोग अत्यन्त कठिन हो जाता है। पुरुष स्वभावसे ही सक्रिय, रूढ़, एवं तार्किक होता है, स्त्री निश्चेष्ट, भाव-प्रवण एवं सहजज्ञान द्वारा अनुप्रेरित। इस प्रकार विवाह दो विभिन्न, किन्तु एक दूसरेके पूरक व्यक्तियोंका साहचर्य्य है। पुरुष और स्त्रीको अपनी इन प्रकृतिजात विशिष्टताओंको लेकर ही दाम्पत्य-जीवनका निर्वाह करना पड़ता है। दोनों परस्परकी इन विशिष्टताओंसे पूर्णतया परिचित होकर ही दाम्पत्य-जीवनके कलह एवं विरोधके बीच भी विवाह-बन्धनको स्थायी एवं जीवन-यात्राको सुखमय बना सकते हैं।

दाम्पत्य-जीवनमें जो कलह एवं विरोध देखे जाते हैं, उनके मूल कारण पति या पत्नीके मनोजगतके गभीर स्तरमें छिपे हुए रहते हैं, जिससे उनका सन्धान पाना सहज नहीं होता। एक दूसरेके सज्ञान मन तक प्रवेश कर सकता है, किन्तु इससे भी परे निर्ज्ञान या अवचेतन मनका जो गोरख-धन्धा है, उसमें प्रवेश करना सहज नहीं। और कलह, विरोध, विवाह-विच्छेद आदिके मूल कारण बहुत कुछ इस अवचेतन मनकी क्रियाशीलताके ऊपर ही निर्भर करते हैं। यही कारण है कि पति और पत्नी परस्पर एक दूसरेके दोषों, त्रुटियों एवं स्वभावगत विभिन्नताओंके प्रति सहिष्णु होते हुए भी सामञ्जस्यपूर्वक जीवन व्यतीत करनेकी चाहे हजार चेष्टा करें; किन्तु फिर भी कभी-कभी कलह अकस्मात् आविर्भूत होकर उनके जीवनको विषमय बना डालता है।

इस दाम्पत्य कलहका एक रूप वह भी होता है, जिसका वर्णन काव्योंमें भावोच्छ्वसित रूपमें किया गया है। नायिकाके रोष-कषायित लोचन एवं मानको प्रेमीके लिए उपभोग्य बताया गया है। प्रेमी-प्रेमिका इस प्रणय-कलह या मान-लीलाके द्वारा प्रेमकी तीव्रताका अनुभव करना चाहते हैं। कृत्रिम कलह एवं विरोधके बीच प्रेमकी उष्णता एवं मिलनकी उत्कण्ठा बहुत बढ़ जाती है। दाम्पत्य कलह यदि इतने हीं तक रह जाय तब तो अवश्य ही वह उपभोग्य हो सकता है, किन्तु चिन्ताका विषय तो यह है कि अनेक समय यह कलह अत्यन्त दुःखद एवं गम्भीर रूप धारण कर लेता है और इसका परिणाम होता है विवाह-विच्छेद। कभी-कभी अति सामान्य कारणको लेकर यह कलह उत्पन्न होता है। इसके अनिष्टजनक परिणामके सम्बन्धमें किसीको आशङ्का भी नहीं होती। फिर भी दोनोंमें पुनर्मिलन सम्भव नहीं होता। दोनों हृदयसे मिलना भी चाहते हैं तो उनके मार्गमें एक बहुत बड़ा व्यवधान होता है—परस्परकी हठ-कारिता। पति चाहता है कि पत्नी अनुतप्त होकर उसके सामने नतमस्तक हो और पत्नी चाहती है कि पहले पति ही

आगे बढ़कर उसका मानभङ्ग करे और मिलनका प्रस्ताव करे। दोनोंके वैवाहिक जीवनके आरम्भके दिनोंपर यदि विचार करें तो अवश्य ही इस बातपर आश्चर्य होगा कि प्रथम यौवनमें जिस प्रेम-देवताकी वेदीपर उन्होंने धन, मान, प्रतिष्ठा सब कुछ उत्सर्ग कर दिये थे और तन, मन, प्राणसे एक हो रहे थे, वह प्रेम न मालूम किस तरह बाढ़के पानीकी तरह देखते-देखते तिरोहित हो गया और उसका सन्धान तक उन्हें नहीं मिला। सामान्य कलहकी आंधीमें ही प्रेमका सुखमय नीड़ उड़ गया और प्रेमकी दुनिया उजड़ गयी।

यहां प्रश्न यह उठता है कि दम्पतिका सुखी वैवाहिक जीवन इस प्रकार सहसा भङ्ग क्यों हो गया? इस प्रश्नका उत्तर देना सहज नहीं है। वैवाहिक जीवनके भङ्ग होनेके अनेक कारण हो सकते हैं। दम्पतिके अवचेतनमें ऐसी अनेक आशा-आकांक्षायें हो सकती हैं,जो उनके मिलनके मार्गमें दुर्लंघ्य बाधाकी सृष्टि करें। दोनोंके यौन-जीवनमें भी बहुत कुछ अन्तर होता है। यौन-जीवनमें पुरुष अपेक्षाकृत सक्रिय होता है। आगे बढ़कर प्रेम-निवेदन करना, प्रणयका प्रस्ताव करना पुरुषकी विशिष्टता होती है। पुरुष प्रेम-पाशमें पड़कर रोता है, सिसकता है, आहें भरता है, पागलकी तरह भटकता फिरता है, विरहकी करुण कविता लिखता है और न मालूम क्या-क्या करता है। पुरुषकी इस प्रेम-वेदना एवं निराश-प्रेमको लेकर अब तक न मालूम कितने सुन्दर विरह-सङ्गीत, उपन्यास एवं कथा-कहानियोंकी सृष्टि हो चुकी है। मगर स्त्रीका यह प्रेम इतना प्रत्यक्ष नहीं होता। यहां कामना-वह्नि हृदयके अन्दर ही चिरधूमायित होती रहती है। यह आग भीतर ही भीतर भले ही अन्तस्तलको विदग्ध कर डाले, मगर मुंहसे एक शब्द भी नहीं निकल सकता। किन्तु नारीके प्रेम-जीवनकी यह निष्क्रियता ही उसका सबसे बड़ा अस्त्र होती है। उसकी यह निष्क्रियता चुम्बककी निष्क्रियताकी तरह होती है। इस निष्क्रियतामें एक दुर्निवार आकर्षण होता है। इसके पीछे एक प्रचण्ड चाञ्चल्य, एक सर्वग्रासी कामना होती है। नारीके नारीत्वका परिपूर्ण विकास उसके प्रेमिका-रूपमें ही हो सकता है। प्रेम नारीके समस्त जीवनको, उसकी सम्पूर्ण सत्ताको, उसके मन-प्राण-आत्माको जिस रूपमें नियन्त्रित करता है, पुरुषके जीवनको उस रूपमें नहीं करता। पुरुष अपनेको प्रेमके राहु-ग्राससे मुक्त कर सकता है। किन्तु नारी प्रेमके राहु-ग्राससे अपनेको सहज ही मुक्त नहीं कर सकती। पुरुष स्रष्टाके रूपमें, कर्मवीरके रूपमें अपनी आशा-आकांक्षाओंकी पूर्ति कर सकता है। पुरुष अपनेको तभी गौरवान्वित बोध करता है, जब कि उसके अन्दर पौरुषका प्रकाश होता है; स्रष्टाकी प्रतिभा एवं कर्म-शक्ति द्वारा अपनेको वह यशस्वी बनाता है। किन्तु नारी अपने अन्दर प्रेमकी करुण, कोमल अभिव्यक्ति देखकर गौरव बोध करती है। प्रेम करनेमें तथा प्रेम-पात्रके समीप अपनेको सम्पूर्ण समर्पित कर देनेमें ही वह गौरव बोध करती है। उसका प्रेमका जीवन जहां अपूर्ण रह जाता है, वहां उसके मनको तृप्ति नहीं होती, वह गौरव बोध नहीं कर सकती। किन्तु पुरुष-नारीके प्रेम-जीवनमें यह पार्थक्य होनेपर भी यह नहीं कहा जा सकता कि पुरुष और नारी दोनोंमें अधिक कामुक कौन है। इस सम्बन्धमें हैवलक इलिसने लिखा है—नारी और पुरुषमें कामुकताका परिमाण प्रायः समान ही होता है। दोनोंमेंसे किसीकी भी यौन-आकांक्षा अपूर्ण रह जानेपर छोटी-छोटी बातोंको लेकर भी विवाद एवं कलह उठ खड़ा होता है। जिस पुरुष या नारीकी यौन-आकांक्षा व्यवहारतः अतृप्त रहती है, उसमें स्नायविक पीड़ाके लक्षण देखे जाते हैं। और इस प्रकारके स्नायविक पीड़ाग्रस्त व्यक्तिके साथ जीवन-यापन करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

मनोविश्लेषण-विद्याके पण्डितोंका कहना है कि नारीमें जननी बननेकी कामना अत्यन्त प्रबल होती है। प्रत्येक नारी एक शिशु-सन्तानकी माता बनने और उसे लाड़-प्यार करनेके लिए लालायित रहती है। स्त्रीमें सन्तान-लाभकी इस आकांक्षाके पीछे दो प्रबल वासनायें काम करती हैं, एक तो यह कि सन्तान-लाभ किये बिना नारीका नारीत्व पूर्ण नहीं होता। वह नारी है, इसका पूर्ण परिचय उसके मातृत्वमें ही मिलता है। सन्तानको उदरमें धारण करना और अपने हृदयके स्नेह एवं स्तन्य-पानसे उसे लालित-पालित करके मनुष्य बनानेमें स्त्रीसुलभ वासनाकी चरम परिणति होती है। दूसरी ओर अपनी सन्तति द्वारा नारी अपनी पुरुषोचित वासनाको चरितार्थ कर सकती है। मनुष्यमात्र कुछ अंशमें उभयलिङ्ग होता है। प्रत्येक पुरुषमें कुछ नारीत्वका अंश और प्रत्येक नारीमें पुरुषका अंश स्वाभाविक रूपमें विद्यमान रहता है। शिशु-वयसमें स्त्रीमें पुरुष बननेकी आकांक्षा रहती है; किन्तु अवस्था बढ़नेपर यह वासना सचेतन मनसे तिरोहित होकर अवचेतन मनमें आश्रय ग्रहण करती है। इस वासनाको यथार्थ रूपमें विकसित होनेका सुयोग नहीं मिलनेपर रोगग्रस्त होनेकी सम्भावना रहती है।

नारी अपनी इस पुरुषोचित वासनाको पुत्र-सन्तान द्वारा चरितार्थ करती है। उसके साथ एकात्मीकरण करके और पुत्रके पौरुषकी उपलब्धि करके माता आत्मतृप्ति लाभ करती है। पतिके साथ एकात्मीकरण द्वारा भी यह वासना चरितार्थ हो सकती है, किन्तु पुत्रके उसके उदरसे उत्पन्न होनेके कारण उसके साथ एकात्मीकरण और भी अच्छी तरह हो सकता है। दूसरी ओर कन्याको गभीर रूपमें प्यार करके माता नारीके प्रति पुरुषके प्रेमका कुछ आस्वाद प्राप्त करती है। इस सम्बन्धमें एक बात और उल्लेखयोग्य है। निम्न श्रेणीके जीवोंमें माता अपने बच्चोंके प्रति तभी तक यत्नशील रहती है, जब तक बच्चा असहाय रहता है। असहाय अवस्थाके दूर होते ही माताका बच्चेके प्रति पहले-जैसा सयत्न भाव नहीं रह जाता। मानवी माताके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है। यहां भी स्त्रीकी मातृत्व-लालसा विशेष रूपमें असहाय शिशु-सन्तानपर ही केन्द्रित रहती है। वयस्क सन्तान अपनी माताकी इस वासनाको तृप्त करनेमें असमर्थ होती है। यही कारण है कि स्त्री एकाधिक सन्तानकी माता बनना चाहती है। बार-बारकी प्रसव वेदनासे उसे विरक्ति नहीं होती।

वैवाहिक जीवनकी एक और बड़ी बाधा है—समकामिता, जिसे अङ्गरेजीमें 'होमो सेक्सुअलिटी' कहते हैं। यह समकामिता सचेतन मनमें दृष्टिगोचर न होकर, अवचेतन मनमें अवदमित रहती है। यह पहले ही कह आये हैं कि प्रत्येक पुरुषमें स्त्रीत्वका भाव एवं प्रत्येक नारीमें पुरुषत्वका भाव कुछ-न-कुछ अंशमें अवश्य विद्यमान रहता है। किन्तु यही भाव जब अस्वाभाविक रूपमें बढ़ जाता है, तब समकामिताकी सृष्टि होती है। किन्तु इस प्रकारकी विपरीत कामवासना क्यों विशेष रूपसे प्रकट होने लगती है, इसके सम्बन्धमें मनो-विश्लेषण विज्ञानने विस्मयजनक आविष्कार किये हैं। मनुष्यके अन्दर काम-वासना कतिपय स्तरोंको अतिक्रमण करती हुई विकास लाभ करती है। साधारण लोगोंकी यह धारणा होती है कि यौन-वासनाकी दृष्टिसे एक शिशु सर्वथा निरीह होता है और काम-वासनाका उन्मेष मनुष्यमें पहले-पहल युवावस्थामें ही देखा जाता है। किन्तु मनःसमीक्षा शास्त्रके पण्डितोंका कहना है कि शैशवावस्थामें भी मनुष्यमें काम-वासना विद्यमान रहती है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति वयस्क मनुष्यकी काम-वासनाकी तरह न होकर अन्य रूपमें होती है। इस स्तरमें पुरुष शिशु अपनी माताको और नारी शिशु अपने पिताको प्यार करके अपनी कामवासनाको चरितार्थ करती है। इस प्रकार यौन-मिलन सम्बन्धी आवश्यकताओंसे ऊर्ध्व माता और बच्चेमें एक प्रकारका संयोग-सूत्र स्थापित हो जाता है। बच्चेका माताके प्रति जो प्रेम होता है, उसमें किञ्चित काम-भावनाका भी आभास पाया जाता है। मनोविश्लेषण विज्ञानने यह भी दिखलाया है कि माताका पुत्रके प्रति जो स्नेह होता है उसमें भी अज्ञातरूपसे यौन-वासना छिपी रहती है। इसी स्नेहके आधारपर आगे चलकर पुत्रको लेकर सास और बहूमें ईर्षा उत्पन्न होती है। दोनों ही पुत्र-प्रेमकी अभिलाषिणी होती हैं, जिससे उनमें प्रतियोगितामूलक ईर्षा उत्पन्न हो जाती है। यही कारण है कि दाम्पत्य कलह बहुधा माताको लेकर केन्द्रित रहता है।

पुत्र अथवा कन्याका माता-पिताके प्रति अवचेतन मनका जो यह प्रेम होता है, इसे मनोविश्लेषण विज्ञानकी भाषामें 'ईडिपस कम्पलेक्स' कहा गया है। यौवन समागमके पूर्व जिन सब स्तरोंसे होकर मनुष्यकी कामवासना विकसित होती है, उनमें एक स्तर यह ईडिपस कम्पलेक्स है। मनुष्यके जीवनमें इस ईडिपस प्रेमका गुरुत्व अत्यधिक है। यूनानके प्रसिद्ध नाट्यकार सोफेल्स के एक नाटकके नायक ईडिपसके सादृश्यपर इस शब्दकी सृष्टि हुई है। नियति देवताके विधानके अनुसार ईडिपसको अपने पिताकी हत्या करके अपनी मातासे विवाह करना पड़ा था। ईडिपस प्रेमके इस स्तरसे होकर मनुष्यको गुजरना पड़ता है, किन्तु यौवनके पूर्व इसका सम्पूर्ण तिरोधान हो जाना आवश्यक है, अन्यथा मानसिक जगतमें विपर्यय होनेकी सम्भावना रहती है। इस ईडिपस प्रेम-प्रवृत्तिके भी कितने ही स्तर होते हैं। पहले माताके प्रति प्रेम, इसके बाद मातृस्थानीया अन्य स्त्रियोंके प्रति—चाची, भाभी, मौसी इत्यादि। दूसरे स्तरमें भगिनीके प्रति अथवा उसीकी समवयस्का अन्य युवतियोंके प्रति, अन्तमें अपने परिवारकी परिधिके बाहर अन्य अनात्मीया स्त्रियोंके प्रति प्रेम। इन सब स्तरोंके प्रभावसे मुक्त होकर मनुष्य जब यौवनको प्राप्त होता है, तब दृढ़ विवाहित जीवनमें प्रवेश करता है। वैवाहिक जीवनमें यदि पूर्वके किसी भी स्तरका न्यूनाधिक प्रभाव बना रहता है, तो इसके परिणामस्वरूप दाम्पत्य जीवनमें कलह उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है। इस ईडिपस प्रेम-प्रवृत्तिसे ग्रस्त पति अपनी पत्नीसे मातृवत् आचरणकी आशा करता है और इस आचरणमें जरा भी त्रुटि होनेपर दाम्पत्य जीवनमें

निरानन्द, चिढ़ और कलहकी सृष्टि होती है। इसके विपरीत पत्नीमें यह ईडिपस प्रेम-प्रवृत्ति होनेपर वह भी अपने पतिसे पितृवत् आचरणकी आशा करती है। बहुतसे मनुष्यों-में जो अपनेको तुच्छ समझनेकी प्रवृत्ति पायी जाती है, उसका मूल कारण भी यह ईडिपस प्रेम-प्रवृत्ति ही है।

फ्रायडका कथन है कि यह ईडिपस प्रेम-प्रवृत्ति जिस प्रकार स्वाभाविक है, उसी प्रकार उसका तिरोधान भी स्वाभाविक रूपमें ही होता है। किन्तु जो लोग दुर्बल मानसिक गढ़नको लेकर जन्म ग्रहण करते हैं, वे इस प्रेमके आकर्षणसे आबद्ध रहते हैं। स्वाभाविक मनुष्योंके भी अवचेतन मनमें सम्भव है कि इसका आभास मिले, किन्तु इसमें कोई तीव्रता नहीं रह जाती। स्नायविक विकार-ग्रस्त मनुष्योंके मनमें भी यह वासना उत्कट रूपमें नहीं देखी जाती, किन्तु अवैध व्यभिचारके रूपमें यह वासना कभी-कभी अवश्य प्रकट हो जाती है।

ईडिपस काम-प्रवृत्ति तिरोहित होनेके साथ-साथ पुरुषमें नारीत्व एवं नारीमें पुरुषत्व देखा जाता है। इस प्रकारकी समकामिता अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती, बल्कि इसकी सहायतासे पुरुष नारीको और नारी पुरुषको अच्छी तरह जान सकती है। यह समकामिता मनुष्यके मनमें किसी विघ्नकी सृष्टि नहीं करती। कारण, पहली बात तो यह कि इसकी शक्ति बहुत क्षीण होती है; दूसरी इस प्रकारकी वासनाकी स्वाभाविक परितृप्तिका मार्ग खुला रहता है। प्रत्येक पुरुष अपनी स्त्री-सुलभ वासनाको अपनी स्त्रीके साथ और प्रत्येक नारी अपनी पुरुषोचित वासनाको अपने पतिके साथ अभिन्न करके सम्पूर्ण भावसे परितृप्त कर सकती है।

वयस्क होनेपर बालक या बालिकामें दमित समकामिता उनके सचेतन मनमें इतर कामिताकी सृष्टि करती है। इसमें केवल अपनी पत्नीसे ही सन्तुष्ट न रहकर पुरुष परस्त्रीके साथ अपनी यौन वृत्तिको चरितार्थ करता है। जो लोग अनेक स्त्रियोंके साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करते हुए व्यभिचार-ग्रस्त होते हैं, उनके अवचेतन मनमें प्रबल दमित समकामिता विद्यमान रहती है। इस प्रकारके पुरुष किसी एक नारीके साथ प्रेम-बन्धनमें स्वाभाविक आनन्द नहीं प्राप्त करते, इसलिए बराबर नूतन प्रेम-पात्रीकी खोजमें रहते हैं। इस प्रकारके पुरुषकी तुलना डोनजुअनसे की जा सकती है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि अवचेतन मनकी अवदमित वासनाओंका प्रकाश स्वाभाविक रूपमें न होकर अन्यान्य रूपोंमें होता है। इस प्रकारके व्यक्तियोंमें सब प्रकारके अभावोंके होते हुए भी स्वाभाविक रूपमें जीवन-यापन करनेकी सामर्थ्य होती है। अवचेतन मनकी अवदमित वासनाओंको उन्नयनकी ओर ले जानेकी इनमें असीम शक्ति होती है। फ्रायडके मतसे साहित्य, सङ्गीत, ललित कला, धर्म आदि यौन प्रवृत्तिके ही महत्तर प्रकाश हैं। किन्तु मुश्किल तो यह है कि किसी व्यक्तिके लिए अपनी किसी अतृप्त वासनाकी प्रचण्ड शक्तिको स्वेच्छासे महत्की ओर ले जाना सम्भव नहीं होता। यह प्रक्रिया हमारे सचेतन मनके सम्पूर्ण अज्ञातरूपमें क्रियाशील होती है। यदि मनुष्यमें अपनी अवदमित वासनाओंको स्वेच्छासे ऊर्ध्वगतिकी ओर ले जानेकी शक्ति होती, तो वह बहुत दुःख, कष्ट एवं मानसिक रोगोंसे परित्राण पा जाता।

वैवाहिक जीवनकी सफलताके लिए जिस प्रकार पुंसत्वकी आवश्यकता है, उसी प्रकार संयमकी भी। दूसरे शब्दोंमें सुव्यवस्थित यौन-जीवनके लिए सच्चरित्रता अनिवार्यरूपमें आवश्यक है। विवाहित जीवनमें यौन मिलनसे निवृत्त रहनेके लिए स्नायविक संतुलन एवं नैतिक शक्ति अपेक्षित है। एक ओर जहां बलपूर्वक काम-प्रवृत्तिका अवदमन स्वस्थ जीवनके लिए हानिकर एवं उद्वेगजनक है, वहां दूसरी ओर सब प्रकार बन्धन रहित यौन सम्बन्ध भी स्वस्थ जीवनके लिए अनिष्टकर है। इसलिए विवाहके पूर्व जिस प्रकार संयम एक आदर्श गुण समझा जाता है, उसी प्रकार विवाहित जीवनमें भी यौन मिलनके वास्तविक आनन्दकी उपलब्धिके लिए संयमित प्रेमकी आवश्यकता है। बिलियार्ड, टेनिस या ब्रिज खेलनेमें जो आनन्द है, उस आनन्दके साथ दम्पतिके प्रेमकी कोई तुलना नहीं हो सकती। यहां पुरुष या स्त्रीको एक सजीव व्यक्तित्वके साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है, जिसकी निजकी इच्छा, अनिच्छा एवं आशा-आकांक्षायें होती हैं। इसलिए इस प्रेममें जो एक माधुर्य होता है, एक प्रकारकी मोहकता एवं उन्मादना होती है,वह तभी तक रहती है, जब तक कि प्रेम-जीवनमें बाधा-बन्धन वर्तमान है। प्रेमको यदि सब प्रकारके बाधा-बन्धनसे मुक्त कर दिया जाय,तो नर-नारीमें परस्परका दुर्वार आकर्षण नहीं रह जायेगा और विवाहित जीवनका अनाविल आनन्द, उसका माधुर्य बहुत कुछ फीका और नीरस हो जायेगा। हक्सलेने ठीक ही कहा है—भोगमें किसी प्रकारका नियन्त्रण नहीं रहनेसे यौन सम्बन्धका प्रगाढ़

अनुराग ही नष्ट नहीं हो जाता, बल्कि अन्तमें यौन मिलन-का आनन्द भी नष्ट हो जाता है। इसलिए वैवाहिक जीवन में यौन सम्बन्धका आधार केवल पशुवत सम्भोग-क्रिया न होकर सौन्दर्यबोधका उसमें समावेश होना आवश्यक है। यह सौन्दर्यबोध ही मनुष्यको पशु-जगतसे पृथक करता है। यौन सम्बन्धको एक उच्च स्तरपर ले जाना होगा। यौन-प्रेमकी अभिव्यक्ति विभिन्न रूपोंमें हो सकती है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि पति और पत्नीमें बौद्धिक संयोग भी हो। जीवनयात्राको सफलरूपमें चलानेके लिए पति और पत्नी दोनोंको वास्तव जगतका व्यापक ज्ञान होना चाहिये। केवल घर-गृहस्थी तक ही स्त्रीके कर्मक्षेत्र को सीमाबद्ध समझना मूर्खता है। जिस प्रेमके पीछे बौद्धिक क्रियाशीलता नहीं होती, वह प्रेम दुर्बल होकर रुग्ण प्रेममें परिणत हो जाता है। केवल वैवाहिक जीवनका आनन्द ही नहीं, बल्कि समाजका भविष्य भी प्रेम एवं ज्ञानके समन्वयपर बहुत कुछ निर्भर करता है।

दाम्पत्य कलहके सम्बन्धमें ऊपर जिन सब कारणोंका उल्लेख किया गया है, उनके सिवाय पति-पत्नीके कतिपय चरित्रगत दोषोंके कारण भी कलह एवं विरोधकी सृष्टि हो सकती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि दोनोंमें सहनशीलता हो, एक दूसरेके विचारोंके प्रति सहिष्णु बनें, और सबसे बढ़कर दोनोंमेंसे एकके लिए वश्य या नमनीय होना आवश्यक है। ऐसा यदि नहीं हो और दोनों अपने हठ एवं दुराग्रहपर डटे रहें, तो दाम्पत्य जीवन कदापि सुखमय नहीं हो सकता। पति और पत्नी दोनोंमें कर्तृत्व एवं आदेशकी भावना होनेसे फिर उस आदेशका पालन कौन करेगा? साधारणतः यह देखा जाता है कि स्त्री वश्य एवं पुरुष क्षमताप्रिय होता है। किन्तु क्षमता प्रयोगका यह अर्थ नहीं कि पति पत्नीकी रुचि, उसकी इच्छा, अनिच्छा एवं उसके व्यक्तित्वका कोई ख्याल ही न करें, उसकी भावनाओंकी सम्पूर्ण उपेक्षा करके अपने विचार एवं भावनाओंको उसके ऊपर जबर्दस्ती लादनेकी कोशिश करें। ऐसा करनेसे गृहस्थीकी गाड़ी अचल हुए बिना नहीं रह सकती।

पति एवं पत्नीको वैवाहिक जीवनकी शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक आवश्यकताओंका ज्ञान नहीं होता। किन्तु दाम्पत्य जीवनके जटिल सम्बन्धके अनिवार्य सिद्धांत एवं कौशलको वे सीख सकते हैं। जो दम्पति अपने विवाहित जीवनसे निराश हो चुके हैं, उन्हें जानना चाहिये कि असफलताका परिहार किया जा सकता है, और वे अपने जीवनको अब भी सफल एवं सुखपूर्ण बना सकते हैं। जिस बुद्धि-बलकी बदौलत मनुष्यने भौतिक जगतपर अपना प्रभुत्व स्थापित किया है, उसके द्वारा वह अपने प्रेम-जीवनको भी सुखमय एवं आनन्दपूर्ण बना सकता है। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि वह इस बातको हृदयङ्गम करे कि प्रेम जीवनके लिए एक आवश्यकता है, विलासिता नहीं। प्रेम जीवनके लिए उतना ही प्रयोजनीय है, जितना बुद्धि एवं ज्ञान। बिना प्रेमके कोई भी मानवीय सम्बन्ध स्थायी नहीं हो सकता। दम्पति अपने प्रेममय जीवनमें जिस प्रेमके आलोकको सर्वत्र विकीर्ण कर देते हैं, वह प्रेम, दाम्पत्य प्रेमकी मज्जा-मज्जामें प्राणरसका सञ्चार कर देता है। जहां एक व्यक्ति अपनेको सबके बीच परिव्याप्त कर देना चाहता है और दूसरा उसके इस आत्मदानको सन्देहकी दृष्टिसे देखता है, वहां वे एकत्र वास करनेके योग्य नहीं। प्रेममें जो दिया जाता है उससे ही वह परिपुष्ट होता है, जो लिया जाता है, उससे नहीं।
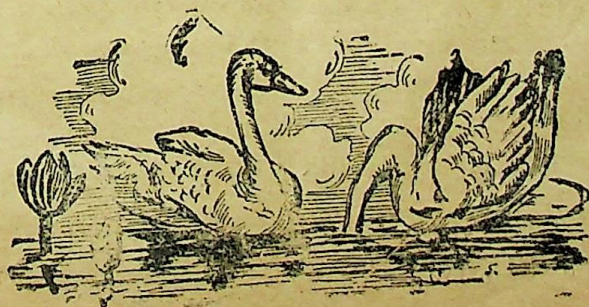
नारी

(१)

तुम चिर-मिलन मधु-यामिनी
सौम्य-शशि समलंकृता श्री
सुकृति सुमन-सुवासिनी हो,
गगन गंगा-स्नात-किरणोंसी
पुनीत विकासिनी हो,
पुण्य-जलधर-धौत—दिविकी सहचरी—द्युति दामिनी।

जगतके सुखमय-सपन नव
निभृत मन्दिर वासिनी हो,
शान्त-सुरधुनि-सी सलोनी
गीतमय-मृदु-हासिनी हो,
तुम नियन्ताकी कला-कृति, काव्यरूपा कामिनी।

तुम चिरन्तन-मुक्ति, तुम हो
दयाकी लघु बूंद सुखकर,
हृदयपर भूगोल और
खगोल ले उतरी धरापर,
तुम चराचर धात्रि, मृदुबाला, प्रमत्ता भामिनी।

रवि विभामय है तुम्हारी
मांगके सिन्दूरसे ही,
तुम अशेष, असीम 'अथ' हो
'इति' प्रणत है दूरसे ही,
स्नेहकी नीहारिका, तुम सत्यकी सहगामिनी।
तुम चिर-मिलन मधु-यामिनी !

(२)

तुम चरममुक्ति, तुम अमर शान्ति !
धो दिया दूधसे रसनाको
तुमने, तब निखरी मधुराई,
भारती छोड़कर कमलासन
वाणीके आसनपर आई,
तब कोटि-कंठका 'प्रणत-घोष' सुनकर स्रष्टाकी मिटी भ्रांति

'जब 'जरा' 'मरण'का तम फैला
जीवनकी सुषमा शेष हुई,
तुम मुस्काई फिर अणु-अणुमें
छाई बसन्तकी सुघराई,
तुमने सोहागकी सुषमासे भर दी वसुधामें अमर-कांति।

युग-युगसे मानव जूझ रहा
है जीवनका संग्राम घोर
थक गया अभागा, हाथोंसे
छूटी आशाकी तुनुक डोर,
जिस ओर तुम्हारी दृष्टि फिरी, हो गयी शेष विषमयी भ्रांति।
तुम चरम-मुक्ति, तुम अमर-शांति !

(३)

तुम भूतलपर स्वर्गीय किरण !
तुम हंसी, खिल उठा नव बसन्त
रोई,—वर्षा आई भूपर।
होठोंमें शान्ति खेलती है
नयनोंमें भरी क्रान्ति दुस्तर
दोनों चरणोंको चूम रहे नत होकर जीवन और मरण !

तुमसे मानवको बोध हुआ
सुषमाका, विकसित यौवनका
उसने जाना अनुपम रहस्य
अपने मचले द्रोही मनका
पारसमणि ! तुमसे छूते ही सोना बन गया लौह-जीवन।

पीयूष मोहिनीके घटसे
सहसा थोड़ा-सा छलक पड़ा,
वह मर्त्यलोकमें गिरा, स्वर्ग
रह गया देखता खड़ा-खड़ा,
हो गया सुधाका विधिगतिसे 'नारी'-स्वरूपमें परिवर्तन।
तुम भूतलपर स्वर्गीय किरण !

(४)

तुम हो अपनेमें पूर्ण, विमल !
दुख भरी तुम्हारी आहोंसे,
महलोंका नाम-निशान मिटा,

वे मिले धूलिमें धूलि बने
क्षणभरमें शेष प्रमाण मिटा,
जग रहा देखता हो—उनको चुपकेसे गया अतीत निगल।
थे ऐसे वीर हंसीमें ही
सारे भूतलको जीत लिया,
सिरपर ढोकर सिंहासनको
इन चरणोंपर उत्सर्ग किया,
तुम अपने सिद्ध-पीठपर ही, अपने गौरवमें रही अचल।
हम तो हैं पथिक—और पथ ही
सब कुछ घर-द्वार हमारा है,
इस आकर्षणकी धारामें
चलता क्या कोई चारा है,
तुम हो प्रकाश, तुम हो आशा, तुम हो जीवन, तुम हो संबल।
तुम कुटियामें भी मुस्काई
तो वहां सिद्धियां निखर पड़ीं,
दिन-रात रमा, वाणी सादर
मुंह जोहा करतीं खड़ी-खड़ी,
रुक गयी तुम्हारे निकट पहुंचकर—काल-चक्रकी गति चंचल
तुम हो अपनेमें पूर्ण, विमल।

(५)

तुम कलामयी, तुम गीतमयी!
हे देवि, तुम्हारे चरणोंका
जब छुम छुम छुम पायल बोला,
तब कविकी नवल कल्पनाने
हौले-हौले घूंघट खोला,
नीरवताको झकझोर, स्वरोंकी मादक उठी हिलोर नयी।
व्याकुल हो श्याम पुकार उठे
'राधे', 'राधे' वंशीवटमें,
वह स्वर है अब तक गूंज रहा
अन्तरके निर्जन पनघटमें,
रस-विह्वलताकी टूटी बांधें, सब ज्ञानग्रन्थियां डूब गयीं।
तुम कलामयी, तुम गीतमयी।

—मोहनलाल महतो।

यह ताज और वह

श्री रामसरन शर्मा

सैकड़ों वर्ष हुए, हिन्दुस्तानके सम्राट शाहजहांकी प्रेयसी, रूपकी खान थी—अनिन्द्य सुन्दरी बेगम मुमताज महल।

न जाने कितने दिन जहांपनाहको और मलकाको प्रेमी और प्रेमिकाकी भांति खोये हुए बीत गये।

पर, मौतके आगे......नहीं मौतके आगे भी बादशाहके प्रेमने हार न मानी। उन्होंने अपनी प्रियतमाकी कब्र पर बनाया संसार-प्रसिद्ध ताजमहल।

सात समुन्दर पारसे लोग इसे देखने आते हैं। ऐसी है उस स्मरणीय प्रेमकी दर्शनीय यादगार।

* * *

और आगरेसे दो सौ मीलपर है कुसमपुर। छोटा-सा गांव। मानों कोई जर्जर, बूढ़ा पथिक राह भटककर, भूल गया हो। और भूलकर, थककर, बैठ रहा हो। थोड़ेसे कच्चे घर खेतोंके बीचमें चुपचाप खड़े हैं। पास ही एक कच्चा-सा जोहड़ और उस जोहड़के पास—

हां, उस जोहड़के पास है कुसमपुरका ताजमहल; एक टूटा-सा, टेढ़ा-सा, ऊबड़-खाबड़ खण्डहर। पर, उस खण्डहरकी पूजा करने गांवकी प्रत्येक बहू और कन्या चैत मासकी दशमीको आती है।

बहुएं प्रार्थना करती हैं कि उन्हें अपने पतिका अटल प्रेम प्राप्त हो और कन्याएं खण्डहर बनानेवाला-सा पति मांगती हैं। ऐसी है उस खण्डहरकी महिमा। ऐसे हैं उसके पूजनेवाले।

और उस टूटे खण्डहरके पीछे प्रेम और विरह—या उसे चिरमिलन कह लीजिये—की कहानी छिपी है, जिसको सुनकर आज भी श्रद्धासे सर झुक जाता है।

बहुत दिन हुए—कहानीका प्रारम्भ हुआ था। गांवमें एक युवक रहता था। सुन्दर, हंसमुख, सैकड़ोंमें एक। कमसे-कम आस-पास उस जैसा कोई न था। गांववाले उसपर जान देते। अल्हड़ युवतियां जब अपने पतिकी कल्पना करतीं, तो उसकी सूरत कुछ कमलसे मिलती-जुलती होती थी। कमल, इस युवकका नाम था। माताएं ऐसा पुत्र मांगतीं, भाई ऐसा भाई चाहते।

तो ऐसा था वह गांवका लाड़ला कमल। एक दिन उसकी बारात चढ़ी। दूर गांवसे वह ब्याहकर लाया—

शर्बतीको। ठीक गुलाबी शर्बत-जैसी सुन्दर और मीठी थी वह नव-वधू। कुसुमपुरमें प्रचलित कहानीके अनुसार वह राधा-सी रूपवती थी। कञ्चन-सा रङ्ग था। काली घटा-से उसके केश थे और बसन्त ऋतुके समान वह मोहक थी। हंसती थी तो फूल झड़ते थे, बोलती तो अमृत। यह है उस अनजाने कहानीकारका बताया उसका चित्र।

गांववाले धन्य हो गये। ऐसा जोड़ा—रति और कामदेव-सा किसीने काहेको देखा था। और सारा गांव मानों इन दोनोंको ही देख-देखकर जीता था।

एक रोज चांदनी रातमें, तारोंकी छायामें, अपनी शर्बती आंखोंसे कमलपर शर्बत उड़ेलते हुए शर्बतीने पूछा—

"भला हम-जैसा प्रेम कभी किसी औरका संसारमें हुआ होगा ?"

कमलने अपनी प्रियाकी हथेली हाथमें दबाकर कहा, "हां, हुआ है।"

"कौन ?" शर्बतीने आश्चर्यसे पूछा। उसकी इन्द्र-धनुष-सी भौंहें और भी खिंच गयी थीं।

"हुए हैं, शर्बती," कमलने धीरे-धीरे कहा, "हमारे-जैसे एक और भी प्रेमी थे, हिन्दुस्तानके बादशाह शाह-जहां और उनकी बेगम मुमताज महल।"

और तब उसने जैसी कुछ भी वह ताजमहलकी कहानी जानता था, बता दी। कहानीको इस देशमें कौन नहीं जानता है ?

आंखें फाड़े शर्बती सुनती रही। अन्त होनेपर उसने कहा, "तो ताजमहल बड़ा सुन्दर होगा ?"

"बहुत।" कमलने जवाब दिया।

शर्बती चुप हो रही।

कमल उसके मनकी बात समझ रहा था। उसने मन-ही-मन हिसाब लगाया, फसल अच्छी हुई थी, लगान जा चुका था। हाथमें रुपये थे।

"चलो ताजमहल देख आयें," उसने कहा।

शर्बती खिल उठी—"सच !"

कमलने मुस्कुराकर कहा, "नहीं, तो क्या झूठ।

दोनों एक दिन आगरे चल दिये।

शर्बतीका मन ताजमहल देखकर भर आया। कितना प्रेम होगा शाहजहां और उनकी बीबीमें।

फिर उसका मन उदास हो गया। बादशाह थे तभी तो अपने प्रेमकी याद छोड़ सके, जो गरीब होते तो क्या करते?

शर्बती अनमनी हो गयी।

दोनों घर लौटे।

पर, रह-रहकर शर्बतीका मन कचोट उठता था। मान लो, वह कल मर जाये तो...पर गरीबोंका प्रेम अमर कैसे हो ? अमरत्व पानेको भी रुपया चाहिये, रुपया !

और एक दिन सचमुच ही शर्बती बीमार पड़ गयी।

कमलने, गांवभरने बड़ी दौड़-धूप की, पर—बेकार।

और तब रोते कमलसे डूबती शर्बतीने हाथ पकड़ कर कहा, "तुम्हें कसम है, यदि रोओ। हमारा प्यार तो अमर है। बादशाहके प्यारकी तरह...।"

कमल बेहाल हो उठा। अपने जाते साथीकी कोमल हथेली दबाकर उसने कहा, "शर्बती, मौतने तुझे मुझसे छीन लिया, पर मैं भी अपने प्यारकी अमर याद बनाऊंगा या मौत मुझे भी जल्दी ही ले जायेगी।"

शर्बतीकी आंखें चमक उठीं, फिर बुझ गयीं।

कमल मृतप्राय होकर गिर पड़ा।

और उसके बाद कमल पागल-सा हो गया। खेत-बैल बेचकर पत्थर-चूना इकट्ठा करके, जोहड़के पास शर्बतीकी यादगार बनाने लगा।

भूख, प्यास, दिन, रात भूलकर।

गांववाले उसपर तरस खाकर कुछ दे जाते तो कभी खा लेता; नहीं तो रात-दिन वह उस स्मृतिको पत्थरोंमें पकड़ रखनेमें लगा रहता।

न जाने कितने दिन बीत गये।

और तब एक दिन सवेरे गांववालोंने देखा उस अधबने टेढ़े-मेढ़े मन्दिरमें कमल पड़ा। उसके प्राण अपनी प्रियासे मिलने चले गये थे।

उस दिनसे वह अधबना मन्दिर प्रेम पानेवालोंका पूजा-स्थल बन गया।

गांवका हर कमल अपनी पत्नीको शर्बती-जैसी चाहता है और पत्नी पतिको कमल-जैसा।

हां, यही वह ताजमहल है, आगरेसे दो सौ मील दूर, कुसुमपुर गांवके बाहर।

यही उसकी कहानी है।

भारत किस लिए लड़ रहा है ?

श्री सन्तराम, बी० ए०

ब्रिटेन और उसके मित्र-राष्ट्रोंसे बार-बार पूछा गया है कि तुम किस लिए युद्ध कर रहे हो। साम्राज्यवादियोंने उत्तर दिया है—"विजयके लिए।" परन्तु उनके इस उत्तरसे किसीको सन्तोष नहीं हुआ। यह उत्तर ब्रिटिश लोगोंमें भी उत्साह नहीं उत्पन्न कर सका, तब विजयके उद्देश्यको और स्पष्ट करना पड़ा। तब कहा गया कि संसारमें एक "नयी व्यवस्था" स्थापित करनेके लिए युद्ध लड़ा जा रहा है। परन्तु केवल मोटे-मोटे और लुभावने शब्द कोई सान्त्वना नहीं दे सकते, उनसे कोई आशा नहीं बंध सकती। तब इस बातको और भी विशद करनेके लिए जोर दिया गया। लोग जानना चाहते थे कि उस "नयी व्यवस्था"में क्या-क्या रहेगा। इसलिए नयी-नयी व्याख्यायें उपस्थित की गयीं। हृदयोंको टटोलनेकी यह प्रक्रिया आज भी बन्द नहीं हुई है। विजयके उपरान्तके पुनर्निर्माणकी समस्याओंपर विचार करनेके लिए युद्धमें लगे हुए राष्ट्र शान्ति होने तक ठहर नहीं सकते। सारे संसारके सर्वोत्तम विचारक भविष्यके लिए सोचने और योजनायें तैयार करनेमें निरत हैं।

भारत भी वर्षोंसे अपनी लड़ाई लड़ रहा है। यदि हम अपनेसे प्रश्न करें कि हम किस बातके लिए लड़ रहे हैं, तो इसके उत्तरमें "स्वतन्त्रताके लिए" कह देनेसे ही क्या हम सन्तुष्ट हो जायंगे? इसमें सन्देह नहीं कि हम स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं। परन्तु प्रत्येक भारतीयका अधिकार और कर्तव्य है कि वह जाने कि स्वतन्त्रताका क्या अर्थ है और उस स्वतन्त्रताका क्या उपयोग होगा। कुछ हिन्दू कहते हैं कि हम राम-राज्य और हिन्दूस्थान चाहते हैं। वे रहस्यमय एवं अज्ञात अतीतकी ओर संकेत करते हैं और समझते हैं कि प्रकाश उस अन्धकारमें छिपा पड़ा है। कुछ मुसलमान भी बीते हुए कालकी ओर मुड़ कर देख रहे हैं। वे दूसरा ही प्रकाश देखते हैं। वे खिलाफतकी पुकार सुन रहे हैं। पाकिस्तानकी अव्यवहार्य कल्पना उनके नेत्रोंके सामने आ रही है। नवीन व्यवस्थाके सम्बन्धमें प्रेरणा प्राप्त करनेके लिए क्या अमेरिका, ब्रिटेन जर्मनी, या जापान अतीत युगोंकी ओर देखता है? बिलकुल नहीं। वे किसी सचमुच नई चीजकी आकांक्षा करते हैं, वे मृत रीति रिवाजोंको दुबारा जिलाना नहीं चाहते। भूमण्डलके सभी देशोंमेंसे क्या अकेला भारत ही पीछेकी ओर देखते हुए आगे बढ़नेकी आशा कर सकता है? ऐसा समझना विनाशका कारण होगा। नवीन व्यवस्थाकी आवश्यकता जितनी भारतको है; उतनी संसारके किसी दूसरे देशको नहीं। घमासान लड़ाईके बीच ही अभी यहां हमें इसकी योजना तैयार करनी चाहिए। संसारको हमसे पूछनेका अधिकार है कि हम किस लिए लड़ रहे हैं।

इसका उत्तर देनेका हम साहस करें, तो कहना पड़ेगा कि भारत भी "नवीन व्यवस्था" लानेके लिए लड़ रहा है। उस व्यवस्थामें स्वाधीनता, एकता, समृद्धि और शान्ति होगी।

स्वतन्त्रताका अर्थ अधिकांश राजनीतिक योद्धा विदेशियोंकी दासतासे देशको मुक्ति दिलाना समझते हैं। निस्सन्देह इसका यह अर्थ है। परन्तु केवल इतना ही नहीं, वरन् जितना हम कुछ वर्षोंसे समझ रहे हैं, उससे कहीं अधिक। विदेशी शासकोंके विरुद्ध लड़नेके लिए जितने साहसकी आवश्यकता है, उससे कहीं बढ़कर सचाईको जानने और जान लेनेपर उसका सामना करनेके लिए है। घरेलू गुलामी विदेशी शासनकी अपेक्षा कुछ कम आत्माको कुचलनेवाली नहीं। केवल देशको ही स्वतन्त्रता दिलाना नहीं, वरन् देशमें बसनेवाली प्रजाको भी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। भारत तबतक स्वतन्त्र नहीं हो सकता, जबतक कि भारतवासी स्वतन्त्र नहीं होते। इसका अर्थ क्या है?

(१) प्रत्येक भारतवासी जन्म-सिद्ध स्वतन्त्र नागरिक होना चाहिए। जब मनुष्य पहलेसे निश्चित वर्ण या उपवर्गकी दासतामें जन्म लेता है, जहां उसकी सामाजिक स्थिति और अधिकार अपरिवर्तनीय रूपसे सदाके लिए स्थिर होते हैं, तो वह मनुष्य जन्मसिद्ध दाससे बढ़कर और कुछ नहीं। वर्ण व्यवस्थाके शासनमें स्त्रियों और पुरुषोंको जिस प्रकार परम्परागत दासता एवं अपमान सहना पड़ता है, उस प्रकार संसारके किसी भी स्वतन्त्र देशमें नहीं सहना पड़ता। जबतक भारतीय प्रजा वर्णभेदकी बेड़ियोंमें जकड़ी हुई है, तबतक स्वतन्त्रता एक झूठी बात है।

(२) प्रत्येक भारतवासीको एक स्वतन्त्र नागरिकका जीवन बितानेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उसे संसारके

दूसरे स्वतन्त्र देशोंकी भांति सभी वैध रीतियोंसे इकट्ठे रहने, मिलकर काम करने, इकट्ठे खाने और अपने दूसरे नगर-बंधुओंके साथ मिलने-जुलनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। बलात् ठूंसी हुई अस्पृश्यता, अपमानजनक रूपसे दूसरोंको अपनेसे परे रखना, अपने विवेकके अनुसार एक दूसरेके साथ रोटी-बेटी-व्यवहारकी प्राथमिक स्वाधीनता देनेसे इनकार, ये सब बातें सच्ची स्वतन्त्रताका प्रतिवाद हैं।

(३) विश्वासकी स्वतन्त्रता स्वाधीन जातिका तीसरा आवश्यक अधिकार है। प्रत्येक भारतीयको किसी भी धर्म में विश्वास रखने और किसी भी धर्मको ग्रहण करने या छोड़नेकी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। सब स्वतन्त्रताओंसे उच्चतम इस स्वतन्त्रतामें, विचार और आत्माकी इस स्वतन्त्रतामें, न राज्य और न समाज हस्तक्षेप करने पाये।

(४) अपनेपर राज्य करनेकी स्वतन्त्रता उपर्युक्त स्वतन्त्रताओंके लिए एक साधन और अभिव्यक्ति होना चाहिये।

सच्ची स्वतन्त्रता तभी सम्भव हो सकती है जब सब लोग एक दूसरेको अपना बराबरका साथी समझते हों; सबके आर्थिक एवं नैतिक मूल्य साझेके हों, राष्ट्रीय आकांक्षाएं साझीकी हों, परस्पर प्रेम हो, अपने देश-बन्धुओंके साथ सहयोग हो। राष्ट्रीय एकताका अर्थ कमसे-कम दो बातें हैं (१) सबकी साझेकी मातृभूमि, एक राष्ट्रीय वास-भूमि और उस वास-भूमिसे प्रेम; (२) उस साझेकी वास-भूमिमें रहने वाले लोगोंकी सामान्य नागरिकता या बंधुता। सामान्य नागरिकता तभी कहला सकती है, जब जाति, धर्म और वर्णका विचार अलग रखकर सबके लिए सामान्य राज-नियम और समान अधिकार हों। राष्ट्रीय एकताके लिए यत्न करना और साथ ही 'हिन्दू पानी' और 'मुस्लिम पानी', 'हिन्दू बस्ती' और 'मुस्लिम बस्ती', 'ब्राह्मण भोजनालय' और 'ब्राह्मणेतर भोजनालय', स्त्रियोंका परदा और हरिजनोंसे छूतछात प्रभृति फूट एवं विरोधकी बातें मानना नितान्त मूर्खता है। राष्ट्रीय एकता तभी कहला सकती है जब घरमें, देवालयमें, गांवमें, वाणिज्यमें और राज्य-प्रबन्धमें, जहां भी दो देश-बन्धु मिलें, पूर्ण सामाजिक बन्धुता और साथीपनका भाव हो। अस्पृश्यता हरिजनोंके लिए समाज और सभ्यतासे निर्वासन है। जात-पांत हिन्दू समाज रूपी शरीरकी चीर-फाड़से कुछ भी कम नहीं। इसीका अनिवार्य परिणाम हिन्दू, मुसलिम, ईसाई आदिकी एक दूसरेसे पृथकता और विभाजन है। इसका फल हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और द्रविड़स्थान इत्यादिकी मांग होना अपरिहार्य है। यदि आप इस देशको हिन्दू भारत और मुस्लिम भारतमें विभक्त होनेसे रोकना चाहते हैं, तो आपको समाजका अङ्ग-भङ्ग करनेवाले जाति-भेदको मिटाना होगा।

देशकी दरिद्रता, निरक्षरता, अस्वच्छता, रोग आदिको दूर करनेके लिए भी देशवासियोंका एकप्राण होकर काम करना आवश्यक है। विभिन्न समाजों और वर्णों-उपवर्णोंमें बंटे रहकर, जिनका आपसमें रोटी-बेटी-व्यवहारकी दृष्टिसे उतना भी सम्बन्ध नहीं, जितना चिड़िया-घरके पशु-पक्षियोंका परस्पर होता है, भारतीय प्रजा कभी भी अपनी दरिद्रता और निरक्षरताको दूर नहीं कर सकती। हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर, सवर्ण-अवर्ण, शूद्र और द्विजके परस्पर लड़ते-झगड़ते रहनेसे विदेशियोंको भारतपर आक्रमण करनेका अवसर मिलता है। इससे भारतमें कभी शान्ति नहीं हो सकती। भारतमें सदा गड़बड़ रहनेसे सारा संसार भी अशान्त रहेगा।

हिन्दूको भारत जितना प्यारा है, मुस्लिमको उससे कम प्यारा नहीं। स्वतन्त्रता और एकताके लिए मुस्लिम भी दूसरोंके समान ही लालायित है। परन्तु अतीतमें उसे नितान्त निराशा हुई है। दो सहस्र वर्ष तक पड़ोसीके रूपसे बसकर भी हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेके लिए अस्पृश्य हैं। यशस्विनी हिन्दू सभ्यताके अनेक शतकोंके उपरान्त आज भी शूद्र और अछूत अपने लिए हिन्दू-समाजमें नितान्त निराशा एवं नारकीय यातना देखते हैं। ये लोग सबकी साझेकी राष्ट्रीयता और सामान्य नागरिकताका स्वप्न कैसे देख सकते हैं? हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण और अब्राह्मणने साथी बनकर स्वतन्त्रताका वर्तमान युद्ध आरम्भ किया था। वे इकट्ठे मिलकर आगेकी ओर कूच करते रहे। परन्तु ज्यों ही वे लक्ष्यके निकट पहुंचे, ज्योंही उनमें राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई, ज्योंही उन्होंने अपनी जांच-पड़ताल की और भविष्यमें झांकना आरम्भ किया, ज्योंही वे स्वतन्त्र भारतके स्वरूपका चित्र तैयार करने लगे, जातिभेद, सम्प्रदाय और अस्पृश्यताके पाटे न जा सकनेवाले प्रभेदोंने उनमेंसे कुछको भयभीत कर दिया। भाइयोंकी भांति मिलकर रहना उनको एक हिमालय-जैसी महान असम्भव बात प्रतीत हुई। उन्होंने इकट्ठे मिलकर कूच करना बन्द कर दिया। वे अपने साम्प्रदायिक घरोंको

वापस चले गये। उन्होंने राष्ट्रीय आदर्शोंका परित्याग कर दिया और फिर जात-पांत एवं सम्प्रदायका जुआ गलेमें पहन लिया। साम्प्रदायिकता विफलीभूत राष्ट्रीयताके सिवा और कुछ नहीं। यदि हिन्दू-मुसलमान और भारतके दूसरे समाज अनुभव कर सकें कि वे सब एक ऐसी भारतीय नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं, जो सबकी साझेकी होगी, जिसमें मेल-जोलकी, इकट्ठे रहनेकी, इकट्ठे काम करनेकी और एक दूसरेसे प्रेम करनेकी वैसी ही खुली छुट्टी होगी, जैसी कि संसारके दूसरे स्वतन्त्र लोगोंको है, जिसमें जात-पांत मूलक ऊंच-नीच और धर्मके नामपर शोषण न होगा, तो कौन हिन्दुस्तान या पाकिस्तान या भारतकी चीर-फाड़की अभिलाषा करेगा? स्वतन्त्रता, एकता, शांति और समृद्धिके निमित्त संग्राम करनेके लिए भारतकी प्रजाको एकत्रित करने और वर्तमान राजनीतिक आन्दोलनकी विफलताको दूर करके इसे सफल बनानेके लिए एक संस्था की आवश्यकता है, जो देशभरमें जाति-भेदको मिटानेका काम करे और जिसके पास सिवा इसके और कोई दूसरा काम ही न हो। इस सामाजिक सुधारके पश्चात ही राजनीतिक सुधार सम्भव हो सकेगा। सामाजिक समता की दृढ़ भित्तिपर ही स्वराज्यका गगनचुम्बी भव्य प्रासाद निर्मित होकर खड़ा रह सकेगा।

———

संस्कार

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

हिरनीके बच्चे-सी भोली रामी लाल-लाल भड़कीले कपड़ों और चमचम कांचके मोतियोंके गहनोंमें सजी, गुड़िया बनी, चमकीली आंखोंसे खुशियां छलकाती फूले हृदयके उमंगोंसे खेल रही थी कि आज शामको जायेगी वह रामलीला देखने मांके साथ। और रामीकी मां, हिरनीके बच्चेकी मांकी तरह आंखों सहमी-सहमी आकाशकी ओर देख रही थी, किसी अज्ञात आशङ्कासे शङ्कित हो!

'रामी! रामी!' वह भावी आशंकासे कांपती चिल्ला उठी और रामी जैसे एक मधुर स्वप्नसे चिहुंक उठी। मांने लपककर रामीको उठा गोदमें दुबका लिया। रामी कुछ न समझ कुछ खीझ-सी गयी और दोनों हाथों मांकी छाती पीटती बोल उठी—हटो मां, मेरे कपड़े खराब......।

'रामी!' घबराई-सी बोल पड़ी जोरसे उसकी मां बीच ही में। रामीकी खीझ भयमें बदल गयी। उसकी आंखें डरती-डरती ऊपर उठीं। उसने मांकी आंखोंमें देखा खौफका सन्नाटा, और धीरेसे सिर नीचाकर अनजान-सी आंखें मलकाने लगी।

मांने रामीको अन्दरकी कोठरीमें खटोलेपर लिटा दिया और झपटकर दीवारपर लटकती तस्वीरको उतार उसकी छातीपर रखकर उसके दोनों हाथोंसे दबा दिया और खुद लपकी बाहर कि रामीकी आंखें मुड़ीं और वह डरकर चिल्ला उठी—मां-मां!

मां लौट पड़ी। रामी मांको देखने लगी, जैसे पूछ रही हो—मां, यह सब क्यों?

मां रामीको थपथपाती पास ही जमीनपर बैठ गयी। रामीकी फैली आंखोंको जैसे उत्तर मिल गया—कुछ नहीं, मैं यहीं हूं, तू चुपचाप लेटी रह।

और रामी जैसे क्षण-भर पहलेकी सब बातें भूल गयी। वह उत्सुकताको अधिक देर तक न दबा सकी, और तस्वीरको छातीपरसे उठा ध्यानसे देखने लगी। रह-रहकर उसकी आंखोंकी पुतलियां चमक उठतीं और पलकें गिर-गिर पड़तीं, जैसे उसकी आंखें उस तस्वीरमें कोई रहस्य पढ़ रही हों।

देखते-देखते रामीकी आंखें मुस्करा उठीं। रामीकी मां उससे कुछ निश्चिन्त-सी हो उठनेको हुई कि रामी फिर, तस्वीरपर ही आंख अटकाये बोल पड़ी—मां!

रामी आगे कुछ और पूछना चाहती है, यह सोच मांने हामी भर दी।

'मां, यह किसकी तस्वीर है?'

'रामकी है, बेटी!'

'राम कौन है, मां!'

'भगवान हैं, बेटी!'

'भगवान कौन है, मां!'

'वही, जो दुनियाका मालिक है; जिसका नाम लेनेसे दुख कट जाते हैं। आ, हम रामको पुकारें, बेटी! वह

हमारी रक्षा करेगा।'

रामीकी मां रामीकी बगलमें लेट गयी और उसको धीरे-धीरे थपथपाती-ताल देती-सी गुनगुनाने लगी और रामीके भी नन्हें-नन्हें होंठ हिले—रा...म!

(२)

दीनाने रामीको बहुत समझाया कि रामी अपनी ससुरालमें है, वह यहांकी बहू है, उसका रामलीला जाना किसी भी तरह उचित नहीं हो सकता। लेकिन रामी थी कि उसकी समझमें कुछ नहीं आता; वह सोच ही नहीं सकती कि रामके दर्शनमें यह बहू-बेटीका फर्क क्यों? वह हमेशा आजके दिन मांके साथ रामलीला जाती रही है, वह इस साल भी जायेगी—रामके दर्शन जरूर करेगी।

दीना रामीको मना सकता है, किन्तु मना नहीं कर सकता, और आज रामी किसी भी प्रकार माननेको तैयार नहीं है। उसका कहना है कि अगर ऐसी बात थी तो दीनाने उसे आज मांके यहां ही क्यों न भेज दिया? दीनाके पास इसका उत्तर नहीं है, क्योंकि वह रामीको आंखोंमें जो रखता है। वह रामीकी उमंगोंको किस दिलसे कुंठित कर देगा?

बहुत देर तक उलझनेके बाद आखिर दीनाको एक तरकीब सूझ गयी। वह रामीसे यह कहकर पूजामें शरीक होने चला गया कि वह खुद शामको रामीको अपने साथ रामलीला ले चलेगा, वह तैयार रहे। रामीका बैठा दिल उछल पड़ा, झुकी पलकें उठ गयीं और आंखोंमें उमंगोंकी चमक थिरक गयी। उसके पैरोंमें जैसे पङ्ख लग गये और न जाने कैसे-कैसे क्या करनेमें लग गयी।

दिन ढलते ही रामीका बनाव-शृङ्गार शुरू हो गया और जब सूरजकी किरणें पश्चिमी क्षितिज पर सिमटने लगीं, तो रामीने देखा कि वह नकली आईना उसके मुख-सौन्दर्यको प्रतिबिम्बित करनेमें असमर्थ है। वह उत्सुक हो उठी देखनेको दीनाकी काली-काली बड़ी-बड़ी आंखोंमें अपने रूपकी निखरी झलक, मुस्कुराते चांद-सी निर्मल सरोवरके आईनेमें।

सूरजकी सुनहली किरणें सन्ध्याके सिन्दूरी दुपट्टे पर नारंगी धारियां बन झलमला उठीं, और रामीकी खिली आंखोंमें उमंगोंकी चमक जैसे उन किरणोंकी झलमलाहटसे कुछ मन्द-सी पड़ गयी। वह दरवाजेसे लगी खड़ी-खड़ी महसूस करने लगी कि उसके पैर अब दुखने लगे हैं और उससे अब अधिक देर तक उस तरह खड़ा नहीं रहा जायेगा।

रजनीकी धुंधली छायामें सन्ध्याकी सिन्दूरी आभा फीकी पड़ गयी। रामीकी आंखोंके सामने धुंधलकेमें नन्हें-नन्हें तारे चमक उठे, उसकी कबकी अंटकी पलकें तिलमिला-कर गिर गयीं। वह अनमनी-सी हो उठी। झुंझलाहटमें उसके जीमें आया कि वह पीली साड़ी खोल फेंके और आंखोंका काजल पोंछ डाले।

रातके अन्धकारके साथ-साथ रामीके हृदयकी निराशा का रंग भी गहरा हो गया। वह हारे दिल दरवाजेसे उठी और बन्द आंखों खटोलेपर धमसे गिर पड़ी, मानों उसकी सारी उमंगोंने दम तोड़ दिया।

एकाएक मांकी याद उसकी आंखोंमें सजल हो उठी, और गुजरे सालकी रामलीलाके दृश्य उन आंसुओंकी बूंदोंमें झलक गये। भींगी पलकें मलकाती न जाने उस अन्धकारमें वह क्या ढूंढ़ने लगी। उसकी नम नजरें एक ओर दीवार पर उठीं और वहांकी लटकती तस्वीरपर जा अंटकीं। उसकी आंखोंके बहते आंसू चमक पड़े, वह आंसू पोंछते झमककर उठी और तस्वीरको उतार कर उसे हसरत-भरी नजरोंसे देखने लगी।

काफी रात गुजरे दीना लौटा। खुला दरवाजा देख उसका माथा ठनका। अन्दर जो घुसा तो अन्धकार और सन्नाटा! वह हड़बड़ाया-सा चिल्ला उठा—रामी! रामी! और जा टकराया रामीके खटोलेसे। हाथसे जो टटोला तो रामी सो रही थी, उसकी जानमें जान आयी।

अन्धेरेमें उसे छेड़ना मुनासिब न समझ दीनाने दीया जलाया और लाकर रामीके सिरहाने ताकपर रख दिया। उसकी धुंधली रोशनीमें दीनाने देखा—रामी जैसे सब होशोहवास खो किसीके ध्यानमें मगन है, और उसकी बन्द आंखोंके कोनोंसे आंसूकी धारा बह रामकी तस्वीरको भिगो रही है। उसने धीरेसे तस्वीर उसके हाथोंसे ले दीवार पर टांग दी और चाहा कि रामीको जगाये कि उसकी आंखें टिक गयीं उसके फूले-फूले भींगे होठोंपर; और उसे लगा कि उसके होठोंपर एक धुली, पवित्र मुस्कान बिखर गयी है, जैसे वह बन्द आंखें किसीके दर्शनका आनन्द डूबी-डूबी ले रही हों। रामीको छेड़नेकी हिम्मत दीनाकी नहीं हुई। एक ठण्डी सांस लेते वह मुड़ा कि उसकी आंखें गयीं उस तस्वीरपर। न जाने क्या सोच उसने उसे उतार रामी-के हाथोंमें डाल दिया। और देखा कि रामीकी मुस्कानकी आभामें वह तस्वीर खिलखिला उठी है।

(३)

संसारमें गुजर-बसरकी अनेकों धारायें विभिन्न दिशाओंमें बहती रहती हैं। उन धाराओंमें जिन्दगियां बहती हैं, तैरती हैं और डूबती हैं। जिस धाराका बहाव जितना ही जोरदार होता है, वह उतनी ही अधिक जिन्दगियोंको अपनी ओर खींचनेमें समर्थ होती है। इस तरह किसी धारामें तो जिन्दगियोंकी रेल-पेल मच जाती है और किसीमें जिन्दगीका नाम तक नहीं रह जाता।

दीनाकी जिन्दगी अपनी धाराकी धीमी रफ्तारमें कोई आकर्षण न देख एक दिन एक दूसरी जोरदार धारामें बहती-बहती कानपुर आ पहुंची। दीनाकी तो जैसे आंखें खुल गयीं, कहां वह गांवका एकरस जीवन और कहां यह शहरकी चहल-पहल। उसे लगा कि वह एक ऐसी दुनियांमें आ गया है, जहां बस मजा ही मजा है।

मिलमें नौकरी मिलनेपर उसने रामीको जो पहला पत्र लिखवाया, उसे अगर आप पढ़ पाते तो जानते कि दीनाको नौकरी मिलनेकी खुशी कोलम्बसकी उस खुशीसे कम न थी, जो उसे नई दुनिया मिलनेपर हुई थी। दीनाकी छाती तन गयी, माथा उठ गया। उसने महसूस किया कि वह गांवके उन मामूली आदमियोंसे जुदा है, जो दिनभर मरते-खपते हैं और शामको रूखी-सूखी खा सो जाते हैं। उस दिन वह होटलसे चटपटी चीजें खाकर धर्मशालाके बरामदेमें लेट गया, मगर देखा कि बहुत देर तक उसका दिमाग न जाने कैसे-कैसे मनसूबोंके हुजूमसे परेशान रहा और उसे नींद नहीं आयी। अगले दिन जब धर्मशालाके चौकीदारने सुबह ही सुबह दीनासे कह दिया कि अब वह धर्मशालामें एक दिन भी नहीं ठहर सकता, उसे ठहरनेका कोई दूसरा इन्तजाम कर लेना चाहिये, तो दीनाकी खुशीपर जैसे चिन्ताका एक गहरा बादल छा गया। उसे क्या मालूम था कि उसके साथियोंका कहना सच है कि कानपुरमें नौकरीका मिलना तो मुश्किल नहीं; किन्तु घरका मिल जाना अप्राप्यको पा लेना है। उसने लाख कोशिश की कि कहीं पैर फैलाने तककी जगह उसे मिल जाय, किन्तु बेकार। रातभर किसी फुट-पाथपर करवटें बदलनेके बाद, जब वह मिलमें जाता तो अपनेको वह इस काबिल नहीं पाता कि काम कर सके। आंखें झप-झप जातीं, सारा शरीर ऐंठनसे मरोड़-मरोड़ उठता। और तब गांवकी खुली हवाकी वह मीठी-मीठी नींद एक मधुर यादकी तरह उसके दिलमें कसक उठती।

किन्तु चांदीके दानोंकी चमक और शहरी जिन्दगीकी रंगीनियोंकी सतरंगी कल्पनामें कोई साधारण आकर्षण नहीं होता, जो दीना आसानीसे हिम्मत हार जाता। वह सोचता कि इस कानपुर शहरमें, जहां आज दस लाख आदमियोंको ठहरनेकी जगह मिली है, मुझ एकको नहीं मिलेगी? मिलेगी जरूर, चाहे जब मिले; और तब सारी तकलीफें दूर हो जायेंगी, वह आरामसे खुश-खुश रह सकेगा।

दीनाकी किस्मत कहिये या उसके मजदूर साथियोंकी हमदर्दी कि उनमेंसे कुछने उसे अपने साथ रख लेनेकी बात मान ली। दीनाको भी कपड़ा-लत्ता रखनेको एक कोना क्रिस्टोफर चर्चके पास उस सीलन-भरी कोठरीमें मिल गया।

दिन-भरके मिलोंमें पिसे एक दर्जन मिहनतकश शामको अपनी-अपनी कन्था उतार उस कोठरीमें रख देते और सामनेके नीमके पेड़के नीचे अपना-अपना थाली-लोटा लिये ईंटोंके टुकड़ोंसे बने एक-एक चूल्हेके पास बैठ आग जलाना शुरू कर देते। कोई रोटी और नमकसे अपनी भूख बुझा लेता, तो कोई रोटीपर मिर्चेके चन्द टुकड़ोंको रख जबान चटकार लेता, और कोई कड़ी रोटीको पानीके सहारे गलेसे उतार पेटकी जलन शान्त कर लेता। दीनाने जब पहले-पहल यह देखा तो जैसे उसकी आंखें आश्चर्यसे भर गयीं और उसका दिल चिल्ला उठा—इतनी कमाईपर भी ऐसा क्यों—ऐसा क्यों?

और इसका जवाब दीनाको मिला उस दिन, जब वह पहली पनरहियाकी मजदूरी पा खुश-खुश घर लौटा कि वह रामीको कल रुपये भेजेगा, रामी रुपये पा कितनी खुश होगी? पहुंचकर देखा तो कोठरीका दरवाजा बन्द है और उसका कोई भी साथी अभी तक नहीं पहुंचा है। घण्टोंके इन्तजारसे परेशान हो वह पासके मोदीसे चबेना ले फांककर नीमके पेड़के नीचे छातीसे रुपया दबाये लुढ़क गया।

दीना हड़बड़ाकर उठ बैठा। देखा तो कोई उसके पैरोंपर लुढ़का-लुढ़का हिचकियां ले रहा है। घबराया-सा अपने पैरोंको खींच भागना चाहा कि एक दूसरेकी टांगोंमें उलझ गिर पड़ा और सुना—कौन है बे?

आवाज कुछ टूटी हुई थी, फिर भी दीनाने पहचान लिया कि यह मंगरूकी आवाज है। उसके होश ठिकाने आये और वह मंगरूके पास खिसक गया।

मंगरूकी आंखें खुली हुई थीं और उसके होठोंके दोनों किनारोंपर सफेद-सा कुछ चमक रहा था। उसने दीनाके

गलेकी ओर बाहें उठायीं। दीना बिचककर गला मोड़नेवाला ही था, कि मंगरू खींचकर अपनी बाहोंसे कस उसका मुंह अपने मुंहसे सटाते बोल पड़ा—अरे मोरे राजा, तुम कहां रह गये, आज...वहां...हम...तुम्हें...!

दीनाका सिर चकरा गया, जी मिचलाने-सा लगा। वह जोर लगा, गला छुड़ा दूर छटक गया। और मंगरू चारों खाने चित पड़ा हिचकते-हिचकते गोता लगा गया।

(४)

रामीको जब कभी अपनी टूटी टांगका ख्याल आता, उसका दिल रो पड़ता। वह काली रात उसकी आंखोंमें नाच जाती और उसका रोम-रोम सिहर उठता। वह सोचती कि दीनाको हो क्या गया है? दोही साल पहलेकी तो बात है, जब एक दिन दीनाने उसकी शरमीली आंखोंमें अपनी प्यार-भरी आंखें डालकर कहा था—रामी, तू मेरे दिलकी रानी है, तुझे जीवन-भर मैं पुतलीकी तरह आंखोंमें छिपाकर रखूंगा। और आज...ओफ! रानी अपनेको सम्हाल नहीं पाती और फफक-फफककर उसकी आंखें उबल पड़तीं। उसका टूटा दिल नादान, बेबस बच्चेकी तरह मां-मां पुकार उठता और मांकी धुंधली तस्वीर उसकी आंसू भरी आंखों में तैर जाती। उसे लगता कि मां अपने दुलार भरे आंचलको उसकी ओर सरका रही है और तब न जाने कैसे प्रकाशसे उसकी आंखोंके आंसू चमक पड़ते और उसके फूले होठोंपर एक भींगी मुस्कान दौड़ जाती। वह आंखें मलकाते अतीतमें गुम हो जाती, जैसे उसे मांकी छातीका सहारा मिल गया हो। और खोई-खोई ही वह देखती कि मांकी स्नेह-भरी उंगलियां उसकी पीठपर थिरक रही हैं और उसके होंठ हिलते-से जैसे कह रहे हैं—बेटी, आ रामको पुकारें, वह हमारे सङ्कट दूर करेगा। रामी यह सुन, जैसे चौंक पड़ती और उसकी फैली आंखें शून्यमें न जाने क्या देखने लगतीं।

* * * *

दीना दरवाजेकी चौखटसे टकराकर धड़ामसे गिर पड़ा।

रामी कच्ची नींदसे उचट पड़ी। आंखें फाड़ जो देखा तो चारों ओर अन्धकार!

दीना सम्हलकर उठते-उठते अगले कदमपर फिर लुढ़क गया बकता......ए-ए देखता नहीं......

रामीने अन्धकारमें देखा तो नहीं, किन्तु पहचान लिया और मारे भयके उसका शरीर कांप उठा—ऐसी ही काली रात वह भी तो थी, जब उसकी एक टांग...... ।

दीना सिर उठानेकी कोशिश करते बड़बड़ा पड़ा—डामी-डामी, अबे सुनती नहीं?

रामी सुनती थी, लेकिन सुनना चाहती थी नहीं। वह डरी हिरनी-सी सहमी-सहमी दीवारसे लगी रही।

दीना जोर लगा आगेको झुका-झुका खड़ा हो गया और लड़खड़ाता आगे बढ़ा।

रामीके प्राण कांप उठे, वह दीवारसे छिपकलीकी तरह चिपक गयी।

दीना पाटीसे टकरा खटोलेपर आ रहा और हाथसे माथा रगड़ता बोल पड़ा—मंगरू शाला कहता था, हम घर नहीं पहुंच सकता......ही...उंह,...वह शाला क्या शराब पीयेगा...ही-ही...और खटोलेपर कुछ आराम-सा महसूस कर दीनाकी तनी पलकें कुछ झुक गयीं।

रामीकी जानमें जान आयी। दीवारसे लगी ही बैठी बैठी ऊंघ-सी गयी।

दीनाका नशा जब भींगा, तो उसे कुछ खानेकी इच्छा हुई। वह पड़े-पड़े ही पुकार उठा—डामी-डामी।

रामी नींदसे उचट आंखें मलकाने लगी।

दीना कुछ जवाब न पा झुंझला गया। वह जोरसे बोला—डामी—ओ डामीकी बच्ची!

रामी झपकती धीरेसे बोली—क्या कहते हो।

ला कुछ खाना-वाना रखा है? उठकर बैठता दीना पूछ बैठा।

खाना!—खटोलेकी ओर सरकती रामीको आश्चर्य हो आया।

'हां, खाना नहीं तो क्या तेरा सिर? ला जल्दीसे, माथेपर हाथ रगड़ते चिल्ला उठा दीना।

रामी खटोलेका पैर पकड़े कुछ सहमी-सी बोली—खाना कहां है, जो लाऊं?

मैं क्या जानूं। मुझे तो खाना चाहिये, लाती है कि......नशेकी झोंकमें दीना चिल्ला पड़ा।

रामी और भी डर गयी, किन्तु फिर भी कहनेसे बाज न आयी—खर्ची कहां थी, जो बनाकर रखती। सुबह तुम्हीं तो कहकर गये कि आज पनरहियाकी तनख्वाह मिलेगी, मैं शामको खर्ची लाऊंगा तो खाना बनेगा।

दीनामें यह सब सुननेकी ताव नहीं थी। उसे लगा कि रामी उसकी बातोंका जवाब दे रही है, उससे जबान लड़ा रही है, उसका कहना नहीं मानती। उसका पारा और

भी चढ़ गया। वह तैशमें उठ खड़ा हुआ चिल्लाता हुआ, कहां है रे खर्चीकी बच्ची, आ तुझे खर्ची दूं।

रामी भी उठ खड़ी हुई। दीनाने लपककर उसका हाथ एक हाथसे पकड़ लिया और दूसरा हाथ उठाया कि रामी-की आंखोंका डर जल उठा। वह हाथ झोरती बोल पड़ी—चलो हटो, अबकी हाथ लगाया तो......

'तो ?' दीनाकी आंखोंका शोला भभक पड़ा। रामी-का हाथ खींचता दरवाजेपर ला मारा और पैरसे बाहर ढकेलता बोल पड़ा—सुअरकी बच्ची, ताव दिखाती है, घरमें पैर रखा कि वह दूसरी टांग भी...और किवाड़ोंको बन्द कर लिया।

क्रिस्टोफर चर्चकी दीवारसे लगी, लड़की रामीने सिस-कती आंखें ऊपर उठायीं। देखा तो अंधेरेमें एक सफेद छाया उसके सामने झलमला रही है। उसने आंखें नीची कर दीं। बंधी आंसुओंकी धारा फूट पड़ी, वह जार-जार रो पड़ी। सफेद छायाका सफेद गाउनसे सफेद हाथ निकल रामीके सिरपर पंख जैसा फैल गया। रामीने सिर उठाया। सफेद छायाके होंठ हिले—बेटी ?

(९)

क्रिस्टोफर चर्चका घण्टा घहर उठा। घण्टेकी आवाज आस-पासके वातावरणमें गूंजकर घुट-सी जाती।

देखते-ही-देखते चर्चके सामने दूबोंसे भरे हरे मैदानमें एक खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। तितलियों-सी रङ्ग बिरंगे आकर्षक कपड़ोंमें सजी छोकरियां इधर-उधर फुदकने लगीं। कोई किसी सूटधारी नौजवानके कोटमें लगे गुलाबके फूलपर अपनी पतली-पतली नाजुक अंगुलियां एक अजीब हलके अन्दाजसे फेरती, उसकी आंखोंमें आंखें डाल होंठोंके रङ्गको एक हलकी मुस्कानसे चमका रही है; और कोई किसीकी टाईसे खेलती सिरको जरा झुकाये अपने सुनहले केशोंकी सुगन्धि उसके मुंहपर बिखराती कुछ शिकायत कर रही है; तो कोई किसीका हाथ पकड़े, बांहोंको झुलाते, एड़ियोंको एक नाजुक अन्दाजसे जमीनपर रखती-उठाती अपनी बर्फ-सी चिकनी मांसल पिंडलियोंकी गढ़न दिखा रही है। बूढ़े और बूढ़ियां नन्हें-नन्हें बच्चे-बच्चियों-की उंगलियां पकड़े उन्हें फुदकना सिखला रही हैं। कभी-कभी उनकी नजरें इधर उधर भी उठ जाती हैं और तब अतीत, जैसे उनकी गहरी आंखोंमें कोई भूली तस्वीर बन मुस्कुरा उठता है।

पादरी आ रहा है। चहल-पहलसे खिलखिलाता वातावरण गम्भीर हो जाता है। सबके सब निहायत अदब से गिरजाके अन्दर दाखिल हो अपनी-अपनी जगहपर कायदे से बैठ जाते हैं। पादरी पलपिटपर खड़ा हो एक बार अपनी रोबीली नजरोंको इधर उधर फेंक देता है। चारों ओर सन्नाटा छा जाता है।

पादरीके हाथ उठते हैं, सबके सब उठ जाते हैं। पादरी पाक किताबसे कुछ पढ़ता है; सबके सब सिर झुकाये उसे दुहराते हैं। पादरी इशारा करता है, सब बैठ जाते हैं।

पादरी हुक्म करता है और सबके सिर मसीहके कदमों-में झुक जाते हैं।

एक कोनेमें किस्मतकी मारी दुबकी-सी बैठी रामीका सिर भी झुक गया है, उभरी पलकें मुंद गयी हैं।

सबके सब सिर झुकाये ही कनखियोंसे उसकी ओर देख रहे हैं कि कौन है यह, जिसे प्रार्थनाका तरीका तक नहीं मालूम; जो न उठती है, न बैठती है, न कुछ पढ़ती ही है।

मगर रामी किसीकी ओर नहीं देखती, वह किसीके ध्यानमें डूबी है, किसीकी पूजामें तल्लीन है। उसके फूले-फूले नम होंठ रह-रहकर हिल उठते हैं और दो अस्फुट अक्षर उनपर डोल जाते हैं—रा—म ?

भारतीय नृत्यकलामें स्त्रियोंका स्थान

सुश्री द्रौपदी देवी ओझा

जिस प्रकार दूसरी कलाओंके द्वारा भारतीयोंने अपनी धार्मिक भावनाओं और दार्शनिक आदर्शोंकी अभिव्यक्ति की है, उसी प्रकार नृत्यकी भिन्न-भिन्न रहस्यात्मक अङ्ग-भङ्गियों, हाव-भावों और गति-सञ्चालनों द्वारा अपनी आध्यात्मिक आकांक्षाओं, विश्वके विकास तथा उसकी उलझनों और ईश्वरीय क्रिया-कलापोंकी अभिव्यञ्जना भी की है। ऋग्वेदमें मृदङ्ग, वीणा, वंशी आदि वाद्य-यन्त्रोंका नृत्यके साथ बजनेका वर्णन है। अथर्व वेदने "यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मृत्या।"—जहां मनुष्य सदा गाते-नाचते हैं वही मृत्यभूमि (भारत-भूमि) है—कहकर भारतकी स्तुति की है। वेदोंमें सूर्य, इन्द्र, वरुण आदि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिए नृत्यका उल्लेख है। नृत्य-कलाके आदि आचार्य नटराज शिव माने जाते हैं।

वैदिक-कालके बाद यन्त्र, तन्त्र-मन्त्रका काल आता है, जब कि यन्त्र, तन्त्र-मन्त्रके शास्त्र रचे गये और उनके उच्चारणके लिए मुद्राओंका निर्माण हुआ, जिनसे क्रोध, शान्ति, श्रृङ्गार, प्राणायाम इत्यादि भाव नृत्यमें सम्मिलित किये गये। इसके बाद पौराणिक-काल आता है। इस कालमें भी सङ्गीत और नृत्यकी यथेष्ट उन्नति हुई।

इसी प्रकार सीता स्वयम्बर तथा अन्य मङ्गल कार्योंमें वाद्यके साथ सुसंस्कृत नृत्यका वर्णन है। इसी प्रकार मृच्छकटिक नाटकमें लिखा है कि चारुदत्तके यहां वीणा आदि वाद्य-यन्त्र थे तथा मालविका-जैसी उच्च कुलकी राजकन्याके लिए गायन और नृत्य सिखानेके लिए गणदासी नियुक्त हुई थी।

हमें अपने प्राचीन-साहित्यके अध्ययनसे पता चलता है कि हमारे यहां नृत्य स्त्रियोंकी शिक्षाका एक मुख्य अङ्ग था। सावित्री-सत्यवान नृत्यको कौन नहीं जानता। अर्जुनको बृहन्नलाके रूपमें उत्तराको नृत्य तथा गानेकी शिक्षा देना इतिहासके द्वारा प्रमाणित है। अजन्ताकी गुफाओंमें आज भी इस प्रकारकी चित्रकारी मिली है, और इस विषयमें जितनी ही खोज की जा रही है, यह मालूम होता जा रहा है कि भारतमें इस कलाका विशेष और उच्च स्थान रहा है। शिवजीका ताण्डव-नृत्य पुराण-प्रसिद्ध है। स्थान-स्थानपर इसका वर्णन मिलता है। इन्द्रकी राजसभामें उर्वशी एक प्रसिद्ध नर्तकी थी। हमारे यहां फाल्गुनमें, जब सब कृषक अपनी पकी फसल देखकर प्रसन्न होते थे, उस समय वे खूब आमोद-प्रमोद किया करते थे ; अर्थात् भांति-भांतिके नृत्य आदि हुआ करते थे।

कोई जाति सभ्य हो अथवा असभ्य, उसमें नृत्य किसी-न-किसी रूपमें अवश्य ही मिलेगा। मनुष्य अपने भावोंको रोकनेमें असमर्थ है। वह उन्हें किसी भी प्रकार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। जब वह प्रसन्नताके आवेशमें आ जाता है, उस समय नृत्यकी सृष्टि होती है। मोर अपने प्रियतम मेघोंको निहारकर प्रसन्नतासे नाच उठता है। मीराबाई प्रभु-प्रेममें निमग्न होकर नृत्य करने लगती थी। कहा जाता है, हजरत दाऊद भी ईसा-मसीहके सामने नाचे थे।

जो जाति जितनी अधिक प्रसन्न रही है, उसकी नृत्यकला उतनी ही अधिक पूर्ण मिलेगी; क्योंकि प्रसन्नता और नृत्यका घनिष्ट सम्बन्ध है। सभ्य पाश्चात्य जातियोंमें यह एक प्रथा-सी है कि जब कोई अतिथि आता है, तो उसके स्वागतमें वे लोग नाचते हैं। जापानमें इस समय जो नृत्य होते हैं, उनका सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक घटनासे होता है। ये नृत्य अधिकतर देव-मन्दिरोंमें होते हैं, जिनमें पुजारी भी भाग लेते हैं। जङ्गली जातियोंमें नृत्यका बहुत आधिक्य है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण कम्बोडियाकी राजकीय रङ्गशाला है, जिसका नाम रङ्गण है। रङ्गणका अर्थ है, नृत्यशाला। नृत्य-कला भारतवर्षमें अति प्राचीन कालसे चली आ रही है। भारत नृत्य-कलाका प्रेमी सदासे रहा है। सुर-सभामें उर्वशी, मेनका और रम्भा आदि अप्सराओंके नृत्य-कौशलकी कल्पना भारतीयोंके नृत्य-प्रेमका ही तो परिचय देती है।

नटराज हमारे यहां नृत्य-कलाके उपास्य माने गये हैं। उनके भिन्न-भिन्न नृत्य आज भी विख्यात हैं। नृत्यके द्वारा शरीरका सौन्दर्य बिखर-सा पड़ता है और यही कारण है कि चित्रकारोंने अपनी चित्र-कलामें इसका उपयोग किया है। हमारे देशमें अजन्ता और एलोराके गुफा-मन्दिरमें नृत्यमें निरत सैकड़ों चित्र हैं। उन्हें देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है कि उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे स्वर निकल रहे हैं और उनकी भिन्न-भिन्न मनोरम गतियोंसे भिन्न-भिन्न छन्दोंका

बोध होता है। ऐसा जान पड़ता है कि मानों गति-सङ्गीत ही मूर्तिमान होकर नाच रहा है।

रामकी लीलाओंका चरित्र-चित्रण, नृत्यके साथ राम-लीला करके आज भी किया जाता है। दक्षिण-भारतमें देवदासी-नृत्य अपना विशेष स्थान रखता है, जिसका प्रचार इस भक्ति-सम्प्रदायका फलस्वरूप है। इसी प्रकार गुजरात प्रान्तके गरबा नृत्यका इतिहास भी बहुत प्राचीन है। कलाकी दृष्टिसे यह नृत्य भी भारतका एक सुन्दर नृत्य है। महाभारतकी अनेक कथायें भी आज नृत्यके रूपमें प्रचलित हैं। दक्षिण भारत एवं उत्तर भारतमें हिरण्यकश्यप-नृत्य भी काफी कलापूर्ण रूपसे ग्रामीणोंमें प्रचलित है। आज भारत पददलित है, मुट्ठी-भर भी अन्न आज किसानोंको नहीं मिलता, फिर भी उत्सव एवं त्योहारोंके अवसरपर अनेक कलापूर्ण नृत्य होते ही रहते हैं, जिनकी ओर अभी विद्वानोंका ध्यान नहीं गया है।

प्राचीन भारतीय नृत्य प्रकृति और परमात्माका पुजारी था। कामोद्दीपक भावना तो उसमें बाद-में प्रज्वलित हुई और मुगल-कालीन सभ्यतामें उसने एक अत्यन्त विकृत रूप धारण कर लिया। अभिसारिका, दूती और सुकुमारताके नाम पर तरह-तरहके आकर्षक, परन्तु भारतीय आत्माके विपरीत, नृत्यों-का आविष्कार हुआ। कलाके नामपर कुछ लोगोंने इन्हें रम्भाके नृत्योंका विकृत रूप बताया, पर रम्भा-नृत्यकी प्रमुख विशेषता तन्मयता और आत्म-समर्पणकी भावनाका इन नृत्योंमें सर्वथा अभाव था।

महाद्वीप होनेके कारण भारतमें नृत्य-कलाके कई स्कूल पाये जाते हैं, यद्यपि इन सभी स्कूलोंमें मौलिक आदर्श एक ही है। वे सभी एक व्यथा-सी कहते हैं, जिसमें नर्तक-को भाव-अभिव्यञ्जनाके लिए प्रत्येक अङ्ग-सञ्चालनकी आवश्यकता होती है। वे पाश्चात्य-नृत्योंकी भांति एक वस्तु अथवा एक ही भावको प्रस्तुत नहीं करते। पश्चिमके नृत्यों-में मुखसे भावोद्दीपन बहुत कम होता है। यही भारतीय नृत्य और पाश्चात्य नृत्यमें मौलिक अन्तर है। भारतीय नृत्यका व्याकरण तबला है। घुंघरू प्रायः सभी भारतीय नृत्योंके लिए आवश्यक है। भारतमें नृत्यके मुख्य स्कूल मनीपुरी, कथाकाली और भारत नाट्य, कत्थक हैं। इनके सिवा भील, सन्थाल, गोंड़ आदि पुरातन जातियोंके भी नृत्य हैं। रवीन्द्रकी विश्व-भारतीने भारतीय नृत्योंमें कुछ सुधार किया है।

प्राचीन नृत्य-कलाका एक दृश्य।

नृत्य-कलापर उसके विकास-कालसे ही स्त्रियोंका विशेष, स्वाभाविक अधिकार रहा है। इसका उल्लेख किया जा चुका है। आधुनिक-कालमें भी नृत्य उनकी एक अपनी कला है। कथाकाली, कत्थक, मनीपुरी और गरबा-नृत्य भारतमें विशेष रूपसे उन्नत तथा सुसंस्कृत माने जाते हैं। इनमें स्त्रियां ही अधिक भाग लेती हैं। वैसे तो प्रत्येक प्रान्तके ग्रामीणोंमें नृत्य प्रचलित हैं, किन्तु वे अभी तक सुसंस्कृत तथा कलात्मक रूपमें नहीं हैं। तथापि आज कल उनके बीच भी नृत्यकी अनुरक्ति किसी भी उन्नत नृत्यसे कम नहीं है। उनके यहां जन्म-मरण, विवाह-शादी, प्रत्येक

अनुष्ठानमें नृत्यकी आवश्यकता पड़ती है। शृङ्गार, वीर, करुण, वीभत्स आदि सभी रसोंका अच्छा प्रकाश इनके नृत्योंसे भी व्यक्त होता है।

इनके सिवा अन्य कलासिकल नृत्य जैसे ताण्डव, आरती, कमलिनी आदि हैं। अधिकतर नृत्योंका आधार मुखकी भाव-भंगी और घुंघरू होता है और तबलेके बोल इनके व्याकरण हैं। गणिकाओंके नृत्य भी पर्याप्त मात्रामें प्रचलित हैं। इनके नृत्य पुरातन नृत्योंके मिश्रणसे बने हैं।

ये ही सब नृत्य आजकल भारतीय रङ्गमञ्चपर पाये जाते के प्रचार और चित्रकलाकी उन्नतिके साथ-साथ दर्शकोंका दृष्टिकोण भी अधिक उच्च हो गया और अब जनता सुन्दर और उच्च श्रेणीकी कलाके साथ-साथ ऐसे ही गायन और नृत्य भी अधिक पसन्द करने लगी है।

इस प्रकारके सुसंस्कृत नृत्योंके कलाकारोंमें जो महिलायें मञ्चपर आयी हैं, उनमें साधना बोस, अजूरी, सिमकी, अमला नन्दी, मेनका, मृणालिनी, लीला देसाई, कमलेश कुमारी, सितारा, मीनाक्षी रामाराव, और सुनीता देवी विशेष प्रसिद्ध हैं।

श्रीमती साधना बोसके नृत्योंमें टैगोर-स्कूलका पर्याप्त

गरबा-नृत्य।

हैं। इनके सिवा पाश्चात्य ढङ्गके भी नृत्योंका प्रचार देखनेमें आता है, पर जैसे-जैसे पुरातन संस्कृतिके नृत्योंका भारतीय मञ्चपर आधिक्य होता जाता है, इनकी संख्या कम होती जाती है। वे यदि कहीं देखनेको मिलते भी हैं, तो तृतीय श्रेणीकी जनतामें।

अभी तक अधिकांशमें पाश्चात्य नृत्यों और गणिका-नृत्योंकी ही भरमार रहती थी। इसका कारण यह था कि जनसाधारण उन हलकी कलाओंकी ओर अपनी अभिरुचि अधिक दिखलाता था। किन्तु भारतीय कलाका पुनरुत्थान करनेवाले कलाकार उदयशङ्कर और रामगोपाल-प्रभाव है। बङ्गालमें प्रचलित क्लासिकल नृत्योंमें आप बहुत दक्ष हैं। कत्थक और कथाकालीसे भी आप काफी परिचित हैं।

साधनाको चल-चित्रोंसे मञ्च अधिक प्रिय है, किन्तु उन्होंने अपनी सुविधा और पसन्दको नृत्यकलाके ऊपर बलिदानकर इस कलाका अधिकाधिक प्रचार करनेके लिए चल-चित्रोंको अपनाया है। इससे उन्हें अधिक दर्शकोंके सामने अपनी कलाको प्रचारित करनेका अवसर प्राप्त हुआ है। चल-चित्रोंमें आपको अपने पतिसे भी सहायता मिली है, क्योंकि वे भी भारतीय चल-चित्रोंके क्षेत्रमें प्रमुख स्थान

जीवन-सङ्गीत नृत्यमें सिमकी, अमला, अज़ूरी और जोहरा।

रखते हैं। 'कुंकुम' में मन्दिर और जन-पथपर उनके नृत्य बहुत ही सुन्दर हुए हैं। इनके अतिरिक्त उनके अन्य उच्च कोटिके नृत्य भी चित्रोंमें प्रदर्शित किये गये हैं।

अज़ूरी भारतकी एक ऐसी नर्तकी हैं, जिसका प्रदर्शन जनता और समालोचक, दोनोंके द्वारा पसन्द किया जाता है। उनके नृत्य जहां कला और सुशिक्षामें जरा भी कम नहीं, वहां जनता भी उन्हें समझ सकती है। जहांतक नृत्यमें गतिका सम्बन्ध है, उनके-जैसा नृत्य-कलाकार उच्चककोटिके नर्तकोंमें देखनेमें नहीं आया। शृङ्गार, वीर-रस, हास्य और ग्रामीण नृत्योंमें उनकी अपनी विशेषता है। मिस अज़ूरी जितना जनताकी रुचि पहचानती हैं, उतना शायद ही और कोई कलाकार पहचानता हो।

सिमकी एक विदेशी नर्तकी हैं। भारतीय नृत्यकलामें वह अत्यन्त निपुण हैं। इनके द्वारा विदेशोंमें भारतीय नृत्य-कलाने बड़ी प्रसिद्धि पायी है। ये भारतीय कला और संस्कृतिकी उपासिका हैं। कलाकार उदयशङ्करके साथ कई बार सिमकीने अपनी कलाका विदेशोंमें प्रदर्शन किया है। इनके रास-लीलाके नृत्य कलापूर्ण और चित्ताकर्षक होते हैं।

अमला नन्दीके नृत्योंमें बड़ी भावुकता और माधुर्य पाया जाता है। कलाकार उदयशङ्करके साथ विदेशोंमें इनकी नृत्यकलाकी भी बड़ी प्रशंसा हुई। आजकल ये अलमोड़ा-में उदयशङ्कर सांस्कृतिक केन्द्रमें नृत्यकलाकी आचार्या हैं। पिछले वर्ष ही आपका भारतके विश्वविख्यात कलाकार उदयशङ्करके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुआ है। श्रीमती अमला नन्दीने भारतीय ही नहीं, अन्य नृत्योंका भी अध्ययन किया है। वे इस कलाकी मर्मज्ञ हैं।

मेनका भी विदेशी नर्तकी हैं। भारतीय नृत्य-कलापर इनका अच्छा अधिकार है। उच्चकोटिके नृत्य-प्रशंसकों और समालोचकोंने इनके भारतीय नृत्यकी बड़ी सराहना की है। मुद्राओंके प्रदर्शनकी दृष्टिसे इनके नृत्य अत्यन्त सुन्दर और गूढ़ होते हैं। इनका अङ्ग-सञ्चालन बड़ा गम्भीर होता है।

मृणालिनी मनीपुर-नृत्यकी आचार्या हैं। इनका जन्म ही कथाकाली नृत्यकारोंके परिवारमें हुआ है। विश्वभारती, शान्ति-निकेतनमें रहकर इन्होंने विभिन्न नृत्योंमें विशेषता प्राप्त की है। उदीयमान कलाकार रामगोपालके साथ इन्होंने अपनी नृत्यकलाका विदेशोंमें प्रदर्शन कर बड़ी ख्याति प्राप्त की है। उदयशङ्करके बाद रामगोपालने ही विदेशोंमें अपनी नृत्यकला द्वारा विशेष प्रसिद्धि पायी है। मृणालिनी इनकी उपयुक्त सङ्गिनी हैं। मृणालिनीके नृत्य बड़े आकर्षक और उच्च कलापूर्ण होते हैं।

लीला देसाईने कत्थक नृत्यमें अधिक अभिरुचि दिखलायी है। कथाकाली, गरबा आदि अन्य क्लासिकल नृत्यों में भी आप दक्ष हैं।

कमलेश कुमारी एंग्लो-इण्डियन महिला हैं। आपने कथाकाली तथा अन्य क्लासिकल नृत्योंमें दक्षता प्राप्त की है। चित्र-जगतमें भी आप प्रसिद्ध हैं।

सिताराके कलापूर्ण नृत्य आधुनिक और क्लासिकल दोनों ही होते हैं।

कलाकी दृष्टिसे इनमें सबसे प्रथम स्थान श्रीमती मीनाक्षी रामारावका है। इनकी कलामें कथाकाली तथा अन्य दक्षिणी नृत्योंका प्राधान्य है।

सुनीता देवी क्लासिकल नृत्योंसे अनभिज्ञ नहीं हैं, पर आधुनिक नृत्योंमें ही अधिक दक्ष हैं। सुनीता और देविका आदिने मुमताज अलीसे नृत्य सीखा है।

आधुनिक नृत्यकी एक भाव-भङ्गी।

उपर्युक्त अनेक, महिलाएं भारतकी प्राचीन उच्चकोटिकी सुसंस्कृत नृत्यकलाका अपने सुन्दर प्रदर्शनों द्वारा प्रचारकर उसका पुनरुद्धार कर रही हैं। इस प्रकार भारतकी इस मृतप्राय कलाका भविष्य बड़ा उज्ज्वल मालूम होता है।

भारतीय नृत्यकलाके पुनरुत्थानमें कलाकार उदयशङ्करका विशेष प्रयत्न रहा है। उदयशङ्कर और अमला नन्दी तथा रामगोपाल और मृणालिनीके विश्वव्यापी प्रदर्शनसे भारतकी आंखें फिरसे खुल पड़ी हैं और जनताका ध्यान इस ओर गया है। वर्षोंसे केरल-कला-मण्डलम् दक्षिण भारतमें नृत्यका अच्छा प्रचार कर रहा है। उत्तर भारतमें शान्ति-निकेतनका प्रचार सुन्दर है। उदयशङ्करने कई बार नृत्यका विश्व-प्रदर्शन करनेके बाद अलमोड़ामें उदयशङ्कर इण्डिया-कलचर-सेण्टर नामकी एक सुसङ्गठित संस्थाको जन्म दिया है। इस प्रचारके फलस्वरूप नृत्यकलाकी उन्नति तथा प्रचारके साथ-साथ जन-रुचि भी परिष्कृत हो रही है, जो नृत्यकलाके उज्ज्वल भविष्यकी द्योतक है।

———

गीत

चांदनीमें आज केवल चांदकी बातें करो

प्रेमकी मधु झीलके तटपर मिले हम आज फिर।
उग रहे आकाशको भरते हुए तारक शिशिर।
आज ओ मधुवर्षिणी! आये दृगोंमें स्वप्न तिर।
चांदनीमें आज केवल चांदकी बातें करो।

हैं चमकते संगमरमर-से तुम्हारे अङ्ग खुल।
हैं गुंथे ज्यों कुन्तलोंमें मोतियां मोती मुकुल।
है तुम्हारे रूपका साम्राज्य यह अम्बर विपुल।
चांदनीमें आज केवल चांदकी बातें करो।

लग रही कटिकी तुम्हारी किङ्किणी पय-धार-सी।
कङ्कणोंसे उठ रही सित मन्त्रिता झनकार-सी।
कनक बेसरके नगोंकी ज्योति पारावारसी।
चांदनीमें आज केवल चांदकी बातें करो।

सृष्टि स्थिर घनसारका उज्ज्वल चंदोवा तानकर।
आज तुम जो भी कहो, सङ्गीत-सा होगा मधुर।
बंध रहा सौन्दर्य चितवनमें तुम्हारी छबि प्रखर।
चांदनीमें आज केवल चांदकी बातें करो।

—'अञ्चल'।

चार चीनी

श्री शम्भूनाथ सिंह

चू फू अंगड़ाई लेकर उठ बैठा। कल रातसे ही वह सोया नहीं था और सोचते-सोचते जैसे उसका दिमाग फटने लगा था। अब अधिक सोचना उसके लिए असह्य था। वह खड़ा हो गया, जैसे उसे अपना रास्ता सूझ गया हो।

'सन्तरी—सन्तरी'......

फू जोरसे चिल्लाया। दो सन्तरी यमदूतकी तरह सीखचोंके सामने आ खड़े हुए।

'सेनापतिसे कहो, मैं उनसे मिलना चाहता हूं—जाओ अभी कहो।'

एक सन्तरी चला गया और दूसरा विस्तारित नेत्रोंसे देखने लगा कि ऐसा सैनिक तो उसने इधर वर्षोंसे नहीं देखा था, उसने तो चीनियोंको गोलियोंसे उड़ाये जाते, तरह-तरहकी तकलीफें देनेपर भी अपने रास्तेपर अडिग रहते ही देखा था, किन्तु यह......

सन्तरीको इस चीनीसे घृणा हो आयी और मुंह बिचकाकर वह दूसरी ओर देखने लगा। तब तक दूसरा सन्तरी भी आ पहुंचा। दोनों सन्तरियोंने गुपचुप कुछ बातें कीं, फिर ताला खोल लोहेके सीखचोंका फाटक झनझनाते हुए हटाकर लोहेकी जञ्जीरोंसे चू फूकी कमर और बाहें कस दीं और उसे लेकर सेनापतिके पास चले। राहमें चूफू सर नीचा किये चला जा रहा था कि सन्तरी एक जगह रुक गये और चू फूने अपनेको एक भयङ्कर व्यक्तिके सामने पाया। यही वह सेनापति था, जिसने कल उसके सामने ही चीनी स्त्रियों......

'रास्तेमें कुछ देखा?' सेनापतिने गरजकर कहा।

'नहीं' चू फूका उत्तर था।

'तो अबसे देख लो। वे तुम्हारे साथी......' उसने एक ओर इशारा किया। चू फूने देखा, उसके सभी साथी पेड़ोंमें कसकर बांध दिये गये थे और सामने ही बन्दूकधारी सैनिक......तब तक धांय-धांय और तब फिर साहस इकट्ठा कर चू फूने देखा कि वे पेड़ोंसे बंधे दम तोड़ रहे हैं—मातृभूमिकी छाती अपने रक्तकी धारासे रंगते हुए। वह अपने निश्चयपर और भी दृढ़ हो गया। 'हा हा हा...'सेनापतिके अट्टहाससे आसमान गूंज उठा। 'देखा?' उसने चू फूसे पूछा।

'हां' चू फूने कहा।

'फिर?'

'मैं तैयार हूं।'

'मरनेके लिए?'

'नहीं, करनेके लिए।'

'क्या? सच।' सेनापतिके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही।

'हां, सच।'

'तो तुम सभी रास्ते और भेद बताओगे।'

'जरूर, लेकिन एक शर्तपर।'

'क्या?'

'विजय मिलनेपर मैं इस प्रान्तका शासक बनाया जाऊं। मैं यहांके सेनापतिका पुत्र हूं।'

'सच! तो तुम जरूर यहांके शासक बनाये जाओगे—जरूर।'

'एक बात और। यदि आप चाहते हैं कि समूचा प्रान्त शीघ्र आपके हाथमें आ जाय, तो मुझे कुछ चीनी गुप्तचर ढूंढ़नेकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर रहेगी......'

'लेकिन यदि तुमने विश्वासघात किया?'

'तो मेरी भी वही हालत होगी, जो अभी मेरे साथियोंकी हुई है।'

'अच्छी बात है। तुम अब यहीं मेरे साथ रहो। सन्तरी, सन्तरी......'

* * *

'और यदि ईश्वरने चाहा तो अब शीघ्र ही तुम उस प्रान्तके शासक बनोगे। क्यों न?'

'और तुम उस शासककी साक्षिका' फूने कुछ जोरसे कहा और खड़ा होकर चारों ओर देख लिया। फिर उसने मुस्कराते हुए कहा—

'सन्देह निर्मूल था प्रिये, कोई नहीं है।' और फिर सुईको बांहोंमें कसकर एक बार उसका चुम्बन ले लिया।

* * *

'मैं और फू इस बांधपर कल रातभर जागते रहे। तुम नहीं आये। न जाने कितना धन इस बांधको बनवानेमें लगा होगा।' सुईने चाओसे कहा। चाओने भी समझ-

कर कहा—अपार धन-राशि। यह बांध यदि न होता तो यह प्रान्त, ये नगर-गांव, यह लहलहाती खेती होती ही क्यों, खैर हटाओ इसे। देखो वह लियांग आया।'

'ओह, लियांग आ गया? जरूर कुछ खबर लाया होगा।' दोनों जापानी सैनिकोंकी ओर, जो चाओ और सुईके साथ बांधपर गश्त लगानेकी ड्यूटीपर थे, देखकर सुईने चाओका हाथ दबाया। चाओने भी आंख दबायी, जो चांदनी रातमें जापानी सैनिक देख नहीं सके। तब तक लियांगने झांकते हुए प्रवेश किया। 'सुई! चाओ! शीघ्र फूको बुलवाओ और सेनापतिको भी। खबर है—खबर।'

चाओ एक जापानी सैनिकको सेनापति तथा दूसरेको फूके कैम्पमें तुरन्त जाकर बुलाते आनेको कहकर तब तक उनकी ओर देखता रहा जब तक वे आंखोंसे ओझल न हो गये। फिर लियांगकी ओर देखकर उसने कहा,'शाबाश भाई, बहुत सुन्दर नाट्य किया। अच्छा सब ठीक है?

'सब ठीक है। तुम लोग तैयार हो?'

'बिलकुल।' सुईने कहा।

'तुरन्त अपनी अपनी जगहपर जाओ।' फूने दूसरी ओरसे प्रवेश करते हुए कहा,

'और मेरी सिटी बजते ही,......अब समझे? तो अच्छा जाओ।' उसने चाओ और लियांगको छातीसे लगाकर उन्हें विदा कर दिया। उनके चले जानेपर उसने सुईकी ओर आंखें फेरी।

'यह क्या सुई? आंसू! इन्हें मैं नहीं देखना चाहता। एक बार हंसो प्रिये...'

तब तक दूर एक प्रकाश दिखलायी पड़ा। दोनों संभल गये और तीक्ष्ण स्वरमें फूकी सीटी बज उठी। क्षणभरमें ही उसने एक दियासलाई जलाकर बांधमें छिपे एक तारमें लगा दिया। दूसरे ही क्षण वज्रपातका स्वर हुआ। डाइनामाइटके विस्फोटसे मीलों तक पीली नदीका बांध तो उड़ा ही, ये चारो चीनी भी हमेशाके लिए विलीन हो गये।

* * *

दूसरे दिन सवेरे न तो वहां कोई जापानी सेनाका दफ्तर था, न सैनिक, न कोई गांव था न नगर। समूचा प्रदेश पीली नदीके जलसे अपार सागर-जैसा बन गया था। चीनी सेनाका कार्यक्रम अब पूरा हो गया था।

सन्तरी सामने आ गया।

'लाओ—बोतल लाओ...और वह कलवाली चीनी लड़की...उसे भी...अब हमारी विजय अनिवार्य है...हा-हा—हा'

सन्तरी सेनापतिकी आज्ञापालनमें जुट गया।

* * *

'भयङ्कर जाड़ा पड़ रहा है।'

'हा फू, लेकिन आजकी रात...'

'सुई, तुम डरती तो नहीं हो?'

'डरना—डरती मैं नहीं फू! सोचती हूं कि इतने दिनोंका हमारा यह परिश्रम आज...'

'लेकिन इतनी उतावली न बनो प्रिये, पता नहीं क्या होगा? इन छ महीनोंमें मैंने जो कुछ किया है वह तुम्हारे ही बलपर। याद करो, जिस दिन सेनापतिके सामने मेरी तुमसे पहली भेंट हुई थी। वह तुम्हारे सतीत्वको नष्ट ही कर देता यदि मैंने अपनी सहायताके लिए तुम्हें न मांग लिया होता और आज सोचता हूं कि यदि तुम न होती तो...' फूने रुककर कुछ सुनते हुए और बातकी धारा बिलकुल बदलते हुए कहा—'आज चीनके इतने बड़े प्रान्तपर हमारा कब्जा कैसे हुआ होता। जापानियोंके सामने ये चीनी सैनिक टिकते भी कैसे! उन्हें भागना ही पड़ा और...'

सुईको बात समझते देर न लगी। उसने भी कहना शुरू किया—'और आज तो पीली नदीके उत्तरके इस बड़े प्रान्तपर उनका कब्जा है। इस नगरको अपना सदर दफ्तर बनाकर उन्होंने सेनाने बड़ी बुद्धिमानीका काम किया है और इसके लिए उन्हें तुम्हारा कृतज्ञ होना चाहिये। तुम्हींने तो उन्हें रास्ता बताये, सेनाकी कमजोर जगहोंका पता दिया और इस युद्ध-सञ्चालनमें सेनापतिके दाहिने हाथ बने रहे।'

'और तुम सुई, तुम न होती तो शायद कुछ न हो पाता। तुम निडर होकर जनतामें घूमती और पता लगाती थीं कि सेनाके कार्यक्रम क्या हैं और छापमार दस्ते किधर हैं। वे बेचारे तुम्हें अपना समझकर सभी बातें बता देते थे।'

'लेकिन फू' सुईने आंख दबाते हुए कहा—'हम दोनोंके काम उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितने लियांग और चाओके। तुममें गुप्तचरोंको शिक्षा देनेकी अपार क्षमता है फू! तुमने उन्हें जनतामें प्रचार करनेकी सुन्दर शिक्षा दी है।

'सच कहती हो सुई, इसीलिए तो बिना रक्तपात हुए ही इस प्रान्तपर हमारा अधिकार हो गया।

———

भारतीय-संस्कृतिके उपासक—थोरो

श्री व्रजकिशोर वर्मा, 'श्याम'

बात उस समयकी है, जब अमेरिकामें दास-व्यापारका उन्मूलन नहीं हुआ था। सवेरेका समय है; एक व्यक्ति अमेरिकाके कानकार्ड नगरकी सड़कपर नंगे पांव अलमस्त जा रहा है। जूतेका टूटा हुआ जोड़ा उसकी दाहिनी कांख-में है। चेहरेपर गम्भीरताकी छाप, आंखोंमें जादू-भरा तेज और चालमें स्वाभिमानकी ध्वनि। छोटा कद, गठीला शरीर और रंग हल्का। शरीरपर साधारण-सी कमीज और गाढ़े-की पतलून। उसके पीछे एक दूसरा व्यक्ति भी आ रहा है। उसने पहले व्यक्तिके निकट आते ही उसके बायें कन्धेपर हाथ रखा और अभिवादन किया। पहला व्यक्ति भारतीय संस्कृतिका उपासक अमेरिकन ऋषि थोरो था। थोरोने मुड़कर देखा, तो दूसरा व्यक्ति टैक्स वसूल करनेवाला अमीन था। अमीनने कहा—"थोरो, मैं आज तुम्हारे यहां जाने ही वाला था, कि तुम अचानक मिल गये।"

"क्या मनुष्य-करके लिए? मैं तो न दूंगा"—थोरोने गम्भीर मुसकानके साथ कहा।

"यदि हाथ तङ्ग हो तो कहो, मैं अपने पाससे दे दूं।"—अमीनने कहा।

"नहीं, पैसे तो मेरे पास हैं, पर मैं मनुष्य-कर नहीं दे सकता। तुम मुझे जेलमें बन्द करवा सकते हो"—थोरोने उत्तर दिया।

इस तरह संसारके इतिहासमें वर्तमान रूपमें सविनय सत्याग्रहका जन्म देनेवाला महापुरुष थोरो जेलमें ठूंसागया।

संसारके महापुरुषोंमें एमर्सनका एक विशेष स्थान है। यदि वह स्थान किसी अन्य व्यक्तिको मिल सकता है,तो वह डेविड हेनरी थोरोको ही मिलेगा। पाश्चात्य विद्वानोंको एमर्सनके योग्य जो सर्वश्रेष्ठ विशेषण जंचा, वह ब्राह्मण है। एक भारतीयके लिए थोरो और एमर्सन एक विशेष प्रकारका आकर्षण रखते हैं—वहआकर्षण समानशीलताका है। थोरो-के विचारोंमें भारतीयता कूट-कूटकर भरी है और यही कारण है कि हम उनकी ओर अनायास ही श्रद्धापूर्वक खिंच जाते हैं। थोरोको भारतीय सभ्यताका दिग्दर्शन करानेवाला 'ब्राह्मण' एमर्सन ही था। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जो कुछ भी थोरो हैं, उन्हें वैसा बनानेमें सबसे अधिक एम-र्सनका ही हाथ है।

सन् १८४१ में वह एमर्सनके पास गये। उन दोनोंमें परिचय तो उसी समय हुआ था, जब थोरो विद्यार्थी थे। परन्तु अब वह जान-पहचान मित्रतासे बढ़कर घनिष्टता तक पहुंच गयी। थोरो दो वर्ष तक एमर्सनके पास रहे। यह मिलन थोरोके युवा-हृदयमें उठनेवाले विचार-तरंगोंके लिए प्रोत्साहन था, उसे भावी मार्गका निर्देश था। थोरोके जवान दिलमें भारतीय आध्यात्मिकताकी किरणें चमकने लगीं। जैसे-जैसे थोरो इस ओर खिंचते जा रहे थे, वैसे ही वह भौतिकवादकी गोदमें हिलोरें लेनेवाली अमेरिकन सभ्यतासे दूर हटते जा रहे थे। अन्तमें एक दिन थोरोके जीवनमें वह भी आया,जब कि उन्होंने नगर छोड़कर जङ्गलमें धूनी रमायी। हाल्डेन झीलके मनोरम तटपर देवदारकी शीतल छायाके नीचे, थोरोने कई बार एमर्सनसे विचार-विमर्श किया था, इसलिए वाल्डेनके प्रति उनके हृदयमें पहलेसे ही स्थान था।

थोरोने वाल्डेनके तीरपर दो वर्षोंके समयका पूरा लाभ उठाया। इन वर्षोंके बीच जीवनके अन्य सारे वर्षोंकी तरह थोरोने प्रकृतिका खूब अध्ययन किया। वाल्डेनसे लौट आनेपर थोरोका कार्यक्षेत्र कुछ विस्तृत हो जाता है। हम उन्हें कभी वेदीपर खड़े होकर एमर्सनके साथ व्याख्यान देते देखते हैं, तो कभी पत्र-पत्रिकाओंके लिए लेख लिखते पाते हैं। अन्य विषयोंके साथ-साथ दास-व्यापारका विरोध करना उनके लेखों और व्याख्यानोंका मुख्य विषय था। इन्हीं दिनों थोरोने अपने मित्र-मण्डलके सहयोगसे 'ब्रूक फार्म एक्सपेरीमेण्ट' नामक संस्थाकी स्थापना की। इसके सदस्योंके लिए यह आवश्यक था कि वे साधारणसे साधारण जीवन व्यतीत करें। थोरो कहते हैं—"मैं बार-बार कहता हूं कि तुम सादे बनो। मेरा कथन है कि अपनी लाखोंकी संख्यावाली आवश्यकताओंको-घटाकर सहस्र या सौ नहीं, बल्कि दो या तीन तक ले जाओ।

* * *

थोरोका जीवन फक्कड़पनका सजीव उदाहरण है। उनके ग्रन्थोंको पढ़ते समय, उनके फक्कड़पनके कितने ही उदाहरण हमें मिलते हैं। पर उनके इस फक्कड़पनके पीछे एक फिला-

सकी थी, एक नीति थी और था एक सन्देश। थोरो मानव-जीवनकी महत्ताको खूब समझते थे। आश्चर्य तो यह है कि थोरो अमेरिकामें पैदा कैसे हुए? थोरो एक स्वाधीनचेता नरपुंगव थे। उनका सन्देश आशाका सन्देश था। एक जगह उन्होंने लिखा है—"लोग कहते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य बहुत बड़ा और प्रतिष्ठित है, और संयुक्त राज्य अमेरिका भी प्रथम कोटिकी शक्तियोंमें माना जाता है। पर हम लोग इस बातपर विश्वास न करेंगे कि प्रत्येक मनुष्यके मस्तिष्क रूपी समुद्रमें विचारकी ऐसी लहरें उठा और गिरा करती हैं कि यदि कहीं वह उन्हें धारणकर सके तो ब्रिटिश-साम्राज्य उसके विचार-सागरमें लकड़ीके टुकड़ेकी तरह तैरता मिलेगा।

थोरो कभी डिनर-पार्टी या भोजमें शामिल नहीं होते थे। वे कहते थे—

"वे इस बातका गर्व करते हैं कि उनके भोजनमें कितना अधिक व्यय होता है, और मुझे इस बातका घमण्ड है कि मेरे भोजनमें कितना कम खर्च होता है।"

सिगरेट आपने जिन्दगी भर नहीं पिया। आपने एक जगह लिखा है—

"मैंने कमलके डण्ठल सुलगाकर पिये थे, और सो भी तब, जब मैं बालक था। उनसे बदतर चीज मैंने कभी नहीं पी।"

थोरो मांस खानेके भी विरुद्ध थे। उन्होंने लिखा है :—

"मेरा यह विश्वास है कि जो व्यक्ति अपने उच्च विचारों अथवा काव्य-प्रेरणाको सर्वोत्तम दशामें रखना चाहता है, उसके हृदयमें मांस-भक्षण छोड़नेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।"

थोरो जीवन-भर अविवाहित रहे। ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें उनके विचार पठनीय हैं। उन्होंने 'हायर-लाज' नामक निबन्धमें लिखा है—

"उत्पादन-शक्ति, जब कि हम दुश्चरित्र हैं, हमको कमजोर और गन्दा बना देती है, पर वही उत्पादन-शक्ति, जब कि हम ब्रह्मचारी रहते हैं, हमें शक्ति देती है और स्फूर्ति प्रदान करती है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है मनुष्यका पुष्पित होना और जिसे हम प्रतिभा, वीरता आदिके नामसे पुकारते हैं, वह ब्रह्मचर्यरूपी पुष्पके फलमात्र हैं, जो कि पुष्पके बाद आते हैं। जब पवित्रताका स्रोत खुला रहता है, तब मनुष्य तुरन्त ईश्वरकी ओर प्रभावित होने लगता है। पवित्रता हमें प्रेरणा एवं स्फूर्ति देती है और अपवित्रता हमारा पतन करती है। वही धन्य है, जिसको प्रति दिन यह अनुभव होता जाय कि उसमें पशुता नित्यप्रति मर रही है और देवत्व स्थापित होता जा रहा है।"

"ब्रह्मचर्य है क्या चीज? मनुष्यको कैसे पता चले कि वह ब्रह्मचारी है? उसको इसका कुछ ज्ञान ही नहीं होगा। हमने भी इस गुणका नाम तो सुना है, पर उसे ठीक-ठीक जानते नहीं। हां, एक अफवाह हमने सुनी है और उसे हम यहां लिख देते हैं। परिश्रम करनेसे बुद्धिमत्ता आती है और पवित्रता भी, और आलस्यसे अज्ञान और विषयासक्ति। गन्दा आदमी हमेशा आलसी ही हुआ करता है, जो चूल्हे के निकट आलससे तापा करता है, जो सूर्योदय तक सोता रहता है और जो बिना थके सोता है। यदि तुम गन्दगीसे और संसार-भरके पापोंसे मुक्त रहना चाहते हो, तो खूब दृढ़तापूर्वक काम करो, चाहे तुम्हारा काम अस्तबल साफ करना ही क्यों न हो। प्रकृतिपर विजय प्राप्त करना कठिन है; पर उसपर विजय प्राप्त करनी ही चाहिये।"

सर्वथा निर्द्वन्द्व रहना ही थोरोके जीवनका उद्देश्य था। वह लिखते हैं :—

"अपने सहयोगियोंसे एक बात मैं निश्चयपूर्वक कह देना चाहता हूं, वह यह कि जहां तक सम्भव हो, बिल्कुल स्वतन्त्र और बन्धन-मुक्त रहो। किसी खेतपर बंध जाने, अथवा किसी जेलके बन्धनमें पड़ जानेमें बहुत थोड़ा-सा अन्तर है।"

एक जगह आपने लिखा है—"पहले मुझे इस बातकी फिक्र रहती थी कि ईमानदारीके साथ जीविका निर्वाह करते हुए भी, इतना समय कैसे बचा पाऊं, जिससे अपने प्रिय कार्योंको कर सकूं; पर उन दिनों एक लम्बा सन्दूक रेलकी सड़कके नजदीक रखा हुआ देखा करता था, जिसमें मजदूर लोग रातको अपने हथियार रख करके ताला बन्द कर दिया करते थे। उससे मेरे मनमें एक विचार आया कि कि यदि किसी आदमीको आर्थिक सङ्कट हो, तो उसे तीन डालरमें इसी तरहका सन्दूक खरीद लेना चाहिये, और उसमें हवाके आने-जानेके लिए छेद कर लेने चाहिये, पानी बरसनेपर वह आदमी उसमें घुसकर और भीतरसे ढकन देकर मजेमें अपना रात बिता सकता है। इस प्रकार उसकी आत्मा स्वतन्त्र रहेगी और वह स्वाधीनतापूर्वक अपने प्रिय विषयका अनुशीलन भी कर सकेगी। न किरायेका झंझट है और न मालिक-मकानके तकाजोंका।"

अपरिग्रही तो वह अव्वल नम्बरके थे। एक बार एक

महिलाने उन्हें एक चटाई भेंट की। आपने उससे कहा—श्रीमतीजी, मेरे घरमें इतनी जगह नहीं कि इस चटाईको रख सकूं और न मेरे पास इतना समय ही है कि इसे झाड़कर साफ कर सकूं।" और चटाई वापस कर दी। इस घटनाका जिक्र करते हुए अपनी पुस्तकमें आप लिखते हैं—"बुराईकी जड़ शुरूमें ही काट देनी चाहिये।"

आपकी डेस्कपर सफेद पत्थरके तीन टुकड़े रहते थे। आपने देखा कि उनके पोंछनेमें समय लगता है, इसलिए यह कहकर उन्हें खिड़कीके बाहर फेंक दिया कि हमें अपने दिमागको झाड़ने-पोंछनेका काम ही कौन थोड़ा है, जो इस झंझटको पालें।

अखबार और अखबार पढ़नेवालोंपर थोरोने बड़े मजेकी चुटकियां ली हैं—

"भोजनके बाद आदमी आध घण्टे भी न सोता होगा कि सोतेसे उठकर तुरन्त ही पूछता है, 'भाई क्या खबर है?' मानों सारा संसार उसकी चौकीदारी कर रहा हो और इस चिन्तामें व्यस्त हो कि हजरत ज्यों ही सोकर उठें, उन्हें खबर सुनायी जानी चाहिये। रात बीत जानेपर खबर उतनी ही जरूरी समझी जाती है, जितना जरूरी कलेवा। अरे भाई, कोई ताजी खबर सुनाओ। दुनियाके किसी हिस्सेमें किसी आदमीको कुछ हुआ हो, तो उसका समाचार बतलाओ, और काफी या चाय पीते हुए पढ़ता है कि किसी आदमीकी आंखें अमुक नदीके किनारे किसी धूर्तने निकाल लीं। इन भले मानसको यह कौन बतलाये कि हजरत, आप तो अन्धकारमें रहते हैं और आपकी आंखें तो अलग, आंखका एक टुकड़ा भी सही-सलामत नहीं है। रही मेरी बात, सो मेरा काम तो डाकखानेके बिना बड़ी आसानीसे चल सकता है। मैं तो समझता हूं कि डाकखाने द्वारा जो समाचार आते हैं, उनमें महत्वपूर्ण बहुत ही कम होते हैं। यदि आलोचनाकी दृष्टिसे कहूं तो मुझे कहना पड़ेगा कि जिन्दगी-भरमें जितनी चिट्ठियां मुझे मिली हैं, उनमें सिर्फ एक या दो ऐसी थीं, जिनका मूल्य पोस्टेजके बराबर था। एक पेनीमें जो चिट्ठी जाती है, उसमें लोग बस, एक पेनीका विचार भेजते हैं। और यह सारी दिल्लगी गम्भीरतापूर्वक की जाती है। मैं तो निश्चयपूर्वक कह सकता हूं, मैंने किसी अखबारमें कोई स्मरणीय खबर नहीं पढ़ी।"

"किसी फिलासफरके लिए समस्त समाचार जो पत्रोंमें छपा करते हैं, बिल्कुल गप हैं। जो लोग उन्हें पढ़ते या उनका सम्पादन करते हैं, वे सब चाय पी-पीकर गपें हांकनेवाली बूढ़ी स्त्रियां हैं। कितनी खबरें तो ऐसी हैं कि कोई बुद्धिमान आदमी, उन्हें साल भर या बारह वर्ष पहले ही लिखकर रखता है......इङ्गलैंडसे इधर कई शताब्दियोंसे कोई महत्वपूर्ण खबर नहीं आयी। पिछली खबर सन् १६४९ में आयी थी, जो वहांकी क्रान्तिकी थी।"

"यदि हमने किसी अखबारमें पढ़ लिया कि कोई आदमी लूट लिया गया, मार डाला गया अथवा किसी दुर्घटनामें मर गया, या यों कहिये कि कोई मकान जल गया, कोई नाव डूब गयी, जहाज फट गया, कोई गाय रेलकी पटरीसे कट गयी, कोई पागल कुत्ता मार डाला गया; तो इस प्रकारकी खबरोंका एक दृष्टान्त ही काफी है। इनको बार-बार पढ़नेकी क्या आवश्यकता? यदि किसी चीजका मूल सिद्धान्त आपको मालूम हो जाय, तो फिर उसके लाखों उदाहरण लेकर आप क्या करेंगे?" इस सिलसिलेमें एक बात याद आती है। थोरोके पिता पेंसिल बनानेका व्यवसाय करते थे। पर थोरोने पहले अध्यापन-कार्य अपने लिए चुना, किन्तु वह उन्हें पसन्द नहीं आया। फिर आपने पेंसिल बनाना सीखा। प्रयोग करके आपने एक ऐसी पेंसिल बनायी, जो लन्दनकी सर्वोत्तम पेंसिलोंका मुकाबला करती थी। बोस्टनकी प्रदर्शनीमें उसकी बड़ी प्रशंसा हुई और थोरोके मित्रोंने समझा कि बस, अब थोरोका भाग्य जाग्रत हो उठा! पेंसिलोंके व्यापारसे अब वह लाखोंकी आमदनी करेंगे। थोरोसे जब कहा गया कि इस व्यापारको बढ़ाओ, तब उन्होंने उत्तर दिया—

"मैं दुबारा पेंसिल नहीं बनाऊंगा, मैं जो कुछ एक बार कर चुका हूं, उसे फिर क्यों दुहराऊं?" पेंसिल बनानेके कामको छोड़कर आपने मस्तीके साथ इधर-उधर वन-उपवनोंकी सैर करनी शुरू की। प्रकृति-निरीक्षण ही उनका पेशा था।

थोरो वेदान्तवादके प्रेमी थे, लेकिन उनमें और अन्य वेदान्तियोंमें एक भेद दीख पड़ता है। आज तक जितने भी वेदान्ती हो गये हैं, उनमेंसे अधिकांश निराशावादी थे। उन्होंने जगतको मिथ्या कहकर त्यागनेका प्रयत्न किया है। परन्तु थोरोके विचार वेदान्ती होते हुए भी निराशावादके आचरणसे बचे हुए हैं। वह कहते हैं—"संसारको चाहे कितनी भी संकुचित दृष्टिसे देखो, वह उतना ही सुन्दर और उतनाही आकर्षक है।" जीवनसे हताश हुए व्यक्तियोंकी पीठ ठोंककर थोरो कहते हैं—"तुम्हारा जीवन चाहे

कितना भी पतित क्यों न हो, उसका वीरतापूर्वक सामना करो और उसे निवाह ले जाओ—उससे डरो मत, उसे कोसो मत। वह इतना बुरा नहीं है, जितने बुरे तुम हो। जीवन तो उतनाही तुच्छ दीख पड़ेगा,जितने तुम उच्च होगे। समालोचक तो स्वर्गकी भी त्रुटियां देखेगा। अपने जीवनसे प्रेम करो, चाहे तुम कितने ही दीन क्यों न हो......परन्तु आडम्बरमें मत फंसो।"

* * *

थोरोपर भारतीय ग्रन्थोंका काफी प्रभाव पड़ा था। वह लिखते हैं—

"प्रातःकाल मैं भगवद्गीता पढ़ता हूं। गीताको बने अनेकों दैवी वर्ष बीत गये और उसकी तुलनामें हमारा वर्तमान संसार तथा इसका साहित्य बिल्कुल छुद्र तथा तुच्छ प्रतीत होता है। और कभी-कभी तो मुझे यह शक होने लगता है कि गीताकी फिलासफी, मानव-जीवनके वर्तमान अस्तित्वके पहलेकी है, क्योंकि हमारे विचारोंके धरातलसे वह इतनी ऊंची नजर आती है।"

प्रातःकालका वर्णन करते हुए आपने लिखा है—'वेद' कहते हैं कि तमाम बुद्धियां प्रातःकालमें ही जाग्रत होती हैं।' फिर आप लिखते हैं—हरिवंश पुराणमें लिखा है कि पक्षियोंके बिना मकान वैसा ही है, जैसे बिना मसालोंका भोजन। पर मेरा मकान ऐसा नहीं था, क्योंकि मेरे निकट तो बहुत-सी चिड़ियां रहती थीं, यद्यपि मैंने एक भी चिड़ियाको पकड़कर पिंजड़ेमें बन्द नहीं किया था। बल्कि यों कहना उचित होगा कि मैंने चिड़ियोंके निकट एक पिंजड़ा बनाया था और उसमें मैं स्वयं बन्द हो गया था।"

हितोपदेश, शकुन्तला, महाभारत तथा कबीरका भी जिक्र आपके ग्रन्थोंमें आया है। मनुस्मृतिकी प्रशंसामें तो आपने कितने ही पृष्ठ भर दिये हैं। थोरोके ग्रन्थोंमें सदुपदेशोंके रत्न छिटके हुए हैं। देखिये—

"मालूम होता है कि मर्दुमशुमारी करनेवालोंने बड़ी भूल की है। इस देशमें मर्द आदमी हैं कितने? हजार वर्गमीलमें कितने मर्द होंगे? इधरसे उधर ढुलकनेवाले सिद्धान्तहीन आदमियोंकी गणना मैं मर्दोंमें नहीं करता।"

"जो आदमी अपने सैकड़ों साथियोंकी अपेक्षा सत्यके अधिक निकट है, उसीका बहुमत है, क्योंकि एक वोट तो उसका ज्यादा है ही।

"यदि तुम किसी आदमीको विश्वास दिलाना चाहते हो कि वह गलत रास्तेपर है, तो उसका उपाय यही है कि तुम स्वयं ठीक मार्गका अनुसरण करो। आदमी जो चीज देखते हैं, उसीपर विश्वास करते हैं। उन्हें देखने दो।"

* * *

थोरोको टहलनेका बड़ा शौक था। पर कौन टहल सकता है, इस विषयमें थोरोने बड़े पतेकी बात कही है—"अगर तुम माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-बच्चे और मित्र तकको छोड़नेके लिए और फिर कभी उन्हें न देखनेके लिए तैयार हो, अगर तुमने अपना कर्ज चुका दिया है और बिल्कुल स्वतन्त्र हो, तब समझना चाहिये कि तुममें टहलनेकी योग्यता है।"

थोरोसे एक बार कुछ आदमियोंने कहा—"क्या आप कृपाकर हमारे साथ टहलनेके लिए चलेंगे? थोरोने उत्तर दिया—"कह नहीं सकता। मेरे लिए भ्रमण सबसे महत्वपूर्ण चीज है, और भ्रमणका समय मेरे पास इतना फालतू नहीं है कि मैं लोगोंको अपने साथ ले सकूं।"

थोरो 'आत्मानां बुद्धि' फिलासफीके प्रवर्तक थे। इस बातको बार-बार उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें लिखा है। थोरोने एक बार दो-ढाई वर्ष, जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं, वनके निकट वाल्डेन नामक तालाबके किनारे बताया था। अपने इस प्रयोगके विषयमें उन्होंने इसी नामकी पुस्तकमें लिखा है—मैंने अपने प्रयोगसे कमसे-कम एक बात सीखी है, वह यह कि यदि आदमी दृढ़ विश्वासके साथ अपने स्वप्नोंकी दिशामें आगे बढ़ता रहे और जिस जीवनकी उसने कल्पना कर रखी है, तदनुसार रहनेका प्रयत्न करता रहे, तो उसे आशातीत सफलता मिलेगी, कितनी ही चीजोंको छोड़कर वह आगे बढ़ जायेगा और अभी जो सीमायें अदृश्य हैं, उन्हें वह पार कर जायेगा। यदि तुमने हवाई किले बनाये हैं, तो कोई परवाह नहीं, किले तो हवामें ही बनने चाहिये अब नीचेसे उसकी नींव रखना शुरू कर दो।"

थोरो एकान्त प्रेमी जीव थे; उनके एकान्तका अर्थ बहुधा समाजसे घृणा लगाया जाता है, परन्तु थोरोकी मित्रता प्रकृतिसे ही थी! एक स्थलपर वह कहते हैं—"मैंने कई बार अनुभव किया कि मनुष्यसे घृणा करनेवाले और नितान्त उदास प्रकृति मनुष्य तकके मनोरञ्जनके लिए किसी भी प्राकृतिक वस्तुमें पर्याप्त सामग्री मिल सकती है।"

"मनुष्यकी मित्रता केवल मनुष्यसे ही सम्भव है।" इस सम्बन्धमें वह लिखते हैं—"मेरा अनुभव है कि अधिक से अधिक शारीरिक प्रयत्न भी दो हृदयोंके सम्बन्धको पहले

से अधिक घनिष्ट नहीं कर सकते।" इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए थोरोने प्रकृतिको ही अपना अभिन्न साथी बनाया और इसी प्रेमके लिए इस लोकसे प्रयाण भी कर गये। सन् १८६० में थोरो एक दिन जङ्गलमें प्रकृति-अध्ययन करते हुए तुषारापातमें पड़ गये और उन्हें ठण्ड लग गयी। इस ठण्डने बढ़कर क्षयरोगका रूप धारण कर लिया। फलतः १८६२ की छठीं मईके दिन केवल ४५ वर्ष-की आयुमें यह असाधारण व्यक्ति इस संसारसे उठ गया।

थोरोने अपना जीवन एक आदर्श स्थापित करनेमें लगाया और वह इसमें सफल भी हुए। उन्होंने पूर्ण अंशोंमें गेटेके इस आदर्शका पालन किया कि यह तो एक मर्दका ही काम है कि वह अपने जीवनके अन्तको उसके आरम्भ-जैसा बनावे। चाहे थोरोने जीवनभर किसी भोजमें भाग न लिया हो, चाहे वह लोगोंकी चहल-पहलसे भागते रहे हों, परन्तु हम इससे यह नहीं कह सकते कि वह सभ्य नहीं थे। वह उन्नतम समाजके मुकुट बनने योग्य थे, परन्तु होश-हवास आवश्यकतासे अधिक दुरुस्त होनेके कारण, वह सनकी कहलाये। उन्होंने अपने छोटेसे जीवनमें ही सारी योग्यताओंको ग्रहण कर लिया था। वर्तमान अमेरिका द्वारा पोषित सभ्यताके घोर विरोधी होनेपर भी वह उतने ही देश-भक्त अमेरिकन थे, जितना कि एब्राहम लिंकन। परन्तु वह मनुष्य पहले थे और उसके बाद अमेरिकन। और यही कारण है कि वह टालस्टाय और महात्मा गान्धी-जैसे महान व्यक्तियोंको प्रभावित कर सके हैं।

इस युगमें जब कि अधिकांश आदमियोंके सिरपर जीवन-को सफल बनानेकी धुन सवार है जब शीघ्रातिशीघ्र धन-वान बननेकी प्रबल आकांक्षाने लाखों आदमियोंकी नींद हराम कर दी है, जब लोग वर्षोंका काम महीनोंमें और महीनोंका घण्टोंमें कर डालनेकी फिक्रमें हैं, थोरो-जैसे फक्कड़ आदमीका जीवन एक खास सन्देश रखता है। आज चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है, भौतिकवादकी ज्वाला-में मानवता तड़प रही है। थोरोका सन्देश उसे कई अंशोंमें निवारण कर सकता है। वह कहते है—"संसार आनन्दका क्षेत्र है; परन्तु लोगोंने उसे चारों ओरसे इस प्रकार घेर लिया है कि सारी सुन्दरता छिप गयी है। मनुष्यकी मूल आवश्यकतायें बहुत थोड़ी हैं।"

———

जीवन—एक खेल

श्री रा० वीलिनाथ "कृत्तिवास"

रंगून जानेवाले जहाजके मद्रास बन्दरगाहसे छूटनेमें कुछ ही मिनट बाकी थे। जहाजके यात्री डेकपर खड़े होकर तटके अपने बन्धु-बान्धवोंसे बिदा हो रहे थे।

किनारेपरसे समेशय्यरने कहा, "रामू, पहुंचते ही तार दे देना; देर मत करना।"

"जरूर दूंगा, मामाजी।"

"देखो, उस बेंतकी टोकरीमें कुछ नींबू रखे हैं। पेटमें गड़बड़ हो, तो शर्बत बनाकर पी लेना", यह समेशय्यरकी देवीजीके मुंहसे निकला।

"वहां जानेपर हमें भूल तो न जाओगे?" समेशय्यरकी सुपुत्री जानकीके मुंहसे ये शब्द निकले ही थे कि आंखोंसे दो आंसूकी बूंदें टप-टप उसके गालोंपर चू पड़ीं।

जहाज खिसकने लगा। "सबको मेरा नमस्ते। पत्र लिखते रहियेगा। भूल न जाइयेगा।" कहते हुए रामू-का गला भर आया। तटवर्ती लोगोंकी भी यही दशा थी। सभी लोग, जब तक जहाज दिखायी पड़ता रहा, अपने-अपने इष्ट-मित्रों और सम्बन्धियोंको हाथसे रूमाल हिलाते हुए बिदा करते रहे और फिर घर वापस चले आये।

रामू वकील समेशय्यरका भानजा था। वह एक वर्षका भी नहीं हो पाया था कि उसके पिताजी चल बसे। इस-लिए अपनी बाल-विधवा बहनकी परवरिशका भी बोझ समेशय्यरके कन्धों पड़ा। रामू अभी पूरे डेढ़ सालका भी नहीं हुआ था कि उसकी मांको भी एक भयानक बीमारीने आ घेरा और उसने उनकी जान लेकर ही छोड़ा। समे-शय्यरकी पत्नीके हाथमें रामूका हाथ पकड़ाते हुए, भाभी, रामूको अपना ही बालक समझना, यह कहकर रामूकी मांने दम तोड़ दिया।

अब रामूके मां-बाप, चेलम्माल और समेशय्यर बने। इन पति-पत्नीके कोई औलाद न थी। रामू ही उनके प्रेमका पात्र बना। चेलम्माल अपने बांझपनको भूल-सी गयी; रामू, सारी खुशी, सारे आनन्दका पात्र बन गया। रामूकी —उस स्वर्णमूर्तिकी—रोज शामको आरती उतारी जाती

थी। रामूका 'अम्मां' कहना चेल्लम्मालको माताके उच्च स्थानपर चढ़ा देता था। रामूकी तारीफ करते हुए चेल्लम्मालकी जबान कभी नहीं थकती थी। रामू पांच बरसका हुआ; उसका अक्षराभ्यास बड़ी धूम-धामसे किया गया और पास हीके एक मदरसेमें उसे पढ़नेके लिए भेजा गया। चेल्लम्माल, नन्हें-नन्हें हाथोंमें स्लेट-पुस्तक लेकर पाठशालासे आते हुए रामूको देखकर आनन्द-विभोर हो जाती थी।

कालचक्रकी करतूत कहिये या दैव-संयोग, कुछ महीनोंके बाद चेल्लम्माल गर्भवती हो गयी। यह खबर लोगोंमें फैल गयी तो रामूसे कहने लगे, 'रामू, तेरी जोरू पैदा होनेवाली है! तू बड़ा भाग्यवान है!" रामू लोगोंकी ये बातें क्या खाक समझता!

—२—

चेल्लम्मालका एक भाई था, जो अपने मां-बापकी आज्ञा न मानता था। बड़ा ही उद्दण्ड था। नाम था कोदण्डराम्। प्रायः ऐसे उद्दण्ड, बेअदब लड़के शादी हो जानेपर ठीक रास्ते पर आ जाते हैं। कोदण्डके मां-बापने इसी इरादेसे आंडाल नामकी एक लड़कीके साथ उसकी शादी करा दी। फिर भी कोदण्डकी उद्दण्डता कम न हुई। उसके दुष्कृत्योंने जोर मारा और वह एक बैंक-केसमें फंस गया। वह जेलकी सैर करनेसे डरा, जिससे एक दिन रातोंरात वह सिंगापुर भाग गया। दो-तीन वर्षों तक उसकी कोई खबर न मिली। उसके मां-बाप उसे भूल-से गये। सहसा एक दिन उसका एक पत्र मिला, जिसमें उसने लिखा था कि मैं सिंगापुरमें हूं; एक आफिसमें काम कर रहा हूं। मैं अभी वापस नहीं आऊंगा; इसलिए मेरी पत्नी आंडालको यहां भेज दीजिये।

कोदण्डरामके एक लड़का चार-पांच सालका था, जिसका नाम था कृष्ण। पुत्रका पत्र पाकर बापने एक विश्वस्त व्यक्तिके साथ सिर्फ आंडालको भेज दिया और पोतेको अपने पास ही रख लिया।

चेल्लम्माल प्रसवके लिये मायके आयी, रामूको साथ लेकर। रामू और कृष्ण करीब-करीब सम-वयस्क थे। समय आनेपर एक सुन्दर बालिका चेल्लम्मालकी गोदमें किलोलें करने लगी; नाम रखा गया जानकी। रामू इस नयी चीजपर मोहित हो गया और दिन-रात उसीके साथ रहने लगा।

चेल्लम्मालके हृदयमें बालक-बालिकाके प्रति एक समान लाड़ था, एक समान प्यार था। उसके मनमें अपना-पराया-पन छू तक नहीं गया था। रामूके प्रति उसका व्यवहार पहले हीकी तरह प्यारका था। तिल-भर भी भेद-भाव न पड़ा। पर वह चेल्लमालकी मां सीताको एक आंख भी न भाती थी। उसके मनमें ईर्ष्याका अंकुर निकला, जो चेल्लमाल और रामूको अलग करनेकी—जलन पैदा करनेकी—साजिश कर रहा था। चेल्लम भली-भांति जानती थी कि मांके मनमें हसद है। पर मांके खिलाफ उससे कुछ कहते न बनता था।

एक दिनका वाक़या है। सीताने आगन्तुकोंको लड़की दिखाते हुए बात-चीतके सिलसिलेमें कहा, "देखो, हमारे किट्टू (कृष्ण) की भावी पत्नीको! कितनी खूबसूरत है।"

बस अबोध बालक रामू क्रोधसे लाल हो गया और चेल्लमालसे कड़ककर बोला,—मां, देखो, दादी मेरी बीबीको किट्टूकी बीबी बताती है। सच कहो मां, जानकी मेरी बीबी है या किट्टूकी?"

साधारणतः लोग बच्चोंकी सामयिक तोतली बोलीको सुनकर स्वर्गका आनन्द लूटते हैं। पर ईर्ष्यालु सीतम्माल बच्चेकी इन बातोंका आनन्द काहेको लूटती! उसने ताने कसना शुरू कर दिया, "हां-हां ख्वाब देखते रहना कि जानकी तुमको मिलेगी। तुम-जैसे अल्पायुवाले, बदनसीब, कुलांगारसे मेरी जानकी क्यों शादी करने लगी! जन्मते ही मां-बापको खा गया और बेशरम होकर कहता है कि जानकी मेरी है। हरामजादा!"

चेल्लम्मालसे अब सहा न गया। मांको नफरतकी दृष्टिसे देखकर बोली, क्यों मां, बच्चा क्या जानता है! उससे क्यों इस तरह नफरत करती हो? बच्चोंकी ऐसी-ऐसी बातोंको सुनकर खुश होना चाहिये, गुस्सा नहीं करना चाहिये।" रामूको चुमकारते हुए चेल्लम्माल समझाने-बुझाने लगी।

ईर्ष्यालु सीतम्माल इस दृश्यको कैसे देख सकती थी! आंखें मूंदती हुई वहांसे चल दी।

—३—

जानकी छठवां साल पार कर रही थी। रामूको उसकी देख-रेख करने और पढ़ाने-लिखाने वगैरहका काम सौंपा गया। रामू जानकीको पढ़ाते-लिखाते आनन्द अनुभव कर रहा था।

इसी बीच कालदेवने इस संसारसे चेल्लम्मालके पिताको छीन लिया। इसलिए सीतम्माल अपने पोतेको साथ लेकर, बेटीके घर रहने लगी। अब सीतम्मालको रामूकी शिकायत करनेके बराबर मौके मिलते रहे। 'चेल्लम्मालको रामू 'मां' कहकर पुकारता था जो सीतम्मालको बहुत खटकता था। कहती, अपनी मांको खाकर गांववालोंको 'मां' कहकर पुकारनेमें तुमको शर्म नहीं आती?

राम बड़ा हुआ तो दुनियाका तजुर्बा हासिल किया, जिससे उसे दुनियावालोंसे सलूक करनेके तरीके मालूम हुए। समय व पात्रके अनुसार वह अपनी जिन्दगी बसर करने लगा।

सीतम्माल जानकीको रामूसे अलग करनेपर ही तुल गयी। कृष्ण और राम एक ही स्कूलमें—एक ही दरजेमें पढ़ते थे।

'रसरी आवत जातते सिलपर होत निशान'के अनुसार सीतम्मालके उपदेश चेल्लम्मालके दिलमें असर कर गये। उस कारणसे रामूकी पढ़ाई एस-एस-एल-सी तक ही पर्याप्त समझी गयी। फिर भी कालेजकी पढ़ाई बन्द नहीं की गयी। कृष्ण तो मालदार घरका था, जिससे उसको कालेज-जीवन; हास्टल-जीवन वगैरहके आनन्द लूटनेका मौका मिल गया। चेहरा दिलका आईना है। रामूको चेल्लम्मालका परिवर्तन धीरे-धीरे स्पष्ट दिखायी देने लगा। वह मन-ही-मन कुढ़ने लगा।

दिन-प्रति-दिन रामूके प्रति शिकायतें बढ़ने लगीं। सीतम्मालने अपनी हुकूमतमें सिर्फ रामूके वास्ते कठोर नियम बना डाले, जिससे रामूको अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा आदि मिलना मुहाल हो गया। रामू जीवनको भार-स्वरूप समझने लगा था।

जानकी अब तेरहवां पार कर चुकी है। उसको अपनी नानीके ये कार्य अच्छे न लगे। 'मां, नानीसे कह दो कि रामूके प्रति उसका व्यवहार कठोर न होना चाहिये।' जानकीने कहा। चेल्लम्मालकी क्रोधभरी आंखोंने जानकीका मुंह बन्द कर दिया। वह मन-ही-मन बहुत उदास हो गयी।

"चेल्लम, जानकी तो अब सयानी हो गयी है। रामूके साथ उसका इस तरहका व्यवहार अच्छा नहीं। कहीं कल बदनाम हो जाये, तो मुंह बाहर निकालना दुश्वार हो जायेगा। उसे समझा दो, नहीं तो फिर......" इस तरहके शिक्षाप्रद उपदेश सीतम्मालके मुंहसे निकलने लगे। जानकी और रामूको एक जगह खड़े बातचीत करते देखती, तो ऐसा घूरती कि मानों उन्हें जलाकर खाक कर देगी। इस उपदेशके बाद रामू और जानकीका मिलना रुक गया। कभी-कभी कृष्ण छुट्टीपर आता। सीतम्माल कृष्णके सम्बन्धमें बातें करने लगतीं, तो जानकी नाक-भौंह सिकोड़कर निकल जाती। जानकीका यह कार्य मां-बेटीमें आग-घीका काम करता।

समेशय्यर बड़े ही सीधे-सादे व्यक्ति थे। घरेलू कामोंमें कभी दखल नहीं देते थे। चेल्लम्माल रामूके सम्बन्धमें पतिके सामने मीठी-मीठी बातें करती, पर घरके अन्दर कटु व्यवहार करती। रामूके साथ कैसा व्यवहार हो रहा है, यह समेशय्यर क्या जानते थे?

मांके स्वभाव, आचार-विचारोंका ही सन्तान अनुशीलन करती है। ताज्जुब नहीं कि चेल्लम्मालने भी अपनी मांका रास्ता पकड़ा। समेशय्यरके कानोंमें यह मन्त्र पढ़ाया जाने लगा कि अब रामूको ज्यादा पढ़ाने-लिखानेसे क्या फायदा? आजकल नौकरी कहां मिलती है? हम कहां तक उसके लिए खर्च करें! उसको भी आर्थिक स्थितिका ज्ञान होना चाहिए। आप भी अपनी हालत पर विचार करें। इस तरहके मीठे वचनोंसे समेशय्यर अपनी ओर खिंचे जाने लगे। उनके विचारोंमें परिवर्तन आने लगे। उस दिनसे किफायतशारीकी आयोजना अमलमें लायी गयी। रामूके लिए नये कपड़े नहीं खरीदे जाते थे। समेशय्यरके पुराने कोट-पतलून उसे दिये जाने लगे। बी० ए० आनर्समें रामू और किट्टू दोनों नामवरीके साथ उत्तीर्ण हुए।

एक दिन रातको समेशय्यरसे चेल्लम्मालने कहा कि "किट्टू आई० सी-एस० पढ़ने विलायत जाना चाहता है। उसीके साथ अपनी जानकीकी शादी क्यों न कर दें! अम्मां भी कहती है कि उसके विलायत जानेके पहले शादी हो जाय, तो अच्छा हो। आपकी क्या राय है?"

समेशय्यरने कहा, "अभी क्या जल्दी पड़ी है! दो वर्षके बाद उसकी चिन्ता करेंगे। लड़कीको निश्चिन्त होकर एस० एस० एल० सी० तक पढ़ने दो।" सीतम्मालके कानोंमें ये बातें पड़ीं, तो उसने निराशा-भरी आवाजमें कहा—"मैं कौन होती हूं, इसकी चिन्ता करनेवाली? मुझे क्या, लड़की भाड़में जाय या सुखी रहे! मेरा कर्तव्य था, मैंने कह दिया!"

कुछ महीनों बाद कृष्ण विलायत चला गया।

—४—

महीने अब वर्षके रूप धारण करने लगे। पर रामू अब तक बेकार ही बैठा था। सीतम्मालकी शिकायतें तो कम होनेकी नहीं थीं। पर समेशय्यर इन बातोंपर कान न देते थे। कृष्ण आई० सी-एस० पास हो गया, यह खबर पाते ही मां-बेटीकी खुशीकी हद न रही। घरमें इस खुशखबरीको सुनकर अगर किसीको अफसोस या वेदना हुई, तो वह थी जानकी।

रामूसे घरके ये कठोर व्यवहार न सहे गये। वह घरसे भाग जाना चाहता था, पर मामा-मामीसे मुंह मोड़कर

नहीं। पर उसकी दिली ख्वाहिश थी कि वह किट्टूके आनेके पहले कहीं भाग जाये। संयोगसे रंगूनकी एक कम्पनीमें उसको मैनेजरी मिल गयी। यह सुनकर मां-बेटीको खुशी तो हुई, पर उसकी विदाईकी तैयारी की ओर उन लोगोंने कुछ ध्यान नहीं दिया। कृष्णके स्वागतके इन्तजाममें ही वे लगी थीं।

इसी समय कृष्णका एक खत इस आशयका मिला कि वह अपनी ड्यूटीपर जा रहा है। अभी वह स्वदेश नहीं लौट सकता। उसने एक विलायती युवतीसे शादी कर ली है। मौका मिलनेपर वह फिर कभी आयेगा। उसे क्षमा किया जाये।

यह खबर सुनते ही मां-बेटीके सिर मानों दुखका पहाड़ टूट पड़ा। मगर जानकीको बड़ी खुशी हुई। इस आघातसे अब सीतम्मालके उपदेश कम पड़ गये और चेल्लम्मालके विचारोंमें एकदम परिवर्तन हो गया और वह पहलेकी चेल्लम्माल बन गयी। एक दिन उसने अपने पतिसे कहा कि जानकीका ब्याह हमारे रामूके साथ ही कर दिया जाय। नौकरी न सही, वकालत तो कर ले और गृहस्थी संभाल ले। आप क्या राय देते हैं?

"वही तो मैं भी सोच रहा हूं।"

रामूको बुलाकर समेशय्यरने उससे सारी बातें कहीं और उसकी सम्मति चाही। रामू इसी तरहके एक मौकेकी ताकमें इतने दिनोंसे बैठा रहा—अपनी सम्मति—इन्कारी देनेके लिए।

उसने बिना आगा-पीछा सोचे अपने हृदयकी जलन निकाल ही दी। 'मैंने आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका इरादा कर लिया है। विवाह करना भी चाहूं, तो इस समय नहीं। विवश हूं।' रामूका आत्माभिमान-भरा यह जवाब जानकीके हृदयमें तीर-सा लगा। वह अपने भाग्यको धिक्कारने लगी। वह बेचारी इसके सिवा क्या कर सकती थी। घर-भरमें उदासी छा गयी।

—६—

रामूको रंगून गये एक वर्ष हो गया। बचपनसे जानकी के प्रति उसका मन लगा हुआ था। वह अमिट प्रेम, भुलायेसे कैसे भूल सकता था! रंगून जानेपर उसको प्रेमका सच्चा रूप प्रतीत हुआ। उसके नयनोंके आगे जानकीके बचपनके सभी दृश्य आये। जहाजका दृश्य और जानकी का 'वहां जानेपर हमें भूल तो न जाओगे' वाक्य याद आये! उसका दिल जानकीके प्रेममें टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। उसने पहले ख्याल तक न किया कि एक अबलाका प्रेम हृदय पर इतना असर करेगा। इतनी चोट करेगा। दिन-रात उसकी आंखोंमें भोली-भाली जानकीकी सूरत समायी हुई थी। वह पछता रहा था, पागल हो रहा था और प्रेमका शिकार हो, मर रहा था। उसके मनमें जब यह ख्याल आता कि वह अबला—भोली जानकी—मेरे प्रेम-पाशमें फंसकर मनमें कितना कष्ट भोगती होगी, तो वह जार-जार रो पड़ता।

एक दिन उसने सोचा कि मामाको हृदयके उद्गार लिख दूं और उनसे माफी मांग लूं। प्रार्थना करूं कि जानकीके साथ मेरा ब्याह कर दें, यह सोचकर उसने अपने मामाके नाम एक पत्र लिखा और उसे एक किताबमें रख दिया कि आफिस जानेपर वह डाकसे भेज देगा। उसी दिन उसे मामाका पत्र मिला। लिखा था—

"चिरञ्जीवी रामू! तुम्हारा पत्र नहीं मिला। खैरियतकी खबर तो देते रहना चाहिये। जानकी सर्वप्रथम एस० एस० एल० सी० में पास हो गयी है।"

"कृष्ण कलकत्तेसे यहां आया है। उसकी विलायती बीबीको यह देश पसन्द न आया, तो वह तलाक देकर लन्दन चली गयी है। अब हमने निश्चय कर लिया है कि किट्टूके साथ ही जानकीका ब्याह कर दिया जाय। मुहूर्त भी आठवीं तारीखको है। आशा है, तुम छुट्टी लेकर शादीमें आओगे; नहीं तो हम उन दोनोंकी एक फोटो खींचकर तुम्हारे यहां भेज देंगे। पत्रोत्तर दो।"

तुम्हारा हिताभिलाषी—समेशय्यर

रामूने पत्र पढ़ा, तो अपनी आंखोंसे भी उसका विश्वास उठ गया। आंखें चौंधियां गयीं। पैरों तलेसे जमीन खिसकने लगी। मन बेचैन हो उठा। बड़ी देर तक पत्थरकी मूर्तिकी नाईं स्तम्भित होकर वह बैठा रहा। फिर उसके हाथने उस किताबमेंसे, जिसमें उसने पत्र लिख रखा था, पत्रको निकाला और उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला—भगवन्! इतना तो मेरा अपमान हो चुका। अब तुमने इस अपमानसे तो मुझे बचा दिया! यह खत आजकी डाकसे चला जाता तो.........। आह! तुम्हें इसके लिए अनेक धन्यवाद! फिर वह दीवार पर टंगे हुए भगवान्‌के चित्रको देखकर एक तरहकी भयङ्कर हंसी हंसकर बार-बार कहने लगा—'जीवन एक खेल-तमाशा है।'*

——

* एक तामिल कहानीके आधार पर।

भारतका दुग्ध-व्यवसाय

श्री अवनीन्द्र विद्यालङ्कार

भारतका यह दुर्भाग्य समझना चाहिये कि लार्ड लिनलिथगो-जैसे गो-भक्त वायसरायके कालमें, जो जीवनके विकास, संवर्द्धन और पोषण तथा बौद्धिक विकासमें दूधका इतना अधिक महत्व मानता था, जो भारतकी अर्थनीतिका आधार पशुओंको मानता था, प्रति व्यक्ति दूधकी खपत ६.६ औंससे घटकर ५.८ औंस रह गयी और हमारे पशु-धनका इतना ह्रास हो गया कि खेतीके लिए भी पर्याप्त पशु नहीं रहे हैं। यह लार्ड लिनलिथगोके साथ भाग्य-विडम्बना समझें या भारतका दैव दुर्विपाक!

कृषि-सदस्य सर जोगेन्द्र सिंहका मत है कि भारतमें पशुओंकी कमी नहीं हुई, अतः भयकी बात नहीं है। कृषि-सदस्यका यह कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। यही नहीं, बल्कि उनका कथन भ्रमोत्पादक भी है, क्योंकि यह वस्तुस्थितिपर पर्दा डालनेवाला है। प्रति व्यक्ति दूधकी खपतमें १२ प्रतिशतकी कमी १९४१ में आ गयी थी। १९३५ में प्रति व्यक्ति ८ औंस दूध पड़ता था। मगर इसके तीन साल बाद यह परिमाण ६.६ औंस हो गया और १९४१ में ५.८ औंस आकर रह गया। १९४३ में इसमें और कमी आयी होगी। यह कमी जनसंख्याके बढ़नेके कारण या पशुओंकी संख्या कम होनेसे ही हुई है, यह एक विचारणीय विषय है। दूसरी बात यह कि अन्य देशोंके मुकाबले भारतका दुग्ध-व्यवसाय किस स्थितिमें है और इसमें उन्नतिकी कितनी गुञ्जाइश है और भारतमें भारतीय आवश्यकताको पूरा करनेके लिए पर्याप्त पशु हैं या नहीं, इन प्रश्नोंका उत्तर जाननेके लिए हमें वस्तुस्थितिका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। मगर इसपर विचार करते हुए हमें अपनी आवश्यकता और आवश्यक दूधके मानदण्डका भी ख्याल रखना चाहिये। तीन सालके बच्चेको प्रति दिन न्यूनतम दूध २॥ पौंडसे ३॥ पौंड तक मिलना चाहिये और उम्रके बढ़नेके साथ घटकर १ पौंड प्रति दिन मिलना चाहिये। वयस्क आदमीको न्यूनतम आधा पौंड दूध और आधासे १ पौंड तक छाछ मिलना चाहिये। इस मानदण्डको सामने रखकर ही हमें दुग्धकी किसी योजनापर विचार करना चाहिये। आज जब दूध ६ आनेसे १२ आना प्रति सेर मिल रहा है, बड़े ही शहरोंमें नहीं, अपितु कस्बोंमें भी; तब कितने लोगोंको दूध मिलता होगा, यह विचारणीय है और इसका राष्ट्रके स्वास्थ्यपर कितना घातक असर पड़ रहा है और युद्धोत्तर कालमें संक्रामक बीमारियोंके फैलनेपर उनका कैसे मुकाबला किया जा सकेगा, यह भी विचारणीय है।

डा० नार्मन राइट एम० ए० डी० की गणनाके अनुसार भारतमें ८० कोटि मन दूध उत्पन्न होता है। इसका मूल्य ३ सौ कोटि रुपया होता है। अर्थात् भारतमें इङ्गलैण्डकी अपेक्षा ४ गुना, डेनमार्ककी अपेक्षा ५ गुना, आस्ट्रेलियासे ६ गुना और न्यूजीलैण्डसे ७ गुना दूध उत्पन्न होता है। दुग्ध उत्पादनमें भारतके बराबर संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाके सिवाय और कोई देश नहीं है। मगर जन-संख्याकी दृष्टिसे भारतका दूध-उत्पादन बहुत कम है।

पिछले दस सालोंमें भारतका प्रति व्यक्ति दूधका परिमाण घटकर ५.८ औंस रह गया है। संसारमें ३० से ४० औंस प्रति दिन प्रति व्यक्ति दूध पैदा करनेवाले ६ देश हैं। पोषणके लिए इतना दूध आवश्यक है और वह उनके निवासियोंको मिलता है। ९ देशोंमें प्रति व्यक्ति प्रति दिन ४० औंससे अधिक दूध होता है। वे देश दूधके पदार्थ विदेशोंको भेजते हैं। शेष पांच देशोंमें दूधका परिमाण कम होता है। इनमें इङ्गलैण्ड औद्योगिक देश होनेसे दूधके बने पदार्थोंका आयात कर सकता है, मगर शेष चार देश कृषि प्रधान होनेसे आयात करनेमें असमर्थ हैं और भारत इनमेंसे एक है।

कुछ दिन पहले पञ्जाबके एक सौ परिवारोंके आहारकी जांच की गयी थी। उससे मालूम हुआ कि प्रति व्यक्ति ५ से ६ औंस रोज दूध मिलता है। यदि इसमें घी, छाछ आदि 'गव्य' पदार्थोंको शामिल किया जाय, तो प्रतिव्यक्तिको प्रतिदिन दूधके एवजमें १६ औंस ये पदार्थ मिलते हैं; पर स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह मात्रा अपर्याप्त है। दक्षिण भारतके ४४ कुटुम्बोंकी जांच करनेपर मालूम हुआ कि ३१ परिवारोंको नामको भी दूध नहीं मिलता और शेष १३ कुटुम्बोंको प्रति व्यक्ति ३ औंससे भी कम मिलता है।

नगरोंमें दूधका परिमाण और भी अल्प है। ढाई हजार श्रमिकोंके घरोंकी जांच करनेपर मालूम हुआ कि

प्रति व्यक्तिको प्रति दिन आधा औंस भी दूध नहीं मिलता। घीका परिमाण प्रति व्यक्ति .०५ औंस है। बंगाल की जूट मिलोंके ९७ मजदूरोंके घरोंकी जांच की गयी, जिससे मालूम हुआ कि प्रति व्यक्तिको दूधका परिमाण १ औंससे भी कम और घी .१ औंस है!

मानवीय शरीरके लिए प्रोटीन आवश्यक तत्व है। दूध-में यह पुष्कल मिलता है। यूरोपियनके लिए ३७ ग्राम प्रोटीन और गर्म मुल्क होनेके कारण भारतीयोंको १६ ग्राम प्रोटीन चाहिये। इसके लिए क्रमशः ३५ व १५ औंस दूध प्रतिदिन प्रति व्यक्ति मिलना चाहिये। इसका अर्थ है कि 'संरक्षक' द्रव्यकी पूर्तिके लिए दुग्धाहारको तीन गुना करनेकी जरूरत है। मगर भारतकी वर्तमान गरीबीमें यह क्या संभव है? दक्षिण भारतके एक परिवारमें प्रति विद्यार्थी भोजन-का मासिक व्यय साढ़े तीन आना आता है। इस अवस्था-में वे दूध कैसे पी सकते हैं? इसका उपाय यह है कि दूध सस्ता किया जाय या प्रति व्यक्ति आमदनी जो कि इस समयमें १ सौ रुपये वार्षिक है—बढ़ाई जाय।

भारतमें दुग्धालय (डेयरी) का धन्धा अभी हालका है। १८८९ में मलाई निकालनेकी मशीन यहां आयी और सेनाके वास्ते १८९१ में प्रयागमें पहला दुग्धालय (डेयरी) खोला गया। १९२० में इम्पीरियल डेयरी एक्सपर्टकी नियुक्ति की गयी।

दुग्धालयोंकी स्थापनाके समय किसानोंकी अवस्था नहीं भुलायी जा सकती। दुग्धालयोंके लिए डेनमार्कमें ४० एकड़, इङ्गलैण्डमें १०० एकड़, न्यूजीलैण्ड और अमेरिकामें १५० एकड़ जमीन है। मगर भारतमें खेती छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बंटी है।

संयुक्त प्रान्त, आसाम, बङ्गाल, बिहार व उड़ीसामें प्रति किसान जोतकी जमीनका औसत २.५ से ३ एकड़ जमीन पड़ता है। जमीनके समान पशुओंमें भी जमीन-आसमानका अन्तर है। डेनमार्कमें प्रत्येक खेतीपर ९ गाय, और अमेरिकामें १२ है। भारतीय किसानका पशु-धन है, बैलोंकी एक जोड़ी, एक गाय या भैंस। यहां २कोटि३०लाख मन शुद्ध घी निकलता है। १९२४ से २९ तक भारतसे विदेशोंको ५३ हजार मन घी गया। इसका मूल्य ३८ लाख रुपया होता है। १९२९-३५ में इसमें १४ लाख रुपये की वृद्धि हुई। यह घी मलाया जाता था।

विश्वमें पशुओंकी संख्या ६९ कोटि है। इसमें भारतके अन्दर १८ कोटि ८० लाख हैं, जो विश्वके पशुओंका तीसरा भाग है। रूसमें साढ़े छः कोटि और अमेरिकामें ९ कोटि ८० लाख पशु हैं। इङ्गलैंडमें केवल ७० लाख जानवर हैं। भारतकी गरीबीके कारण यहां दूधका उत्पादन कुल ३ सौ कोटि रुपयेका होता है। यह भारतमें उत्पन्न कुल चावलके मूल्यके बराबर है और कुल उत्पन्न गेहूंके मूल्यका तीन-चौथाई भाग है। जानवरोंके चमड़ोंका मूल्य प्रति वर्ष ४० कोटि रुपया होता है। खेतीमें जानवरोंका उपयोग होता है। अतः इनकी कीमत भी लगानी चाहिये। प्रतिवर्ष भारतमें खेतीसे २ हजार कोटि रुपयाका माल उत्पन्न होता है। इसमें ४ सौ कोटि रुपया जानवरोंकी मजदूरी है। इसके सिवाय जानवरोंसे २७० कोटि रुपयाकी खाद जमीन-को मिलती है। जमीनको उपजाऊ बनानेमें जानवरोंका और उपयोग हो सकता है। कहनेका मतलब यह है कि जानवरोंसे भारतीय खेतीको १ हजार कोटि रुपयेका लाभ प्रतिवर्ष होता है।

इस सम्बन्धमें प्राप्त आंकड़ोंसे मालूम हुआ है कि गो-वंशमें यदि बीस सालके अन्दर ३ प्रतिशत वृद्धि हुई है, तो भैंसोंकी संख्यामें १३ प्रतिशत वृद्धि हुई है। भारतमें गो-वंशको सुधारनेके लिए कृषि-कमीशनने १० लाख सांड़ोंकी जरूरत बतायी थी। मगर आज सैकड़े १ सांड़ देशमें नहीं हैं। १९२६ में १ लाख जानवरोंके पीछे एक पशु-चिकित्सक था। वस्तुतः २५००० पशुओंके पीछे एक पशु चिकित्सक चाहिए। इस समय ८५००० पशुओंके पीछे एक पशु-चिकित्सक है।

भारतके पशुधनकी अवस्थाका ऊपर चित्र अङ्कित किया गया है। प्रश्न यह है, क्या भारतकी आबादीके मुताबिक यहां पर्याप्त पशु हैं? लड़ाईके कारण दुनियाकी स्थिति बदली हुई है। अतः आजकी अवस्थासे तुलना करना ठीक न होगा।

संसारके प्रमुख बारह देशोंमें पशुधनकी दृष्टिसे भारत का नम्बर आठवां है और गौ और भैंसोंकी दृष्टिसे नांवां है। क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि पशुधनको और अधिक बढ़ानेकी जरूरत है? १९३४-३५ में हुई पशुगणनामें सब देशोंमें गौ-बैलोंमें वृद्धि हुई है।

१९४१ की पशु-गणनाकी इससे तुलना करना उचित न होगा। १९३६ की पशु-गणनामें सब तरहके पशुओंमें १९३३ से ५ प्रतिशतकी वृद्धि हुई थी। भैंसों और बछड़ोंमें भी वृद्धि हुई थी, मगर सांड़ों, बैलों और गौओंमें घटी हुई थी।

इससे स्पष्ट है कि गो-वंशमें ५२४०३४ की पांच सालमें कमी हुई। भारतके लिए गौ और बैलोंकी क्या महत्ता है

यह लार्ड लिनलिथगोके निम्न वाक्यसे स्पष्ट है :—

भारतीय खेतीका सारा ढांचा गौ और बैलकी हड्डी पीठ पर खड़ा है और भारतकी आर्थिक समृद्धिका आधार खेती है और अभी अगली आधी सदी तक भी यही रहेगा।

भारतमें डेयरी (दुग्धालय) का व्यवसाय शैशवावस्थामें है। इसका विकास करनेकी जरूरत है। संयुक्त-राष्ट्र इसका महत्व समझता है। एक अमेरिकन पत्रके मतानुसार—डेरी फार्मिङ्ग आदर्श कृषि है। यह जमीनकी उपजाऊ शक्तिको कम करती है, ऊंचे दर्जेकी वृद्धिकी अपेक्षा रखती है। यह अधिक आनन्ददायक और लाभजनक है और स्थिरतापूर्वक नगदी आमदनी देती है। यह उद्योग दृढ़तम आधारपर खड़ा है, विकास और समृद्धि अनिवार्य है। जिस उद्योगमें लाभ ही लाभ है, भारत उसकी अब तक उपेक्षा किये हुए है।

आर्थिक मन्दीके दिनोंमें अमेरिकामें देखनेमें आया कि डेरी उत्पादनमें फार्मकी अन्य चीजोंकी अपेक्षासे अधिक आमदनी हुई। डेरी-किसानोंको अधिक आमदनी हुई और जिस समाजमें गौयें थीं, वह अधिक समृद्ध था। वस्तुतः तथ्य यह है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके किसानको डेरीसे सबसे अधिक आमदनी है। अमेरिकाके पास २५०००००० डेरी-गौवें हैं और इनसे १०००००००० गैलन दूध वार्षिक होता है। १९३० में खेतीसे अमेरिकाको ९३४७०००००० डालर आमदनी हुई थी। इसमें अकेले डेरी-गौके दूधका भाग १७९६०००००० डालरका था। प्रत्येक अमेरिकन किसानके प्रति सौ डालरमें गौका दूध १९.२० भाग है। अमेरिकामें डेरी-गौ आमदनीका एकाकी सबसे बड़ा स्रोत है। इसके बाद सूअरका नम्बर है और इससे ४२०००००००० डालर आमदनी होती है। गव्य या डेरी-उत्पन्न पदार्थोंसे हुई आमदनी गेहूं और जौ आदि धान्यों समेत सब अनाजकी बिक्रीसे तीन गुनी अधिक होती है। विसकान्सिन और न्यूयार्क स्टेटमें कुल आमदनीका डेरी गौकी आमदनी ५० प्रतिशत है।

डेनमार्क मैसूरसे बड़ा नहीं है, मगर वह प्रति वर्ष १७२०००० किलोग्राम मक्खन निर्यात करता है। क्रीम निकालनेकी १३३९ मशीनें वहां लगी हुई हैं।

हालैण्डमें प्रतिवर्ष ४०००००००० किलोग्रामसे अधिक दूध होता है। डेरी-उत्पन्न मालको लेनेवाली १३० फैक्टरियां हैं जो ६००००० टन माल प्रति वर्ष लेती हैं। लिजेम्फ बड़ी कम्पनियोंमेंसे एक है, जिसमें ६०० आदमी काम करते हैं और १०००० डब्बोंमें बन्द दूध भेजती है। इसके अलावा वह मक्खन, पनीर, दुग्धचूर्ण और कैसीनो (पनीर सदृश पदार्थ) तैयार करती है।

स्विट्जरलेण्ड, अर्जेण्टाइन, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की भी यही बात है। भारतमें १९३९ में ७२८२५६२ रु० का दूध और गव्य आया था। भारत यदि अपने पशुधनका समुचित उपयोग करे, उसको बढ़ाये और गौशालाओंको सुन्दर दुग्धालयोंमें परिणत कर दे, तो भारतीय किसानकी भी आमदनी बढ़ सकती है, उसकी गरीबी दूर हो सकती है और भारतीयोंका बौद्धिक और शारीरिक विकास अबाधित रूपसे हो सकेगा। भारतीय किसानको कुटीर व्यवसायकी जरूरत है। दुग्धालयसे अच्छा और दूसरा कुटीर व्यवसाय नहीं हो सकता। यदि गांव-गांव सम्भव न हो, तो प्रत्येक पांच गांवोंके बीच एक सम्मिलित दुग्धालय खोला जाय। इससे किसानोंमें सामूहिक जीवन भी समान होगा और उनकी आर्थिक अवस्था भी सुधर जायेगी और लार्ड लिनलिथगोके कथनका महत्व स्पष्ट हो जायेगा। पिछले पचीस वर्षोंमें चर्खे पर जितना जोर दिया गया, राष्ट्रका सारा ध्यान केन्द्रित किया गया, यदि उसका दशांश भी गौकी ओर ध्यान दिया जाता, तो भारतकी शारीरिक और बौद्धिक ह्रास न होता। वस्त्र स्वावलम्बनसे यह अधिक आवश्यक है, इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता। राष्ट्रका बौद्धिक और शारीरिक विकास और राष्ट्रीय समृद्धिका आधार गो है, अतः इसकी उन्नति और संवर्द्धनमें राष्ट्रकी शक्तिका उपयोग होना आवश्यक है।

यह एक कहानी है

श्री सरयू पण्डा गौड़

"यह एक कहानी है, हुजूर! हां, कहानियां तो झूठी होती ही हैं, पर उनमें जिन्दगीकी सचाई भी होती है।" ताज महल होटलके डाइनिंग-रूमका कीमती पर्दा अपने दाहिने हाथसे एक ओर हटाता हुआ, एक दीन-मलीन-सा युवक फटा सूट पहने भीतर घुसा। विमला इस घिनौनी वेश-भूषावाले युवकको देख जरा बिदकी, अपनी नाक-भौं सिकोड़ी, पर उमेश बड़ी प्रसन्नतासे बोला—"अख्वाह, आप—! आइये जनाब, आइये! एक मुद्दतके बाद मिले, कहिये, कैसे रहे? इधर आमदनी कैसी रही आपकी?"

विमला विस्मय एवं उत्कण्ठा-भरे नेत्रोंसे उमेशको देखने लगी, मानो वह पूछ रही थी, एक धन-प्रतिष्ठा-सम्पन्न जजके बेटेका यह कैसा फटे-हाल मुलाकाती? और इसका यों स्वागत क्यों?

उमेशने विमलाकी उत्कण्ठा और विस्मयको समझा, वह उसी आवाजमें, विमलाको देखते हुए बोला—"तुम नहीं जानती, आप हमारे बड़े पुराने मुलाकाती दोस्त हैं। आप अण्डर ग्रेजुएट हैं और बड़े-बड़े होटलोंमें ठहरनेवाले या खानेवाले लोगोंको, आप कहानी सुनाकर उनका दिल बहलाते हैं। आवाज आपकी निहायत मीठी है। कथा कहनेका ढङ्ग बड़ा आकर्षक है। जबानपर आपका कमालका काबू है और तारीफ यह कि आप किसीकी कही-सुनी कहानी नहीं सुनाते, बल्कि खुद कहानी बनाते हैं, यानी आप कहानी सुनानेवाले ही नहीं, कथाकार भी हैं। पारसाल आप पटनेके पिण्टो होटलमें मुझे मिले थे और एक बड़ी विचित्र कहानी आपने सुनायी थी। वाह क्या कहने!" फिर उमेश उस बदनसीब तरुणसे, जो अपने मुकद्दरकी मजबूरियों, लाचारीकी लाचारियों व गर्दिशकी पामालियोंकी फरियाद अपने जिस्मके हर हिस्सेसे सुनाता, अपराधीकी तरह ठिठका, भिखारीकी भांति दबा, अपनी दर्दभरी खामोश आंखोंसे जमीन देखता एक ओर खड़ा था, बोला—"कहिये, पिण्टोकी मेरी मुलाकात याद तो है? यही जाड़ोंका सीजन था? था न?"

वह अञ्जलिबद्ध बोला—"हुजूर!"

उमेश—"वह कहानी तो आपको याद है? अरे, वह रेलवे-एक्सिडेण्टवाली!"

वह उमेशकी ओर देखता रहा।

उमेश फिर बोला—"ओः, आपको याद नहीं आ रही है वह कहानी, बड़ी मजेदार थी। मुझे तो ऐसी पसन्द आयी कि उसके बहुतसे हिस्से अभी तक याद हैं। अरे साहब, जिसकी भूमिकामें आपने सूरदासका वह पद फरमाया था—"प्रीति करि काहू सुख न लह्यो!" आयी याद!"

अब वह प्रसन्न-सा होकर बोला—"हुजूर।"

उमेश—"तो बस, उसीको सुनाइये। हां, अरे मैं तो भूल ही गया, कुछ नाश्ता-वाश्ता मंग......।" वह उसी दीन वाणीमें कृतज्ञ-कण्ठसे बोला—"नहीं, क्षमा!"

उमेश—"बेहतर। तो अब शुरू कीजिये।" फिर वह विमलाकी ओर देखता हुआ बोला—"सुनोगी न, कहानी? ओफ क्या कहानी है यह इनकी!—दिल काढ़नेवाली!"

विमला आंखें कुछ नीचेकी ओर झुकाये ही उमेशको देखती बोली—"भला कहानी सुनना कौन नहीं चाहेगा! वह तो जीवमात्रकी बड़ी प्यारी चीज है। मगर कह दो, आप उस कुर्सीपर बैठ जायें, खड़े कब तक रहेंगे बेचारे!"

उमेश बोला—"हां, हां ठीक, तो आप उस चेयरपर विराजिये न!"

युवक कुर्सीपर बैठ गया। थोड़ी देर बाद उसने अपनी कथाकी भूमिका शुरू की—"बाबूजी, कविता-कुञ्जके सुनिपुण बागवान महात्मा सूरदासजीने यद्यपि कहा है—प्रीति करि काहू सुख न लह्यो! तथापि सूरदासजीने ही प्रीति करके वह सुख प्राप्त किया है, जो अकथ है, अनिर्वचनीय है। प्रीति सुखकी चीज है, यदि हम उसे सुखकी चीज बनाये रखें। सारे सुख-दुखके कारण व कर्ता तो हम हैं, विधाताको तो हम व्यर्थ दोष देते हैं। प्रीति-जैसी त्याग, दया, दान व तपस्याकी चीजमें हम वासना, विलास, भोग व राग पानेको मचल उठते हैं, परन्तु पानीमें आग, आगमें पानी नहीं मिलता! हम मोती मानसरोवरमें ढूंढ़नेके बजाय, गन्दी गड़हीमें ढूंढ़ते हैं और तन-प्राणोंकी बाजी लगाकर ढूंढ़ते हैं और नहीं मिलनेपर मोहवश अपना सर पीटते हैं। हमारा यही मोह, हमारे ही कारण, रौरव बन जाता है।"

उमेश उछलकर बोला—"वाह, बहुत अच्छे! सुनी तुमने आपकी प्रेम-मीमांसा ?"

पर विमला तो जैसे युवककी बातोंमें डूब रही थी, उसे उमेशकी बात सुननेका न होश था, न ताव !

वह युवक फिर बोला—"आप सावधान हो जायें, मैं ऐसे ही एक अभागे प्रेमीकी करुण-कहानी अर्ज करूंगा। मैं नहीं समझता, इसे आप सुयोग कहेंगे या दुर्योग। यही दिसम्बरका महीना था। कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था। पृथ्वीके कण-कण बरफ बन गये थे। गङ्गाधर पटना जा रहा था। शामका वक्त था, करीब पांच बजे होंगे। आकाशमें अन्धकारकी हल्की-हल्की कालिमा फैली आ रही थी। बाबू लोग शरीरपर शाल लपेट रहे थे। कुली कांखोंमें हाथ डाले सतृष्ण नेत्रोंसे बाबुओंके माल-असबाबके गिर्द मंड़रा रहे थे। मेल आनेका वक्त था। अभी कुछ देर थी। गङ्गाधरने चाहा, तब तक वह दो कप गर्मागर्म चाय आंतोंमें डाल ले, ताकि भीतर भी जरा गर्मी आ जाय। पर अभी दो घूंट भी चाय पीने नहीं पाया था कि दानवकी तरह चिल्लाती, वातावरणको फाड़ती मेल स्टेशनमें घुसी। यात्री-दलमें खासी हलचल मच गयी। जो जहां जिस हालतमें था, वहींसे दौड़ा। गङ्गाधर भी, दो ही घूंट चाय पी, इकन्नीके बदले दुअन्नी फेंक गाड़ीकी ओर दौड़ा। पर वह, अरे, यह क्या, पञ्जाब-मेल और इतनी भीड़! किसी डिब्बेमें तिल रखनेकी जगह नहीं!—मनही-मन बड़बड़ाता इञ्जिनसे लेकर ब्रेकतक कई बार चक्कर लगा आया और अब सीटी भी हो गयी। गार्डने कई बार हरी झण्डी भी हिलाई, साथ ही गङ्गाधरके भारी भरकम सामानसे लदा कुली भी कई बार चक्कर काटनेके कारण खीझकर बोला—ए बाबू! आप इसी तरह चक्कर काटते रह जायेंगे, गाड़ी न पायेंगे! बस, जल्दी चढ़िये किसी डिब्बेमें।"

वह युवक ईषत्-हास्यसे बोला—"कुलियोंकी जल्दबाजीसे तो हुजूरका भी साबिका पड़ा होगा। ये टटके नेता, नये डिप्टी और ताजे प्रेमीसे कम जल्दबाज नहीं होते। कुलीने बौखला कर गङ्गाधरका सारा सामान एक फर्स्ट क्लासके डिब्बेमें पटक दिया। गाड़ी चल चुकी थी, बेचारा गङ्गाधर क्या करता, लाचार फर्स्ट क्लासमें जा बैठा। पर डिब्बेमें पहुंच कर उसने देखा, सारे डिब्बेमें एक आधुनिक वेश-भूषा-विभूषिता तरुणीके सिवा कोई नहीं! वह घबराया—अरे, तो क्या वह अहमक कुली मुझे जनाना डिब्बेमें पटक गया! एक तो अपने पास फर्स्ट क्लासका टिकट नहीं, दूसरे जनाना डिब्बा! जुर्मपर जुर्म! मगर अब चारा ही क्या था! गङ्गाधर जरा इधर-उधर देखकर एक किनारेकी सीटपर जा बैठा। एक किनारे खिड़कीसे लगी सीटपर वह तरुणी थी और बिचली सीट छोड़ एकदम किनारेकी सीटपर तरुण गङ्गाधर था। शामके ७ बज चुके थे। मेल पवनकुमारकी ताकतसे दौड़ रही थी और एक छोटेसे डिब्बेमें केवल दो तरुण-तरुणी बैठे थे। दोनों गुमसुम! दोनों एक दूसरेसे बिलकुल अपरिचित! और दोनों अपनी-अपनी असुविधा, असमञ्जससे हैरान! दोनों दो तरफ देखते थे, अजीब समां थी! अद्भुत संयोग था! विचित्र अवस्था थी। हुजूर! कहना कठिन है, इन दो तरुण-तरुणीके दिलोंमें उस वक्त कैसे-कैसे बवण्डर उठते थे! उनके तरुण मस्तिष्कमें क्या-क्या तूफान पैदा होते थे!"

उमेशने कथाके इस चित्ताकर्षक अंशको पूरी तल्लीनतासे श्रवणार्थ विमलाको देखा, उसे आश्चर्य हुआ, कथा विमलाके रोम-रोममें रम गयी है, वह योगियोंके सदृश समाधिस्थ हो गयी। उसके सारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग क्रिया-शून्य-से हो शिथिल हो गये हैं। वह जिन्दा है, केवल यह बतानेको उसकी सांस बहुत आहिस्ते-आहिस्ते चल रही है। विमलाकी इस तन्मयतासे उमेशको बड़ी प्रसन्नता हुई कि आखिर उसकी पसन्द की हुई चीज विमलाको भी खूब जंची। वह प्रसन्नताके ही आवेगमें उस युवकसे बोला—"भाई साहेब, कहिये तो थोड़ी उम्दा चाय मंगवाऊं, ताकि गला आपका गर्म हो जाये। भई वाह! खूब हैं आप!"

वह युवक करबद्ध कृतज्ञता-ज्ञापन करते बोला—"आपको अनेक धन्यवाद। माफ कीजिये, मैं चाय नहीं पीता।"

उमेश—"अच्छा, थोड़ा जलपान तो जरूर कर लें। बोलते-बोलते आपका गला सूख गया होगा।"

वह जरा मुस्कुराकर बोला—"आपकी इस साधुता, कृपालुताके लिये अनेक धन्यवाद। मगर मेरा गला गरीबका गला है—मंगनका। अमीरका नहीं। वह सूखेगा क्यों। उसका तो काम ही बोलना है—दिन-रात बोलना। और फिर बोलनेके लिए बराबर तैयार रहना।"

उमेश तनिक खिन्न स्वरमें बोला—"आप तो कोई सेवा स्वीकार नहीं करते—खैर।"

युवकने कहा—"आपकी सेवा स्वीकार करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, दया सदा शिरोधार्य है; क्योंकि मैं सेवाका नहीं, दयाका पात्र हूं।"

उमेश—"भई, आप हाजिर जवाब भी खूब हैं। बस, चट जबान ही थाम लेते हैं आप।"

युवक—"यह भी हुजूर लोगोंकी सेवा-साहचर्यकी ही बदौलत। खैर, अब आइये पञ्जाब मेलके डिब्बेमें। हां, तो गङ्गाधरने चाहा, अपने असबाबको नीचेसे उठाकर ऊपरके लगेज-कैरियर पर रखें, लेकिन जिस सीटपर वह बैठा था उसके ऊपरवाले लगेज-कैरियरपर ठसाठस सामान भरे थे—लोहेके सूटकेस, मसनदकी तरह मोटी बेडिङ्ग, टिफिन-कैरियर, फलास, हारमोनियम-बक्स और ऊपरसे फलोंसे भरी बेंतकी एक बड़ी पिटारी! पूरी गिरस्ती ही थी। हां, जिस सीटपर वह सुन्दरी तरुणी बैठी थी, उसके ऊपरवाला लगेज कैरियर एकदम खाली था, किन्तु गङ्गाधरने एक अनजान तरुणीके अति निकट जा, उसके सामने खड़ा होकर अपना सामान रखना सरीहन अभद्रता समझी, अतः उसने अपने सामानको वहीं रहने दिया, जहां पड़ा था। हां, बिखरी चीजोंको एक जगह समेटकर उसने सजा दिया। युवती भी गङ्गाधरकी व्यस्तता तथा विवशता समझ रही थी जरूर, मगर वह बेचारी भी थी मजबूर। उसके बाजुओंमें इतनी ताकत न थी कि वह उन भारी-भारी चीजोंको स्वयं वहांसे हटाकर वह जगह खाली कर दे। हां, उसे इसका पछतावा रहा कि वह फजूल अपनी जगहसे उठकर स्टेशन देखनेको उस सीटपर आयी, उसकी इस चञ्चलतासे एक भद्र यात्रीको असुविधा हो गयी। परन्तु वह यह भी कैसे कहे, हमलोग अपनी जगह बदल लें। वह स्त्री थी, स्वभावसे ही लज्जाशीला, अ-साहसी। अतएव वह चुप सिमटी-सी खिड़कीसे मुंह निकाले बैठी रही।

उमेशने देखा, विमलाकी टकटकी युवकसे हट गयी है, उसने निगाह नीची कर ली है। सो रही है क्या! क्योंकि कथाकी सार्थकता सुला देनेमें भी समझी जाती है। उमेश उसे जरा ठोंकते बोला—"सो रही हो! दिलचस्प अंश तो अब आरम्भ हो रहा है।"

विमला—'ऊं हूं'। कहकर इस भावसे हिली, मानों वह अपनी तल्लीनतामें तनिक भी व्याघात न चाहती हो।

युवक कहता रहा—"मीठी बयारने तरुण गङ्गाधरकी आंखोंपर वह मीठी-मीठी मुलायम थपकियां लगायीं कि वह झुक-झुक कर उसका स्वागत करने लगा। तीन बार उसका कपाल खिड़कीसे टकराया और चौथी बार उसके पांव अपने-आप फर्स्ट क्लासके मुलायम गद्दे पर फैल गये। निश्चिन्त तरुणाईकी नींदकी भी क्या पूछना। मुग्धाके सदृश सदा गोदमें लेनेको तैयार! गङ्गाधर बेखबर हो गया और मेलके इञ्जिनकी सीटी उसकी नाककी सीटीसे मात मान गयी। इस सीटीने उस सुन्दरीके पतले होठोंपर भी एक मीठी मुस्की दौड़ा दी, वह आप ही आप बोली भी—सफरको चले हैं, जनाबआली, मगर मुर्दे हो गये। अब चाहे जिस स्टेशनपर बेहोशी दूर हो और माल-असबाबका खुदा हाफिज। वाहरी मुसाफिरत!

युवक जरा रुककर बोला—"मानना होगा, हुजूर! व्यावहारिकतामें जितनी सावधान हमारी देवियां होती हैं, हम नहीं होते। इसीलिए इन देवियोंको गृहलक्ष्मी कहा गया है। धन्य हैं वे लोग, जिनका घर इन देवियोंकी दया व तेजसे रौशन है।"

उमेशने जरा चुटकी ली—"अजी साहब! इन्हें इस तरह आसमानपर न चढ़ाइये। आपका पारिश्रमिक तो मुझे देना है, कुछ ये थोड़े देंगी। इसलिए कथामें यदि श्रोता-समाजको उत्साहित करनेके लिए उसकी प्रशंसा आवश्यक है, तो वह मेरी हो।"

कहते-कहते उमेश हंस पड़ा और कथा-वक्ता युवक भी, मगर विमला जरा हिली तक नहीं, हंसना तो दूर। वह जिस प्रकार मेजपर अपने हाथोंके सहारे सर नीचा किये बैठी थी, बैठी रही। उमेश इस "दुर्लभ-श्रोता" के गहरे मनोयोगपर हंस पड़ा।

युवकने कहानी फिर शुरू की—"बाबूजी, यह बताना मुश्किल है, कैसे और क्यों उस सुन्दरी तरुणीके हृदयमें यह दुस्साहस, यह दुर्भावना पैदा हुई कि वह अपने सामानोंके समीप चली गयी और चाहा कि वह अपने सामानको वहांसे हटाकर अपने पास ले आये। पहले उसने टिफिन कैरियर व फलासको हटाया, बाद काफी जोर लगाकर फलोंकी टोकरी। बच रहे, बेडिङ्ग व सूटकेस। सुन्दरीने काफी ताकतके साथ 'बेडिङ्ग' को अपनी ओर खींचा, 'बेडिङ्ग' उधरसे खिंची, पर उसके धक्केसे सूटकेस भी भड़भड़ाते उधरसे चले,और यह हालत हो गयी, बेडिंग, सूटकेस, सब एकके बाद दूसरे सुन्दरीपर आ गिरते।

घबराकर सुन्दरीने एक चीख ली। उधर हड़हड़-भड़भड़की आव ज व आदमीकी चीखसे बौखलाया-सा गङ्गाधर उठा, उसे लगा मानों कोई ट्रेन-दुर्घटना होगी या हो गयी। इधर वह तरुणी गङ्गाधरको उठा देख और घबरा गयी और मारे घबराहटके बेडिङ्ग उसके हाथसे छूटकर जमीन पर आ रही। गङ्गाधर ज्योंही अपनी सीटसे जरा आगे सर निकाल कर ऊपर देखने लगा, त्योंही तरुणीका सूटकेस उसके ललाटपर

धड़ामसे आ गया और गङ्गाधर आह कहकर सीटके नीचे गिर पड़ा। उसके मस्तकका अग्रभाग पूरा फट गया और उससे फव्वारेकी तरह रक्त गिरने लगा। क्षणभरमें सीटके नीचेका फर्श लाल हो गया—तरुणका रक्त जो था! तरुणीको अपनी दुर्बुद्धिका अब भान हुआ। वह दौड़ती हुई गङ्गाधरके पास पहुंची। उसे किसी तरह ऊपर सीटपर रखा। उसके सरको अपना आंचल फाड़कर बांधा। पर गङ्गाधर पूरा बेहोश था। चोट गहरी थी। अकेली, अल्हड़-नादान तरुणी, उस अधमरे तरुणको गोदमें दाबे, बाणबिद्ध हरिणी-सी व्याकुल हो गयी। आखिर वह क्या करे! उसकी दुर्बुद्धिका शिकार जो एक नवयुवक हो गया, उसे वह कैसे बचाये! आह! इसके बाप-मां! अरे, सबसे बड़ी विपत्ति तो इस बेचारे बेगुनाह यात्रीकी औरत की हुई अगर—"

"ओफ़! वेरी क्रिटिकल टाइम!" गहरी सांस छोड़ता उमेश बोला।

उमेशने देखा, विमला तो बिल्कुल धौंकनी हो रही है। वह बार-बार फूलकर मेजसे उठ जाती है और फिर मेजसे सट जाती है। कहानीका प्रभाव उसपर खूब पड़ रहा है। चूंकि छेड़नेपर विमला कुछ बुरा मान गयी थी, इसलिए उमेश उसे न छेड़कर उस युवकको देखता बोला—"ओहो, बड़ी रोमांचक है, आपकी यह कहानी! अच्छा, तब?

युवक—"तब, उस सुन्दरीने चाहा, जञ्जीर खींच दूं, और अपनी तथा इस युवककी रक्षाके लिए किसीको बुलाऊं! पर बाबूजी, तरुण-तरुणीके भाग्य अच्छे थे। तरुणीको जञ्जीर खींचनेकी जहमत न उठानी पड़ी, गाड़ी तुरन्त पटना जङ्क्शन पर आ लगी। युवकको लादे-पाथे तरुणी पटनेके बड़े अस्पतालमें पहुंची और करीब आठ बजेका बेहोश युवक बड़ी सेवा परिचर्याके बाद तीन बजे रातको होशमें आया! मगर होशमें आकर भी उसके होश, होशमें न रहे! वह बिल्कुल घबरा गया—यह क्या हो गया? मैं कहां हूं? मेरे पास यह तरुणी कैसे और क्यों? क्या वाक़ई ट्रेन-दुर्घटना हो गयी:! अरे, मेरे माथेमें इतना दर्द क्यों? मेरी बगलमें इतने लोग सो क्यों रहे हैं? क्या इतने बेगुनाह बेचारे ट्रेन-दुर्घटनाके शिकार हुए? परन्तु यह तरुणी कैसे बची! यह ट्रेन ही वाली मेरी सङ्गिनी तरुणी है, या कोई और!

गङ्गाधर विस्मय-विस्फारित नेत्रोंसे ऊपर देखता होठोंमें गुनगुनाता रहा। तरुणी, गङ्गाधरको होशमें देख परम प्रसन्न हो बोली—"ईश्वरकी दयासे अब आप निरापद हैं, चिन्ता न करें।"

"गङ्गाधरके हाथ आप ही जुड़ गये, वह बड़े स्नेह, कृतज्ञ कण्ठसे बोला—ईश्वरकी दयासे नहीं, आपकी अपरम्पार कृपासे! आजकल विपदमें कौन किसके काम आता है—अपना भी नहीं, आपसे तो मेरा परिचय भी नहीं है! आपकी यह अपार दया, अपूर्व उदारता, क्या मुझसे आजन्म भूल सकेगी? कदापि नहीं!"

"गङ्गाधरके इस कृतज्ञता-प्रकाशसे तरुणी मारे लज्जाके सिमटकर दो अंगुलकी हो गयी, क्योंकि वह तो जानती थी कि वह ट्रेन-दुर्घटना नहीं, उसकी दुर्बुद्धिकी दुर्घटना थी!"

"करीब दो हफ्ते बाद गङ्गाधर इस योग्य हो गया कि वह बिना किसी अन्य व्यक्तिकी सहायताके भी अस्पतालमें रह सके! पर जनाब! इन दो हफ्तोंकी महज मुख्तसर मियादने इन दो तरुण-तरुणीके दिलोंको मिलाकर कैसा एकाकार, कैसा प्रगाढ़ बना दिया, इसका पता दोनोंको तब चला, जब दोनोंके एक दूसरेसे पृथक् होनेका प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। गङ्गाधरने उस तरुणीसे कहा—"अब आप मुझे अपनी कृपाओंके बोझसे और अधिक न लादें, आपकी इतनी-सी ही कृपाको मुझसे ढोये पार न लगेगा। जानें, आप कहां, अपने किस जरूरी कामसे जा रही थीं। मुझ बदनसीबके कारण आपके इतने दिनोंका अमूल्य समय नुक्सान हुआ! अब मैं बिल्कुल ठीक हूं और जो भी दो, चार दिन और अस्पतालमें ठहरना पड़ेगा, मैं अकेले बड़े आरामसे रहूंगा। आप जहां जिस कामसे जा रही थीं, सहर्ष, निश्चिन्त जायें, मेरी चिन्ता छोड़ दें।"

"उस कोमल-हृदया तरुणीके तरुण हृदयपर जैसे आरा चल गया, वह आंखोंसे आंसू बरसाते गङ्गाधरके पांव पकड़ बैठ रही और दुर्घटनाकी सारी रामकहानी सुना गयी।"

"गङ्गाधर जल्दी-जल्दी अपना पांव समेटता बोला—हां, हां, आप यह क्या कर रही हैं! चाहे जैसे भी मेरा सर फूटा हो, परन्तु आपकी यह सेवा, यह सहृदयता क्या भूलने की चीज है! आप मेरी ओरसे बिल्कुल निश्चिन्त रहें, इसके लिए मुझे जरा भी रञ्ज या दुख नहीं है।"

"मगर मुझे यह कैसे इतमिनान हो, इसका दुख आपको नहीं है—तरुणीने कहा।"

"गङ्गाधर जरा हंसकर बोला—सच्ची बात ही अपनी इतमिनान है, सचाईको सबूतकी जरूरत नहीं होती। मेरे कथनका एक-एक स्वर आपको इतमिनान दिलाता होगा।"

"लेकिन मैं तो स्वरशास्त्रकी ज्ञाता नहीं हूं, मैं तो अपनी इतमिनानका प्रत्यक्षीकरण चाहती हूं।"

"बहुत अच्छा, आप आज्ञा दें।"

"मगर शायद आप विचल जायेंगे।"

"इसके उत्तरमें गङ्गाधर केवल हंसकर रह गया।"

"वह तरुणी, कुछ सतेज़ स्वरमें बोली—आप हंसते हैं, परन्तु घबरा उठेंगे।"

"गङ्गाधर हंसता ही हंसता बोला—अच्छा हो,परीक्षा ही हो जाय।"

"वह तरुणी जरा रुककर बोली—प...री—क्षा...आ आ! अच्छा!"

"फिर वह कुछ देर चुप रही। गङ्गाधर उत्सुक आंखोंसे अपलक उसे देखता रहा, तरुणी जाने क्या सोचती रही, फिर बोली—क्या आप अपनी जीवन-सङ्गिनी मुझे बनायेंगे।"

"गङ्गाधर सचमुच घबरा गया। उसे उम्मीद न थी कि तरुणीकी ओरसे एकाएक धड़से ऐसा प्रस्ताव उपस्थित किया जायेगा। वह सोच न सका, क्या जवाब दे! वह हत-ज्ञान-सा नीरव हो एकटक तरुणीका मुंह ताकता रहा। तरुणी अब सारे सङ्कोचको तिलाञ्जलि दे, दृढ़ हो फिर बोली—आप चुप क्यों हैं? बोलिये, मैं परीक्षामें पासमार्क दूं या फेल!"

"जानें कौन शक्ति गङ्गाधरके मुंहसे उतने ही दृढ़ शब्दोंमें कहला गयी—पासमार्क!"

"विह्वल, विभोर तरुणी अपने तारुण्यका सारा सोमरस अपनी आंखोंसे उड़ेलती, तरुण गङ्गाधरकी भुजाओंमें आ रही। फिर उसने गङ्गाधरका पता नोट किया, चरण छुआ और सहर्ष प्रस्थान किया। सूचनाकी अवधि अधिकसे अधिक दो सप्ताह निश्चित हुई।"

कथा-भाषी युवक जरा दम लेनेको रुका, पर उसके रुकते ही विमला विक्षिप्त-सी एकाएक चिल्ला उठी—"तब! तब!! तब क्या हुआ? जल्द बोलो, जल्द कहो!"

विमलाकी ऐसी आवेशाभिभूत दशा देख उमेश अधीर हो उठा। उसे यह आशा स्वप्नमें भी न थी कि केवल एक कथा-मात्रके श्रवणसे विमला ऐसी प्रभावित, इतनी व्याकुल होगी कि वह अपना आपा तक खो बैठेगी—पागल हो जायेगी। उस कथा-भाषी युवकने भी देखा, इन देवीजीका मुख विवर्ण हो गया है। आंखें एक अजीब तरहसे घबराहट व बेचैनी लिये फैल गयी हैं। चेहरा बिल्कुल खप्त-सा फक् हो गया है और सांस बड़ी जल्दी-जल्दी चल रही है। सचमुच ये सारे लक्षण पागलोंके अथवा उन्मादियोंके हैं। वह उमेश-को इङ्गित कर बोला—"बाबूजी, हमें बड़ा दुख है, हमारे कथासे देवीजी काफी मर्माहत हुईं। क्षमा! और अब मैं अपनी कथा यहीं समाप्त कर देता हूं।"

युवक कुर्सीसे उठा, पर पागल विमला बड़ी शीघ्रतासे उसकी टाई पकड़ती हुई बड़े जोरसे चिल्लाकर बोली—"नहीं, नहीं, मैं बिना सब समाप्त किये जाने न दूंगी।" टाईको विमलाने उस युवकको पुनः बैठनेके मिस खींचा, और वह जीर्ण टाई एक हल्की-सी चीख लेकर आधी विमलाके हाथमें आ रही।

किन्तु कथा-भाषी युवक अब होटलके बाहर था और विमला और अधीर हो उमेशको बाहर ठेलती चिल्ला पड़ी—"उसे पकड़ो, उसे पकड़ो, यही गङ्गाधर है—यही गङ्गाधर है! हाय-हाय! उफ्! उः!"

उमेशका दिमाग भी अब ठिकानेके बाहर था। वह समझ नहीं पा रहा था, यह सब क्या और क्यों हो गया। विमला ऐसी व्याकुल क्यों हुई, और वह अभागा कथा-भाषी युवक बिना अपना पारिश्रमिक पाये यों रस्सी तुड़ाकर, टाई नोंचवाकर भागा क्यों! उमेश इस उलझनको सुलझा ही रहा था कि विमला फिर चिल्लायी—"अरे, तुम गये नहीं! हाय-हाय!! पकड़ो उसे! यही गङ्गाधर है और मैं ही वह पापिनी तरु...णी...ई...ई!!"

विमला स्वयं दौड़ी। अब उमेश भी दौड़ा। सामने ही कुछ बांसोंकी दूरीपर वह अभागा युवक लम्बे-लम्बे डग भरता भागा जा रहा था! उमेश चिल्लाया—"महाशय! ईश्वरके लिए, ज्यादा नहीं, सिर्फ दो क्षण रुकिये।"

परन्तु वह युवक भागता ही भागता बोला—"क्षमा, मैं रुक नहीं सकता! आप अपनी सङ्गिनी देवीजीको समझा दें, यह एक कहानी है। जैसे दुनियामें अनेक कहानियां हैं, वैसी ही यह भी एक कहानी है. बस। इससे अधिक कुछ नहीं है।"

विमला चिल्लायी—"जरा ठहरो, मैं तुम्हारी अधूरी कहानी पूरी सुनूंगी! जरा रुको—ईश्वरके लिए—मे-मे-मेरे—लि-ए-ए!"

पर वह युवक अब और बेतहाशा भागा। विमला भी दौड़ी, पर कुछ ही दूर जाकर वह टकराके गिर पड़ी। सर फट गया। सड़कका एक नुकीला रोड़ा उसके ललाटमें आ धंसा और वह बेहोश हो गयी।

युवक अपनी राह निकल गया। उमेश सड़कपर खड़ा-खड़ा पागल-सा—'तांगा-तांगा' 'अस्पताल-अस्पताल!' चिल्लाता रहा।

———

बच्चोंके प्रति माता-पिताका कर्तव्य

श्री आत्मस्वरूप शर्मा

माता-पिता और सन्तानका पारस्परिक स्नेह आदर्श रूप तथा चरम सीमाको पहुंचा हुआ है। संसारका कोई प्रेम अथवा स्नेह इसकी तुलनामें ठहर नहीं सकता। यह स्नेह अत्यधिक मात्रामें स्वार्थरहित है, यद्यपि यह कहना असम्भव है कि इसमें स्वार्थ लेशमात्रको नहीं। इतना होने पर भी स्वरक्षाका भाव कई बार माता-पिताको सन्तानके प्रति ऐसी बातें करनेके लिए विवश कर देता है, जिनकी माता-पिता तो क्या, कुछ अवस्थाओंमें साधारण सम्बन्धियों और मनुष्योंसे भी आशा नहीं हो सकती। हमारे सामने इसका बहुत नवीन उदाहरण बर्मानिवासी भारतीयोंके आचरणने प्रस्तुत किया है। कहते हैं कि वहां कई माता-पिता शीघ्रतामें अपने बच्चोंको वहीं छोड़ आये। उन्हें अपने जीवनका मोह अपनी सन्तानके जीवनसे अधिक प्रतीत हुआ। इसी प्रकार कुछ उदाहरण ऐसे भी देखनेको मिले, जिनमें अति कष्टके समयमें माता-पिता अपनी सन्तानोंको पैदल आते हुए वर्मा और भारतके मार्गमें ही छोड़ आये। विपत्ति-ग्रस्त भूखा मनुष्य भला कौनसा पाप करनेको तैयार नहीं हो जाता! स्नेहकी दृष्टिसे पशुओंको अपनी सन्तानसे मनुष्योंकी अपेक्षा कहीं अधिक स्नेह और ममता होती है! किसी गायका बछड़ा मर जाय, तो वह दूध देना बन्द कर देती है। पर कुछ अवस्थाओंमें यदि मृत बछड़ा गायकी दृष्टिसे ओझल कर दिया जाय और उसे इसका ज्ञान न हो, तो दूध मिलता भी रहता है। कभी-कभी एक बछड़ेके स्थानमें दूसरा बछड़ा ले जाते हैं और गाय फिर भी दूध दिये जाती है।

इन दृष्टान्तोंसे जो परिणाम निकलते हैं, उनसे तो यही समझना चाहिये कि सन्तानका मोह बहुत कुछ अस्वाभाविक तथा अपना बनाया हुआ है। यह विचार कि यह मेरा बच्चा है, इसने मेरे शरीरसे जन्म पाया है, यह अबोध है और संसारमें मेरे अतिरिक्त अन्य कोई इसका पालन-पोषण नहीं करेगा—बच्चेके प्रति मोह, स्नेह और एक मात्रामें दयाकी धारा बहा देता है। यह एक प्रकारसे आंखों देखेका प्यार है। सन्तानको प्रति दिन देखते रहकर और उसके सम्बन्धमें कई प्रकारकी कल्पनायें और भावनायें बनाकर हम उसके प्रति मोह और स्नेह पहले जाग्रत कर लेते हैं और फिर उसे बराबर दृढ़कर एक ऐसी दशामें पहुंच जाते हैं कि जहां हमें यह सम्बन्ध अविच्छिन्नतारहित अथवा अभेद्य प्रतीत होने लग जाता है। ये सब बोधके चमत्कार हैं! एक मेरे मित्र, जिन्होंने अपने जीवनका एक बड़ा भाग बलोचिस्तानमें व्यतीत किया था और जिन्हें एक उच्च पदपर होनेके कारण उधरकी कुछ देशी जातियोंके सम्पर्कमें आनेका बहुत ज्यादा अवसर मिला था, बताते थे कि बलोचिस्तानमें एक जाति ऐसी है, जिसके व्यक्तियोंको यही ज्ञान नहीं होता कि उनका पिता कौन है और माता कौन। इस अज्ञानताके कारण, आश्चर्य नहीं कि कभी माता और पुत्र, पत्नी और पतिके रूपमें ही परिणत हो जाते हों।

कहनेकी बात यही है कि मनुष्यके सब सम्बन्ध अपने ही बनाये हुए हैं और सभ्यताके क्रममें उसने इन सम्बन्धोंको सांस्कृतिक बनाने और इन्हें अधिकसे अधिक परिष्कृत करनेका पूरा यत्न किया है। माता-पिता और सन्तानके सम्बन्धको ही लें, तो एक समय बच्चे केवल माता-पिताको मनोरञ्जन और दिल-बहलावकी ही सामग्री थे। सभ्यताके क्रममें एक ऐसा समय भी आया था, जब माता-पिता बच्चोंको निज स्वार्थके लिए मानते थे और उनकी यह भी धारणा थी कि सन्तानको उनका अटल आज्ञाकारी होना चाहिये। दुर्भिक्षमें तथा देवताओंको रिझानेके लिए बच्चोंकी बलि देनेकी प्रथा शताब्दियों तक रही। वह समय भी था, जब असन्तोषजनक शिशुका बध किया जाता था। कन्या-शिशुको भाररूप माना जाता था, इसलिए जन्म होते ही उसे मार डालनेमें कोई दोष नहीं था।

धीरे-धीरे बोध जाग्रत होनेपर मनुष्यने सन्तानके सम्बन्धको ठीक प्रकार समझनेका यत्न किया। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक यह बोध एक बड़े परिमाणमें जाग्रत हो चुका था और उसमें विवेक, ज्ञान और दयाका समावेश भी प्रतीत होता था। प्लेटोने बच्चोंके अध्ययनमें पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की। सन् १८८२ में 'बिलहेल्म पारितोषिक'के नामसे एक इनाम केवल बच्चोंके ही अध्ययनके लिए रखा गया था। इस पारितोषिकके फलस्वरूप दो बड़ी पुस्तकें लिखी गयीं, जिनमें लेखकने अपने एकमात्र बच्चेको अध्य-

यनका उद्देश्य बनाकर अपने अध्ययनके फल विस्तारसे लिखा था। यह सब प्रारम्भिक-कालकी बातें हैं। वर्तमान समयको तो "बच्चोंका युग" कहा ही जाता है। इसमें बच्चोंके अध्ययनसे बढ़कर रुचिकर कोई विषय नहीं और अनेक योग्य व्यक्तियोंने अपना समस्त जीवन ही इस अध्ययनको अर्पण कर दिया है। अब बच्चोंके स्वभाव और उनके आचरणका वैज्ञानिक ढङ्गसे अध्ययन किया जाता है। अज्ञात रूपसे छिप-छिप कर उनकी सब क्रियाओंको देखकर उनका विश्लेषण किया जाता है और फिर क्यों और कैसे-के दृष्टिकोणसे यह निर्णय होता है कि अमुक क्रिया क्यों हुई। पश्चिमी देशोंमें बच्चोंके अध्ययनका शौक इतना अधिक हो गया कि कई माता-पिताओंने नियमित रूपसे दिनचर्या रखना शुरू कर दिया और वे अपने बच्चोंके जीवन-वृत्तान्त लिखने लग गये। यह एक अद्भुत परिवर्तन था। परन्तु इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि माता-पिता और सन्तान—दोनोंने ही इससे अनन्त लाभ उठाया।

अध्ययनसे पता लगा कि दो और चार वर्षोंकी आयुके मध्य बच्चे अपने अस्तित्वको बलपूर्वक दूसरोंके सम्मुख लाने लग जाते हैं। चार वर्षकी आयुके पश्चात् यह दशा बदल जाती है। फिर वे स्वार्थी तो बनते ही हैं, साथ ही उनमें आत्मसम्मान, अभिमान और घमण्ड भी उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चोंमें एक समयके अनन्तर यह देखनेमें आता है कि वे बड़ोंको जो कुछ भी करते देखते हैं, उसकी नकल उतारनेका यत्न करते हैं और कुछ अवस्थाओंमें ऐसी अच्छी नकल उतारते हैं कि उन्हें ऐसी नकलें उतारते देखकर आश्चर्य होता है। बच्चोंके साधारण और स्वाभाविक विनोदोंमें भी अर्थ होते हैं। इन अर्थको समझना ही वास्तवमें विवेकी माता-पिताका मुख्य कार्य है। स्मरण रहे कि बड़ी आयुके साथी किसी अवस्थामें भी बच्चेके खिलौनों और उसके लंगोटिया साथियोंका स्थान नहीं ले सकते। बच्चेकी शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक उन्नतिके लिए खेल अत्यावश्यक है। इसलिए बालकोंके प्रथम पांच वर्ष तो प्रत्येक अवस्थामें खेल हीको अर्पण होने चाहियें। हां, इतनी सावधानी आवश्यक है कि बच्चोंको हार-जीतके खेलोंमें पड़नेसे बचाया जाय।

छठें वर्षके निकट बालकोंमें किसी कार्यको आरम्भ कर उसे पूरा करने और सिर चढ़ानेकी आदत पैदा होती हैं। यह ऐसी अवस्था है, जब वह अपने ध्यानको किसी एक दिशामें लगा सकता है। ऐसे समयमें खेलसे ही कार्य-वृत्ति उत्पन्न कर देना बुद्धिमत्ता है। बच्चोंको स्कूलमें धकेलनेमें शीघ्रता करना एक साधारण भूल है। पर एक आयुके अनन्तर, उनमें स्वाभाविक रुचि उत्पन्न हो जानेपर उन्हें पढ़ाईमें लगाना उचित है; बशर्ते कि उनका स्वास्थ्य सन्तोषजनक हो। किसी भी अवस्थामें सात वर्षकी आयुसे पूर्व बच्चोंको किसी ऐसे कार्यमें डालना ठीक नहीं कि जिसका उनके मस्तिष्कपर भार पड़ता हो।

बच्चोंके सम्बन्धमें वैज्ञानिक ज्ञान अब इतनी अधिक मात्रामें विद्यमान है कि उससे लाभ उठाकर माता-पिता अपनी सन्तानका सच्चा हित-साधन कर सकते हैं। बच्चोंमें कई प्रकारकी जो बुरी आदतें उत्पन्न हो जाती हैं, उनके कारण अब मालूम हो चुके हैं और इसी प्रकार उनकी चिकित्सा भी की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप, बच्चा यदि रातको बिछौना गीला कर देता है, तो उसका कारण यह होगा कि उसका कोई भाई है, जिससे वह डाह करता है अथवा अपने माता-पिताको चिढ़ानेके लिए वह ऐसा करता है। कई बार बच्चे रोष प्रकट करनेका कोई अन्य मार्ग न पाकर अपना बिछौना गीला कर देते हैं। शिशु तो अंगूठा चूसता ही है, कई बार बच्चे बड़ी आयुमें पहुंचकर भी अंगूठा चूसनेकी आदतका परित्याग नहीं करते। इसके कुछ विशेष कारण मालूम कर लिये गये हैं और बच्चोंको इस आदतसे छुटकारा दिलानेके लिए यह आवश्यक पाया गया है कि इन्हें अंगूठेसे हटाकर किसी अन्य कार्यमें व्यस्त कर दिया जाय। नख काटते रहनेके बुरे अभ्यासमें ग्रस्त बच्चे केवल अपने आपमें दिलचस्पी रखते हैं। यह अभ्यास असहाय अवस्थाका द्योतक है और इससे किसी बच्चेके स्वभावमें व्याकुलता और घबराहट विद्यमान होनेका पता चलता है। बच्चोंमें चोरीकी आदत "कैलसियम" के अभावके कारण बतायी जाती है, अर्थात् इसकी जड़ शारीरिक दोषमें भी हो सकती है। क्रोध एक सीमा तक लाभदायक है। बच्चा क्रोधित होकर दूसरोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। वह दण्डसे बचनेके लिए भी क्रोध करता है। परन्तु क्रोधसे कई बच्चे तुतलाकर बोलना शुरू कर देते हैं और कई अपने आपमें विश्वास खो बैठते हैं। बालकमें क्रोध उत्पन्न होनेके कारणोंको भली प्रकार समझकर उन्हें दूर करनेका यत्न करना ही चतुर माता-पिताका कर्तव्य है। बड़ोंको प्रत्येक अवस्थामें धैर्यसे बच्चोंके सब दोषों और रोगोंको समझने और उनकी चिकित्सा करनेकी आव-

श्यकता है। ईर्षा-द्वेष आदिके अनेक भाव बच्चोंमें स्वभावतः उत्पन्न होते हैं। उन्हें ठीक प्रकार समझनेका उद्योग हो, तो बच्चोंपर क्रोध आ ही नहीं सकता। बच्चोंमें आरम्भसे अच्छी आदतें उत्पन्न करना माता-पिता और बड़ोंका कर्तव्य है और यह कार्य पूर्ण रूपसे तभी हो सकता है जब कि बच्चेके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक गठनको अच्छी तरह समझ लिया जाय। अधूरे डाक्टर जिस प्रकार मनुष्यके लिये खतरा हैं, उसी प्रकार बच्चोंको न समझनेवाले माता-पिता और अध्यापक बालकोंके लिए बहुत बड़े खतरे हैं। बालकोंको ठीक प्रकार न समझनेवाले व्यक्ति अपने विवेकरहित उपचारोंसे समस्त मानव जातिको नाशके मार्गपर ले जानेका कारण बनते हैं। बच्चोंको समझ लिया जाय अथवा समझनेका उद्योग किया जाय, तो मानव जातिकी अनेक कठिनाइयां सहज ही दूर हो सकती हैं।

———

आंख-मिचौनी

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

बादलोंके छोटे-बड़े टुकड़े नील आकाशमें इधर-उधर तैर रहे थे और सूरजका गोला उनके साथ आंखमिचौनी खेल रहा था।

गांवके बाहर धानके लहलहाते हुए एक खेतकी मेड़पर, महुएके पेड़की सघन छायामें पारू चुपचाप बैठी हुई सूरजकी आंखमिचौनी देख रही थी। इसी बीचमें महुएकी डालियोंपर मैनाओंकी कुछ जोड़ियां फुदक-फुदककर चहक उठीं, और यह सब देखकर पारूके गोपन अन्तरालमें किसी वीतरागका स्वर अनायास ही बज उठा।

यों इस पारूके जीवनमें न तो कभी गहरी भावुकताका ही स्पर्श हो पाया है और न वह, जीवनकी बीती हुई बातोंको लेकर कभी कोई ताना-बाना बुननेकी ही आदी है। लेकिन परिस्थितियोंके घटाटोपमें कभी-कभी मानवके सूने पल अनायास ही अतीतकी स्मृतियों, वर्तमानकी परेशानियों और भविष्यकी गुत्थियोंका एक चित्र लाकर आंखोंके सामने खड़ा कर देते और उसे भावुकताकी लहरोंपर बहा ले जाते हैं।

बादलोंके श्यामल टुकड़ोंके बीच जब कभी सूरज छिप जाता और पल, दो पलके बाद ही पुनः धरतीपर हवाके झोंकोंसे बीच-बीचमें कांप उठनेवाले धानके खेतोंको झांकने लगता, तब पारूको प्रतीत होता कि उसका अपना जीवन भी तो ठीक इस सूरज-जैसा ही है, जो परिस्थितियोंके बादलोंकी ओटमें छिपकर कभी धूमिल और कभी प्रकाशित हो उठता है। वह स्वीकार करती कि दुनियाके सभी गरीबोंके जीवनमें शायद यह आंख-मिचौनी समान रूपसे होती रहती है। यदि ऐसा न होता, तो उसके अब तकके जीवनमें अन्धकार और प्रकाशके इतने सारे खेल होते ही कैसे? पग-पगपर उसे अमीरोंकी गुलामी करनेपर बाध्य क्यों होना पड़ता? माना कि आज वह स्वयं किसी अमीरकी कोई गुलामी नहीं कर रही है; लेकिन उसका पति तो जमींदारकी नौकरी कर ही रहा है। और पति जब किसीकी नौकरी कर रहा है, तब पत्नी—एक गरीब किसानकी पत्नी—कैसे यह समझ ले कि वह किसीकी गुलामी नहीं कर रही है? उसे स्वयं क्या नहीं करना पड़ता? धानके इस खेतकी निराई और रखवाली तो जैसे पारूके ही हकमें आ पड़ी है। वह इससे मुकर ही कब सकती है?

धन्ना तो रात-दिन जमींदार साहबकी लगान-वसूली ही किया करता है। इस कामसे उसे कभी अवकाश ही नहीं मिलता। यों लगान-वसूलीमें इतनी उलझन कभी नहीं होती थी, जितनी इस साल हो रही है। किसान बेचारे यह लगान दें, तो कहांसे दें? फसलोंका यह हाल है कि कई सालोंसे कभी सूखा, कभी पाला, कभी गेरुआ तो कभी ओले! इस दशामें फसलें कटते-कटते आधी तो क्या, चौथाई भी मुश्किलसे तैयार हो पाती हैं। फिर इनमेंसे किसान अपने बाल-बच्चोंका पेट भरें या लगान दें। बाजारकी यह हालत है कि एक रुपयेकी चीज चार रुपयेमें खुले आम बेची जा रही है। जिनके घरमें रुपये भरे रखे हों, उन्हें तो कोई चिन्ता नहीं, परेशानी नहीं; लेकिन किसान बेचारे क्या करें? उन्हें तो इन फसलोंका ही ले-देकर एक सहारा रहता है!

पारू अपनी विचार-धाराओंके भंवर-जालमें और भी गहरी उतरती जा रही थी कि इसी बीचमें नन्हे रो उठा, और उसकी विचारधारा अनायासही रुक गयी। वहीं खेतकी मेड़पर महुएके पेड़की एक बड़ी-सी शाखापर, मोटे-से रस्सेका एक झूला धन्नाने डाल दिया था। इसी झूलेपर नन्हे सो रहा था। पारूने दौड़कर उसे उठाया और गोदमें लेकर, अपना रूखा-सा स्तन उसके मुंहमें देकर उसे दूध पिलानेका उपक्रम करने लगी। लेकिन ऐसा प्रतीत होता था कि नन्हेको दूध बराबर नहीं मिल रहा है। तभी तो वह चुप नहीं हो रहा था।

पारूने परिस्थितिको समझनेका यत्न किया, दूध क्यों नहीं निकल रहा है? दो-चार क्षण तक तो वह जैसे कुछ समझ ही न सकी। फिर एकाएक इसका कारण उसकी समझ में आ गया। आज धन्ना अभी तक वापस जो नहीं आया है और पारूने दोपहरका खाना अब तक नहीं खाया है। समयपर भोजन न करनेसे अकसर उसके आंचलोंमें दूध कम हो जाता था। धन्नापर उसे मन-ही-मन एक खीझ होने लगी। मेरे लिए नहीं, तो कमसे कम इस नन्हेके लिए ही यदि 'वे' जल्द लौट आया करें, तो क्या जमींदार फांसीपर चढ़ा देगा?

(२)

नीलाकाशमें छाये हुए बादलोंके टुकड़े क्रमशः सघन होते जा रहे थे। इससे ऊमस बढ़ रही थी। हवा एकदम बन्द थी।

नन्हेको गोदमें लिए हुए पारू धीरे-धीरे कोई गीत गुनगुना रही थी कि तभी कन्धेपर एक बड़ा-सा डण्डा रखे हुए धन्ना आ पहुंचा। आते ही उसने कहा—'आज बहुत देर हो गयी मुझे!'

'सो तो तुम्हारा रोजका धन्धा है!' पारूने रूखा-सा उत्तर दिया।

'क्या करूं, पारू!' धन्नाने शान्त और गम्भीर स्वरमें कहा—'नौकरी जो ठहरी!'

पारू यद्यपि इस विलम्बसे आज बहुत ही क्षुब्ध थी, और उसने सोच लिया था कि आज वह आते ही धन्नाको उलटे हाथों लेगी; लेकिन यह करुण-सी वाणी सुनकर उसे अपने पतिपर तरस आया। वह भी क्या करे बेचारा? रात-दिन इसी तरह तो खपता रहता है, फिर भी पूरा नहीं पड़ता।

अपने क्रोधको दबाते हुए पारूने कहा—'यह नौकरी तो रोज-रोज इसी तरह परेशान करेगी। लेकिन एक बात है, मेरे लिए न सही, तो इस नन्हेके लिए ही तुम तनिक जल्द लौट आया करो।'

इसी बीचमें नन्हे फिर रोने लगा। पारूने उसे फिर चुप करानेकी कोशिश करते हुए कहा—'पहर भरसे यह इसी तरह रो रहा है। चुप ही नहीं होता। सिरपर सूरज चढ़ आया है और अभी तक रोटी नहीं खायी, सो दूध नहीं निकल रहा है। इसीलिए तो कहती हूं कि जल्द लौट आया करो।'

सिरपर बंधा हुआ तार-तार-सा अंगोछा एक तरफ रखते हुए, और दस पेबन्द लगी हुई बण्डी उतारते हुए धन्नाने कहा—'यह तो तुम्हारा जुल्म है, पारो! मुझपर नहीं इस नन्हेपर। मैं पचासों बार कह चुका हूं कि मुझे जब देर हो जाया करे, तो तुम रोटी खा लिया करो, जिससे नन्हे कभी दूधकी कमी महसूस न करने पावे। लेकिन तुम तो अपनी जिदपर ही डटी रहती हो।'

'और तुमसे यह न होगा कि तनिक जल्द लौट आया करो।' पारूने कह दिया।

धन्ना जानता है कि पारूकी इस रूक्षतामें भी एक आत्मीयता भरी है—एक आग्रह सन्निहित है। वह चाहती है कि नन्हेकी ओटमें धन्नाको भी जल्द रोटियां मिल जाया करें—कभी देर-अबेर न हुआ करे। इसीलिए उसने कहा—'नौकरीमें यह सम्भव नहीं पारू! कभी किसी किसानसे उलझ गया; कभी किसीसे ऊंच-नीच होने लगी, तो फिर देर-अबेरका ख्याल ही कहां रह जाता है। और किसानोंकी जो हालत हो रही है, सो तो तुम जानती ही हो।'

'एक बात मेरे दिलमें है—कई दिनोंसे। लेकिन कहूंगी नहीं। तुम शायद नाराज हो उठोगे!' पारूने नन्हेके सिर पर अपना हाथ सहलाते हुए कहा।

'कहती क्यों नहीं, क्या बात है?' धन्नाने कहा—'तेरी बातोंपर मैं कभी नाराज नहीं होता!'

'परमात्माने हमें यह फूल-सा नन्हे दिया है। इसकी कुशल ही हमारी कुशल है। धीरे-धीरे यह दो सालका हो रहा है। अच्छा समय होता, तो मैं कभी यह बात न कहती। लेकिन देखती हूं कि गांवके किसान कितने तङ्ग हो रहे हैं, खानेके लाले पड़ रहे हैं। फसलें चौपट हो रही हैं और जङ्गके कारण महंगाई आसमानमें चढ़ रही है। ऐसी हालतमें किसी किसानपर जोर-जुल्म करना अच्छा

नहीं है। जमींदारको तो अपनी वसूलीसे मतलब है ; लेकिन बुरे बनते हो तुम।'

'ठीक कहती हो पारू!' धन्नाने कहा—'आज मैं भी जाने क्यों, यही सब सोच रहा हूं। नोखेलालसे आज वसूली करते समय जरा ऊंच-नीच बातें हो गयीं, वह तो बेचारा कुछ नहीं बोला, सिर लटकाये बैठा रहा। लेकिन उसकी मेहरिया गरज उठी—महतो, तुम भी बाल-बच्चेवाले आदमी हो। जमींदारकी नौकरी करके तुम किसीके बाल-बच्चोंकी भी परवाह नहीं करोगे, यह न जानती थी। बच्चोंको खिलानेके लिए घरमें अनाजके चार दाने नहीं हैं, फिर लगान कहांसे दिया जाय? तुम्हारा धरम बोले तो घरमें मन-दो-मन जौ पड़ा है, उसे ही ले जाओ।'

'फिर क्या किया तुमने?' पारूने प्रश्न किया।

'मैं चुपचाप चला आया। बाल-बच्चोंका नाम सुनते ही मुझे फौरन नन्हेका ध्यान आ गया।'

'बहुत अच्छा हुआ यह!' पारूने कहा—'और जमींदारका यह जोर-जुल्म भी बहुत दिनों तक न चल पायेगा।'

'क्या अच्छा किया!' धन्नाने कहा—'जमींदारने जब यह सुना, तो बहुत बिगड़ रहे थे। कहीं नौकरीसे ही अलग न कर दें!'

'नौकरी छीन लेंगे, तो क्या भाग्य भी छीन लेंगे हमारा। कर लेंगे कहीं भी नौकरी। पेट भरनेके लिए कहीं भी दाना जुटा लेंगे। अच्छा जाओ, नहा लो जल्दी। हम दोनों अभी नौकरी कर सकते हैं। तुम्हें वसूली करनेके लिए जमींदारने नौकर रखा है ; लेकिन मुझे बेगारमें ही इस खेतका सारा काम करना पड़ता है। इतना काम कहीं दूसरी जगह हम दोनों करेंगे, तो चैनसे पेट भरेगा। न किसीकी कोई बात सुननी पड़ेगी, न किसीपर जोर-जुल्म करनेपर नन्हेके लिए किसीका शाप सुनना पड़ेगा।'

(३)

धन्ना चुपचाप नदीकी तरफ चला गया—स्नान करने। पारूसे यह सहानुभूति पाकर उसका टूटता हुआ दिल फिर एक साहससे भर उठा। पारू सच कहती है, कहीं भी नौकरी कर लेंगे और पेट भर लेंगे।

लेकिन नौकरी करेंगे कहां? खेत-खलिहानोंमें तो पूरे साल-भरका कोई काम नहीं। ले-देकर वही गिट्टी फोड़नेका कामही करना पड़ेगा, अथवा फिर इमारतें बनवानेवाले किसी ठेकेदारकी नौकरी करनी पड़ेगी।

और ठेकेदारकी नौकरी करनेका ध्यान आतेही धन्नाकी आंखोंमें जैसे तितलियां नाच उठीं। उसे याद आया वह दिन, जब गिट्टी फोड़नेका काम वह करता था और वहां काम करनेवाली स्त्रियोंके साथ उस ठेकेदारका मजाक देखा-सुना करता था, सुखियाको एक दिन संध्या समय उस ठेकेदारने छेड़ा भी था। लेकिन जब गांववाले डण्डे लेकर पहुंचे, तो फिर पनाह मांगने लगा था वह ठेकेदार। और इस घटनाके बाद फिर कभी उसने किसी स्त्रीको नहीं छेड़ा। छेड़ेगा कैसे? अपनी खोपड़ी खुलवाना किसे अच्छा लगता है? अपनी जान किसे प्यारी नहीं होती?

फिर यह भी तो हो सकता है कि पारूको वहां गिट्टी फोड़नेके लिए अपने साथ वह ले ही न जाये। उसे अपने नैहर भेज देगा और स्वयं अकेला गिट्टी फोड़ेगा। परन्तु धन्नाको लगा कि पारू अपनी माताके पास जाकर निष्क्रिय थोड़े ही बैठ रहेगी। वहां जाकर फिर वह उसी ठेकेदारके यहां काम करने लगेगी, जहां पहले वह काम करती थी। परन्तु इमारत बनवानेवाला वह ठेकेदार भी तो पूरा घाघ है। पारूने ही उसे सुनाया था कि एक बार उसने किस प्रकार पारूपर अपने डोरे डालनेकी कुत्सित चेष्टा की थी। पारूकी मां बीमार थी। दवा-दारूके लिए रुपये-पैसोंकी जरूरत पड़ी, तो सप्ताह भरकी मजूरी पेशगी देकर, बल्कि सात आने अधिक देकर उस दुष्टने पारूके प्रति अपनी कुत्सा प्रकट करनी चाही थी। लेकिन पारू है कि उसे ऐसी फटकार सुनायी कि याद रखेंगे हजरत जीवन-भर।

पता नहीं, ये पैसेवाले स्त्रियोंको क्या समझते हैं? शायद मनोरञ्जनका उपकरण-मात्र। जब जी चाहा, दिल बहलाया और फेंक दिया एक तरफ। धन्नाने निश्चय किया कि ऐसी दशामें वह अपनी पारूको हरगिज कहीं न भेजेगा। वह स्वयं जहां नौकरी करेगा, वहीं पारूसे भी नौकरी करायेगा।

तो भविष्यमें अब वह जमींदारकी नौकरी छोड़कर क्या करेगा! यह एक ऐसा प्रश्न था, जो धन्नाके अन्तस्तलमें किसी ज्वारकी तरह तरङ्गित हो रहा था और उसे बेचैन कर रहा था!

शीघ्रतापूर्वक नहा-धोकर इन्हीं विचार-धाराओंपर तिरता हुआ धन्ना खेतकी मेंड़पर पहुंचा। पारूने उसे पहले भोजन कराया, फिर स्वयं रूखी-सूखी रोटियां गलेके नीचे उतारकर उसने कहा—'नोखेलालकी मेहरिया अभी यहां आयी थी।'

'अच्छा !' धन्नाने साश्चर्य कहा—'क्या कह रही थी ?'

'यही कह रही थी !' पारूने कहा—'कि जमींदारकी नौकरी कर, महतो गांववालोंसे बैर न पालें तो अच्छा हो। यह जमींदार कभी किसीका नहीं हुआ। जब तक उसकी नौकरी करोगे, गांववालोंपर जोर-जुल्म करोगे, तब तक उसकी नजरोंमें अच्छे रहोगे। जिस दिन वह देखेगा कि तुम उसके स्वार्थ-साधनमें सहायक नहीं हो रहे हो, उसी दिन दूधकी मक्खीकी तरह, तुम्हें अपनी नौकरीसे हटा देगा। दुख-सुखमें एक दूसरेके साथी हम गांववाले ही रहेंगे। फिर बाल-बच्चोंवालेको तो सदा दूसरोंके शापसे बचना चाहिये, बहिन !'

'ठीक कहा उसने।' धन्नाने कहा—'तो पारू अब हमें इस खेतकी मेंड़से अपना डेरा उठाकर, अपनी झोपड़ीमें रख लेना चाहिये।'

'तो निश्चय कर लिया तुमने ?' पारूने पूछा।

'हां, पारू ! हमें गांववालोंसे मिलकर ही रहना होगा। पानीमें रहकर मगरसे बैर कैसा ? फिर नन्हेंके लिए हम सबका आशीर्वाद चाहते हैं, शाप नहीं।'

* * * *

और दूसरे दिन प्रातः वेलामें धन्नाको जब सपरिवार अपने मिट्टीके कच्चे झोंपड़ेमें, गांववालोंने देखा, तो उनके हर्षका ठिकाना न रहा। नोखेलालकी पत्नीने सारे गांवमें बिजलीकी तरह यह खबर फैला दी कि धन्ना दादाने जमींदारकी नौकरी छोड़ दी। अब वे हम लोगोंके बीच रहेंगे—जमींदारके नौकर नहीं।

लेकिन जमींदारने जब यह सुना, तो उनकी त्योरियां चढ़ गयीं, लेकिन किसीसे वे जबरदस्ती तो नौकरी करा नहीं सकते थे। हां, इन गांववालों और धन्नाका यह एक मत देखकर उन्होंने अपने जोर-जुल्मकी रफ्तार और भी तीव्र कर दी। और पता नहीं, जोर-जुल्मकी इस रफ्तारमें गांववालोंके साथ-साथ धन्ना और पारूको भी अपने जीवन में किस आंख-मिचौनीका अनुभव हुआ।
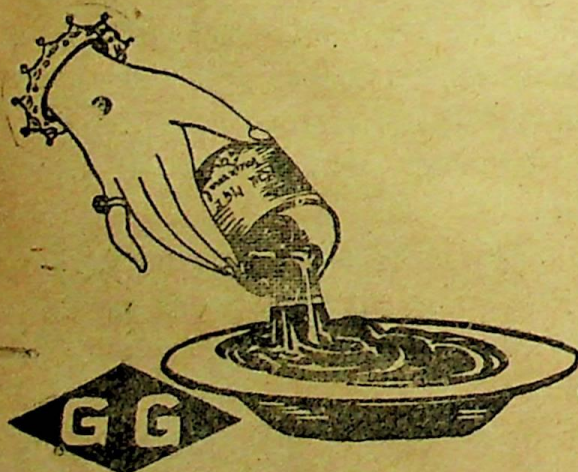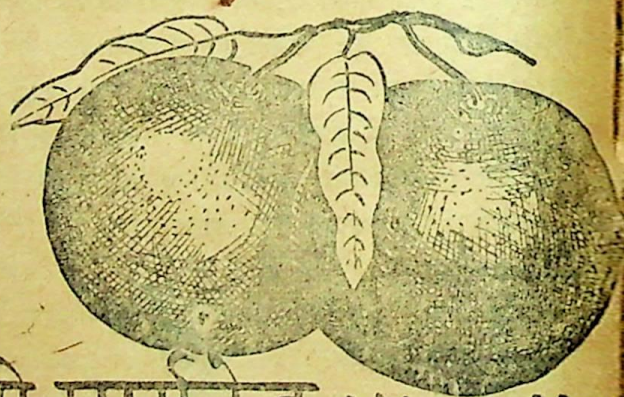
———

चार हजार वर्ष पहले

आजकल स्त्रियोंके सौन्दर्य-साधनके लिए लाखों रुपयेके प्रसाधन तैयार हो रहे हैं। यूरोप और अमेरिकामें कितनी ही फैक्टरियां, केवल पाउडर, क्रीम, स्नो आदि प्रस्तुत करनेके लिए स्थापित की गयी हैं, जिनमें हजारों आदमी काम करते हैं। कुछ लोगोंका ख्याल है कि ये प्रसाधन आधुनिक युगकी देन हैं, प्राचीन कालकी स्त्रियां, इनका व्यवहार बिल्कुल नहीं जानती थीं। पर आपको जानकर आश्चर्य होगा कि आजसे चार हजार वर्ष पूर्वकी स्त्रियां, अपने मुखके सौन्दर्यकी वृद्धिके लिए पाउडरका प्रयोग करती थीं। उस समय यहूदियोंमें यह एक कानून था कि पुरुष अपनी पत्नीके लिए हर समय अपने घरमें पाउडर रखे। इस कानूनकी अवहेलना करनेपर उन्हें दण्ड देनेकी व्यवस्था थी। पुरुषोंको स्त्रियोंके लिए न केवल पाउडर ही देना पड़ता था, बल्कि उनके लिए यह भी सरकारी आदेश था कि वे उन्हें अच्छी पोशाकोंमें सजाकर रखें। यह कानून इस प्रकार था—प्रत्येक पति कानून द्वारा बाध्य किया जाता है कि वह अपनी पत्नीके लिए शीत और ग्रीष्म ऋतुके कपड़ेकी व्यवस्था करे। ये कपड़े वैसे ही हों, जैसे उस स्थानकी स्त्रियां पहनती हों। मगर पतियोंको यह काम मुफ्तमें ही नहीं करना पड़ता था। पत्नीके लिए यह आदेश था कि वह अपने पतिका मुंह-हाथ और पैर धोये। उसके लिए गिलास में पानी भरके दे और सोनेके लिए बिछौना बिछाये।

उस समयसे आजका जमाना बहुत बदल गया है। ईसामसीहसे दो हजार वर्ष पूर्व स्त्रियोंको राजनीतिमें भाग लेनेका अधिकार नहीं था। उनमें इस बुराईको रोकनेके लिए कानून बनाया गया था। वे किसी भी सरकारी महकमेमें कोई भी पद पानेकी अधिकारिणी नहीं थीं। उस कालकी स्त्रियोंके लिए एक और भी कानून था, जिसका पालन उन्हें हर हालतमें करना पड़ता था। उस कानून द्वारा उन्हें आदेश दिया गया था कि यदि किसी स्थानमें, वहांकी स्त्रियोंमें कपड़ा बुनने, सीने, ऊन या सन धुनने-कातनेकी प्रथाका चलन हो, तो वहां रहनेवाली प्रत्येक स्त्रीका यह कर्तव्य है कि वह इन सब कामोंको करे। इस प्रकार जो आय होगी, उसके पानेका अधिकारी उसका पति होगा। पता नहीं आजकलकी युवतियां, इस कानूनको पसन्द करेंगी या नहीं, पर उस समय जब पतिको अपनी पत्नीके लिए सभी आवश्यक चीजें कानूनन देनी पड़ती थीं, तब पत्नीके लिए अलग बैंकमें रुपया जमा करनेकी आवश्यकता ही नहीं थी।

उस समय यहूदियोंमें यह प्रथा थी कि पिता अपनी पुत्रीकी शादीके सम्बन्धमें प्रस्ताव करते समय वरसे वादा करता था कि यदि वह उसकी लड़कीसे शादी कर लेगा, तो विवाहके बाद वह (पिता) उसको (वरको) एक खासी रकम देगा। इससे कभी-कभी विवाह करनेवाले युवकको धोखा भी उठाना पड़ता था, क्योंकि इस सम्बन्धमें कोई ऐसा कानून नहीं था, जिससे ससुरको अपने भावी दामादसे किये गये वादेको पूरा करनेके लिए बाध्य किया जाता। इसके विपरीत विवाह करनेवालेके लिए यह कानून था कि वह वादाखिलाफीके कारण विवाहको अस्वीकार नहीं कर सकता। हां, एक बात थी, जिससे वह इस आफतसे बच सकता था। यदि कन्याके शरीरमें कोई ऐसा ऐब पाया जाता, जिसे वह छिपानेकी कोशिश करती और उसका पता विवाहेच्छुक युवकको लग जाता तो वह शादीसे इन्कार कर देनेका हकदार था। वह कानून इस प्रकार था—यदि सगाई की हुई कन्याके शरीरपर कोई ऐसा मसा हो, जो दिखायी न पड़ता हो, अथवा उसकी सांससे दुर्गन्ध आती हो, तो उसकी सगाई रद्द समझी जायेगी।

विवाहके सम्बन्धमें बेबिलोनियामें, यहूदियोंके कानूनसे पहले, बड़े विचित्र कानून बने थे। मान लीजिये कि दो युवक-युवतियोंने शादी करनेका निश्चय कर लिया। इसकी सूचना लड़कीके पिताको मिली। वह नहीं चाहता कि उसकी लड़कीकी शादी उस युवकसे हो। पर क्या वह अपनी इस अनिच्छाको युवकके प्रति प्रकट कर सकता था। नहीं, ऐसा करनेसे पिताको हर्जाना देना पड़ता था। इस कानूनका बेजा फायदा उठाकर कभी-कभी चालाक युवक, जान-बूझकर अपने आचरण द्वारा अपनेको विवाहके लिए अवांछनीय सिद्धकर अपने भावी ससुरसे काफी रकम पैदा करते थे। उस जमानेमें यदि कोई स्त्री अपने पतिके विरुद्ध कोई आचरण करती थी, तो पतिको अधिकार था कि वह उसे तलाक देकर दूसरी शादी कर ले। उस हालतमें, पहली

पत्नीको पतिकी दूसरी पत्नीकी दासी बनकर रहना पड़ता था। यदि पत्नीका अपराध गुरुतर होता था तो कानून द्वारा पतिको अधिकार मिला था कि वह उसे पानीमें फेंक दे। उस समय स्त्रियोंके सम्बन्धमें, इसी प्रकारके कठोर नियम प्रायः सभी देशोंमें बने थे, जिनकी कल्पना भी आजकी स्त्रियां नहीं कर सकतीं।

पोस्ट आफिसका इतिहास

आदिम युगमें, जब कि लिपिका आविष्कार नहीं हुआ था, मनुष्य अपने हृदयके विचारोंको विभिन्न चिह्नों अथवा प्रतीकों द्वारा, दूसरेके प्रति प्रकट करते थे। दूरके अपने किसी मित्र या सम्बन्धीको, अपना सन्देश भेजनेके लिए भी वे इन्हीं साधनोंको काममें लाते थे। वे उन चिह्नोंको पत्थर, लकड़ी या हड्डीपर खोदते थे: बादको चर्म, छाल या पत्तोंपर अङ्कित करने लगे। इस प्रकार विभिन्न क्रियाओं-को व्यक्त करनेके लिए भाव-चित्र-लिपियोंकी सृष्टि हुई। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन्हीं चित्र-लिपियोंसे वर्णमालाके अक्षरोंके रूप निर्धारित किये गये।

यद्यपि ईसामसीहसे पूर्व, छठीं शताब्दीमें लेखन-कला का विकास हो चुका था, और परस्पर पत्र-व्यवहार भी होने लग गया था, फिर भी पत्र-प्रेरणकी कोई व्यवस्थित प्रणाली नहीं थी। वाहक पैदल चलकर एक जगहसे दूसरी जगहको पत्र पहुंचाया करते थे। पर छठीं शताब्दीके अन्तिम भागमें ईरानियोंने एक डाक-प्रणाली गठित की, जिसके द्वारा मिट्टी, पत्थर और धातुपर लिखी चिट्ठियां घुड़सवारोंसे भिन्न-भिन्न जगहोंको पहुंचायी जाती थीं। कुछही वर्ष बाद खच्चर, ऊंट और सांड़िनियोंको भी प्रयोगमें लाया जाने लगा। इसके बाद कई शताब्दियों तक पत्र-प्रेरण और वितरणकी यह प्रथा जारी रही।

ऐतिहासिकोंका कहना है कि ईसामसीहसे ९८० वर्ष पूर्व बेबिलोनमें भी ऐसी ही प्रथा जारी थी। दोनों देशोंमें केवल सरकारी कामोंके लिए ही यह डाक-प्रणाली उपयोगमें लायी जाती थी। उसके बाद कई दशाब्दियों तक इसमें नाना प्रकारके सुधार होते रहे, पर नियमित रूपसे सर-कारी डाक-प्रणालीका गठन रोमन साम्राज्य-कालमें ही हुआ। उस समय विस्तृत साम्राज्यभरमें पैदल वाहकों, कबूतरों, घोड़ों और जहाजों द्वारा चिट्ठियां वितरित की जाती थीं। गैर सरकारी व्यक्तियोंको अपनी डाकके लिए अपने दासों अथवा आकस्मिक यात्रियोंपर निर्भर करना पड़ता था। रोमन साम्राज्यके पतनके साथ ही उसकी यह डाक-प्रणाली भी नष्ट हो गयी।

मध्ययुगमें बहुतसे देशोंमें सरकारी पोस्ट आफिस खोले गये, पर फ्रांसके सिवा अन्य किसी भी देशमें गैर सरकारी व्यक्तियोंको उनका उपयोग करनेकी अनुमति नहीं मिली थी। फ्रांसमें सन् १४८१ में सर्वसाधारणके लिए डाकका उपयोग किया गया। लेकिन डाक द्वारा चिट्ठियां भेजनेका खर्च इतना अधिक पड़ता था कि केवल सम्पन्न व्यक्ति ही उससे लाभ उठा सकते थे।

इसके बाद सन् १६०० ई० तक यूरोपके विभिन्न देशोंमें सरकारी और गैर सरकारी डाक ले जानेके लिए कितनी ही एजेन्सियां खुल गयीं। सन् १६८० में लन्दनमें एक पेनीमें चिट्ठी भेजनेकी डाक-प्रणाली जारी की गयी। इस सस्ते तरीकेसे चिट्ठियां भेजनेके लिए लोग इतने उत्सुक थे कि केवल लन्दनके डाकखानेमें इतने कर्मचारियोंको रखना पड़ा, जितने कि ब्रिटेनके शेष भागके डाकखानोंमें भी न थे।

प्राचीन लेखोंसे मालूम होता है कि भारतमें भी आजसे कई सौ वर्ष पूर्व डाक-प्रणाली जारी थी। विदेशी यात्रियों-के लेखोंसे हमें पता चलता है कि प्राचीन युगके हिन्दुओं-का, तत्कालीन असीरियनों, बेबिलोनियनों और इरानियों-से पत्र-व्यवहार होता था। चन्द्रगुप्तके शासनकाल-में, व्यापारी माल और डाकको सुविधासे ले जानेके लिए, पटनासे लाहौर होते हुए, तक्षशिला तक सड़क बनी हुई थी।

मुसलिम कालमें, सर्वप्रथम शेरशाहने, घोड़ोंपर डाक ढोनेकी प्रणाली जारी की। इसके लिए बङ्गालसे सिन्ध तक, दो हजार मील लम्बी ग्रेण्ड ट्रङ्क रोडपर, हर दो मील-पर, डाक ढोनेके लिए दो-दो घोड़े रखे गये थे। अकबरने एक और कदम आगे बढ़ाकर, मुख्य-मुख्य पक्की सड़कोंपर, दस-दस मीलके फासलेपर डाक-घर बनवाये और हरेक पड़ाव-पर तेज तुर्की घोड़े रखनेकी व्यवस्था की। इस प्रकार एक दिन-रातमें, सौ मीलकी दूरी तय कर ली जाती थी। इसमें सन्देह नहीं कि मुगल-कालमें डाक ढोने और चिट्ठियोंके वितरण करनेकी सुन्दर व्यवस्था थी, पर मुगलोंके पतनके साथ-साथ उनकी डाक-प्रणाली भी नष्ट हो गयी।

इसके बाद क्लाइवके शासन-कालमें, हमारे देशमें फिर नियमित डाक-प्रणाली जारी की गयी। उस समय विभिन्न रास्तोंमें रहनेवाले जमींदारोंको डाक ढोनेवाले दौड़ाहांकी व्यवस्था करनी पड़ती थी। क्लाइवके उत्तराधिकारी वारेन

हेस्टिंग्सने पोस्ट आफिसके कार्य-सञ्चालनमें और भी उन्नति की और सरकारी डाकवरों द्वारा सर्वसाधारणकी चिट्ठियोंको भेजनेकी अनुमति दी। उसके बाद पचास वर्ष तक पोस्ट आफिसका इतिहास अन्धकारमय है। १८३७ के पहले देशमें कोई नियमानुकूल डाक-प्रणाली नहीं थी। जिलेके कलक्टर अपने हल्केके पोस्ट आफिसों और मेल लाइनके लिए जिम्मेदार थे। पोस्टल कर्मचारियोंका नियन्त्रण करनेके लिए कोई केन्द्रीय व्यवस्था न थी। उस समय डाकके टिकट न थे। चिट्ठी भेजनेका खर्च नकद अदा किया जाता था। १८३७ में एक एक्ट द्वारा सार्वजनिक पोस्ट आफिसोंकी व्यवस्था की गयी और सरकारको चिट्ठियोंको एक जगहसे दूसरी जगह ले जाने और वितरण करनेका सम्पूर्ण अधिकार दिया गया। १८५४ ई० में सारा डाक विभाग एक डाइरेक्टर जनरलके अधीन रखा गया। विभिन्न मूल्यके डाकके टिकट जारी किये गये। १८८० ई० में रुपये भेजनेके लिए मनीआर्डर-प्रणाली जारी की गयी और उसके पांच वर्ष बाद पोस्टल सेविंग-बैंकोंकी स्थापना हुई। १८७१ में रेलवेके सहयोगसे पोस्ट आफिस द्वारा पार्सल भेजनेका प्रबन्ध किया गया। १८७७ में वी० पी० पार्सल भेजनेकी प्रणाली जारी की गयी।

आज भारतवर्षके सभी भागोंमें पोस्ट आफिसोंका जाल-सा बिछा हुआ है। खेतोंमें हल चलानेवाले किसानोंसे लेकर शहरोंमें रहनेवाले धनी-मानी शिक्षित व्यक्ति तक नियमित रूपसे इनका उपयोग करते हैं।

युद्धके बाद घर-घर हवाई जहाज

यह निश्चित है कि युद्ध-समाप्तिके बाद यातायातके साधनोंमें बड़े-बड़े परिवर्तन होंगे। मोटरकार और ट्रामोंके ही नये संस्करण नहीं होंगे, बल्कि आमदनी और रफ्तनीके काममें भी हवाई जहाजोंका व्यापक व्यवहार होने लगेगा। भविष्यमें जो हवाई जहाज बनेंगे, उनमें सबसे उल्लेखनीय होगा—जानी हेली कोप्टर नामक, बिलकुल नये ढङ्गका एक हवाई जहाज। इस हवाई जहाजसे जन-साधारणका बहुत उपकार होगा। इसकी यह उल्लेखनीय विशेषता है कि साधारण हवाई जहाजकी तरह इसके ऊपर उड़ने और नीचे उतरनेके लिए अधिक जमीनकी आवश्यकता नहीं होगी। बात-की-बातमें वह सीधे आसमानपर उड़ जायेगा और थोड़े समयमें ही नीचे उतर आयेगा। वैज्ञानिकोंका कहना है कि युद्धके बाद यही हेली कोप्टर, प्राइवेट मोटरकारोंका स्थान लेगा। इसको चलाना भी बहुत सरल होगा। कारबार अथवा सैर-सपाटेके लिए मोटरोंकी जगहपर इसीका व्यापक व्यवहार होगा। अनुमान किया जाता है कि युद्धके बाद मोटरकारकी तरह हवाई जहाज घर-घर दिखायी देंगे। युद्धके बाद ग्लाइडर ट्रेनका भी व्यापक व्यवहार होने लगेगा। इस ट्रेनसे कम खर्च और कम समयमें अधिक दूरकी यात्रा निरापद की जा सकेगी। जलयानोंमें भी काफी रूपान्तर होगा। ऐसे हवाई जहाज बनाये गये हैं, जो हवामें उड़ते हैं और समुद्रमें भी चलते हैं। दो लाख पचास हजार पौंड वजनका सीप्लेन तैयार हो गया है। इस नये जलयानमें यात्रियोंके लिए पृथक भोजन-गृह, रहनेके लिए सुन्दर केबिन, डाइनिंग सैलून, खेलनेका मैदान, थियेटर, सिनेमा-घर आदि बने हुए हैं। आकाश-मार्गसे यात्रा करनेके लिए जितनी सुविधा चाहिये, उन सबकी व्यवस्था इस जहाजमें है। थोड़े समयमें, आकाशमें उड़कर देश-देशान्तरोंका भ्रमण करनेकी जो अभिलाषा मनुष्यके हृदयमें चिरकालसे थी, वह अब पूरी हो गयी। निकट भविष्यमें ही हमें थोड़े समय और खर्चमें आकाश-मार्गसे भ्रमण करनेका सुअवसर प्राप्त होगा।

भविष्यके चलते-फिरते मकान

विज्ञानकी उन्नतिके साथ, मनुष्यके वास-भवनके निर्माणमें भी अनेक सुधार हुए हैं। संसारके बड़े-बड़े शहरोंमें नयी प्रणालीसे बनी अट्टालिकायें, अपना सिर ऊंचा किये, आधुनिक युगकी स्थापत्यकला और यान्त्रिक शिल्पकी उन्नतिका परिचय दे रही हैं। अमेरिकाकी गगनचुम्बी अट्टालिका स्टेट एम्पायर बिल्डिङ्ग, उच्चता और सुन्दर बनावटमें संसार-भरके भवनोंसे श्रेष्ठ है। पर युद्ध-जनित वर्तमान परिस्थितिमें इस प्रकारकी आलीशान इमारतें बनानेकी कल्पना मनुष्यके मनसे हट गयी है। भवन-निर्माण सम्बन्धी साम ग्रयोंके मूल्यमें जितनी अधिक वृद्धि हुई है, उससे सर्व साधारणकी यह निश्चित धारणा हो रही है कि युद्धके बाद भी, कई वर्षों तक मन-मुताबिक भवन निर्माण करनेके लिए आवश्यक सामान नहीं मिलेंगे। हमारे देशमें मकान बनानेकी सामग्रियोंका मूल्य ही नहीं अधिक बढ़ा है, बल्कि वे दुष्प्राप्य भी हो गयी हैं। इस देशके इञ्जिनियरोंने इस समस्याको हल करनेके लिए कोई नयी योजना पेश की है या नहीं, हमें मालूम नहीं, किन्तु यूरोपके इञ्जिनियर चुपचाप नहीं बैठे हैं। उन्होंने भविष्यमें मकान बनाने

के लिए एक नयी योजना तैयार की है। निकट भविष्यमें, युद्धके बाद इस योजनाके अनुसार जो मकान बनाये जायेंगे, उनकी बनावटकी सुन्दरता लोगोंकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित करेगी। इन मकानोंके बनानेमें खर्च भी कम पड़ेगा। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह होगी कि इन्हें बड़ी आसानीसे एक जगहसे दूसरी जगह हटाया जा सकेगा। भविष्यके इन मकानोंकी सुन्दरताके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंको कोई सन्देह नहीं। वर्तमान समयके मकानोंके साथ उन मकानों का कोई सादृश्य नहीं होगा। इनके हर भागमें समान रूपसे प्रकाश रहेगा। इनमें प्रचुर परिमाणमें माल-असबाब भी रख जा सकेंगे। आजकल घरके फर्शपर फरनीचर रहते हैं, पर भविष्यके इन मकानोंमें दीवारोंमें फरनीचर रखनेकी व्यवस्था रहेगी, इससे फर्श सदा साफ रहेगा और देखनेमें भला मालूम होगा। इन घरोंको गर्म और ठण्डा भी रखा जा सकेगा। जाड़ेके दिनोंमें, दीवारों, छत और फर्श तकको ८०-९० डिग्री तक गर्म रखा जा सकेगा। गर्मीके दिनोंमें दीवारोंके चारों ओर तथा छतपर लगे ठण्डे जलके पाइपसे घरके वातावरणको इच्छानुसार ठण्डा किया जा सकेगा। दरवाजे, सिटकिनियां, जंगले आदि विशेष कलापूर्ण ढङ्गसे बनाये जायेंगे, जिनको हर वक्त साफ-सुथरा रखनेमें, कोई असुविधा नहीं होगी। घरको धूलसे बचानेके लिए प्लाइवुडसे कोनोंको गोलाकार बनाया जायेगा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस तरहके मकानोंसे जन-साधारणका बड़ा उपकार होगा, क्योंकि एक मकान बनानेका खर्च दो हजार सेण्टसे अधिक नहीं पड़ेगा।

मिथ्याभाषण एक व्याधि है

हर जाति या समाजमें, आपको कुछ ऐसे व्यक्ति मिलेंगे या मिलते होंगे, जो दिनभरमें ९९ प्रतिशत झूठ बोलते हैं। उनके झूठ बोलनेसे न तो उनका कोई विशेष लाभ होता है, न उनका जिन्हें वे अपनी झूठी बातें सुनाते हैं। मनोविज्ञान शास्त्रके पण्डितोंका कहना है कि यह एक मानसिक विकार है जिससे प्रेरित होकर मनुष्यको झूठ बोलनेकी लत पड़ जाती है। मिथ्या भाषण एक प्रकारकी व्याधि है। इस व्याधिमें ग्रसित व्यक्ति, अपने मिथ्या और असम्भव कथनोंमें न केवल स्वयं विश्वास करते हैं, बल्कि दूसरोंको भी
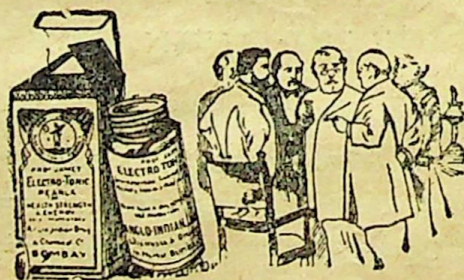
उन्हें विश्वास करने और सत्य स्वीकार करनेके लिए मजबूर करते हैं। उनकी इसी विशेषताके कारण कोई समझदार व्यक्ति उनके साथ रहना या बातचीत करना पसन्द नहीं करता। उनकी कहानियां, जिनके नायक अक्सर वे ही हुआ करते हैं, बिना सिर-पैरकी और ऊटपटांग होती हैं, जिन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। यद्यपि चतुर मिथ्याभाषी, कभी-कभी इस कौशलसे झूठ बोलता है कि कमसे कम थोड़ी देरके लिए उसपर विश्वास करना ही पड़ता है, फिर भी उसकी कलई खुल जानेपर उसपरसे लोगोंका विश्वास उठ जाता है।

मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि मिथ्याभाषण, मनुष्यके बाल्यजीवनकी एक साधारण स्थिति है जो चार वर्षकी उम्रसे लेकर सात वर्षकी उम्र तक रहती है। शारीरिक और मानसिक विकासकी इस अवस्थामें, बच्चोंको अपने व्यक्तित्वकी चेतना होने लगती है और इस आत्मचेतनासे उसमें एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बननेकी आकांक्षा जाग्रत होती है। यदि स्कूलसे घर लौटनेपर कोई लड़का अपने माता-पितासे कहे कि उसने रास्तेमें एक आदमीको पिंजड़ेमें एक शेरको बन्द करनेमें मदद दी है, तो उसकी यह बात सर्वथा असत्य होते हुए भी, उसे हम मिथ्याभाषण व्याधिग्रस्त नहीं कह सकते। ऐसी हालतमें उसे झूठ बोलनेके लिए डांटने-डपटनेके बजाय, उसे बड़ी सावधानीसे समझाना-बुझाना चाहिये। ताकि उसे झूठ बोलनेकी आदत न पड़े। बाल्यवमें वह झूठ नहीं बोलता है, बल्कि वह कुछ याद, कुछ भूली किसी कहानीको, अथवा अपनी कल्पनाकी किसी उड़ानको सत्यसे मिलानेकी चेष्टा करता है। महान व्यक्ति बननेकी अपनी आकांक्षा में लड़का, अपनेको किसी ऐसी घटनाके साथ जोड़नेकी चेष्टा करता है, जो उसे असाधारण और अद्‌भुत जंचती है। मिथ्याभाषी, पैदायशी नहीं होते, परिस्थितियां उन्हें बनाती हैं। जिस लड़केका मजाक उड़ाया गया हो या जिसे कभी सजा दी गयी हो, अपनी दुखी आत्माको शान्त करनेके लिए वह अवश्य झूठ बोलेगा। जो लड़का अपनेको उपेक्षित और दूसरेसे हीन समझता है, वह अपनी आत्मनिर्भरताको कायम रखने और अपनेको दूसरोंकी दृष्टिमें महत्वपूर्ण व्यक्ति प्रमाणित करनेके लिए झूठ बोलेगा ही। एक बार यदि इस प्रयत्नमें सफलता मिल गयी, तो भविष्यमें जब कभी मौका मिलेगा, वह इसका प्रयोग करेगा।

जब किसी व्यक्तिको सत्यमें कोई दिलचस्पी नहीं मिलती, तब वह झूठ बोलकर अपनी कल्पनाओं और स्वप्नोंको मुखरित करता है और यह भान करता है, जैसे उसे अपने मिथ्या कथनोंपर दृढ़ विश्वास हो। इस तरह वह समझता है कि उसकी आन्तरिक अभिलाषाओंके लिए, मिथ्याभाषण ही एकमात्र सरल उपाय है। क्योंकि यह अक्सर देखा गया है कि मिथ्याभाषण व्याधिमें ग्रस्त व्यक्ति आलसी होते हैं। इस प्रकारके मिथ्याभाषणको, मनोवैज्ञानिकोंने 'कृत्रिम स्वप्न दर्शन' कहा है। यह एक स्थिति है जिसमें अवचेतन मनको, जहां हमारी सर्वोच्च अभिलाषायें सञ्चित रहती हैं, सचेतन मनपर आक्रमण करनेके लिए उभाड़ा जाता है।

मिथ्याभाषण एक मानसिक व्याधि है। इसके सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि इसकी चिकित्सा हो सकती है, बशर्ते कि व्याधिग्रस्त व्यक्ति रोगसे मुक्त होनेके लिए हृदयसे इच्छुक हो।

———
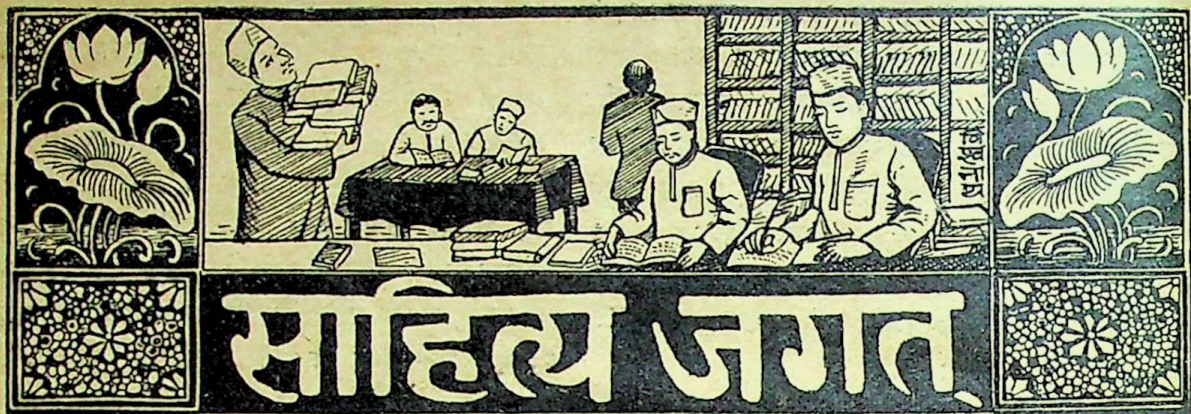
हमारे ग्राम-साहित्यकी उपयोगिता

प्रकृतिकी गोदमें कुछ पुष्प विकसित हो कुम्हला जाते हैं, कुछ अपनी सरस गन्धको बिखेरकर अपनेको धन्य समझते हैं। कलियां खिलती हैं और अपने यौवनके स्पर्शसे पवनको सगुण, गर्वित और गम्भीर बनाती हैं। अपने रंग-रूप एवं सौन्दर्यकी छटापर आप ही आप मुग्ध होती हैं, अपने निर्जन जीवनसे कभी व्यग्र होती हैं और फिर उसीसे शान्ति भी पाती हैं, किन्तु संसारके चेतन प्राणी उनके उल्लास और रुदनसे बहुत दूर रहते हैं। उन तक उन खिले हुए पुष्पोंकी प्रसन्नता और मुरझाती हुई कलियोंकी आह नहीं पहुंचती। उद्यानकी कोकिलाके मधुर बोलमें, प्रियतमके मीठे स्वरका आभास पा वियोगकी वेदनासे व्यथित हृदयको कुछ शान्ति मिलती है। प्रेमी और प्रेमिका उसकी ध्वनिमात्रमें ही हृदयको स्पन्दित करनेवाली अलक्षित शक्ति पाते हैं, किन्तु जब वही कोकिला नगर या ग्रामसे कोसों दूर प्रदेशमें बोलती है, गाती है, आह भरती है, तो उसकी बोली निरर्थक हो जाती है। वह अपने मधुर स्वरको वायुमें सञ्चारित करके ही चुप लगा जाती है। उसके उल्लास या रुदनपर कोई ध्यान भी नहीं देता। समुद्रके वक्षस्थलपर असंख्य कोमल तरंगें तरंगित हो-होकर वहींपर विलीन होती रहती हैं, उनके कोमल थपेड़े किनारे तक नहीं पहुंचते, उनके घातका प्रतिघात नहीं हो पाता। वे अपने तरल, शीतल, सुकोमल हृदयसे उदधिके किनारे, उस किनारेपरके पेड़, पौदों तथा तिनकोंको छू भी नहीं सकतीं, न उन्हें विचुम्बित ही कर सकती हैं। उनकी तड़पन, व्यग्रता अपना एक अस्तित्व रखती है, उनकी आशा और अभिलाषा अतृप्त और अमर बनी रहती है। किन्तु हम एकान्तमें अधखिली कलीकी आशा, मुरझाते हुए फूलकी निराशा, पपीहेकी पुकार, और कोयलकी तान, कमलिनीका प्रस्फुटन और भौंरेके 'उन्मन गुञ्जन'से इतनी दूर हैं, कि उसकी कभी चिन्ता भी नहीं करते, और यही कारण है कि हम आज भी अपूर्ण बने हैं।

हमारे लाखों उपेक्षित गांवोंके गीतोंकी भी यही दशा है। प्रत्येक प्रान्त, जिला और गांवका अपना अलग-अलग गीत है। वहांके स्त्री-पुरुषोंका, युवक और युवतियोंका अपना अनोखा राग है, जिसमें उनके दिलकी बात और हृदयकी चाह, आशा और अभिलाषा पायी जाती है। प्रीतमके परदेश जाने एवं पुत्रोत्पत्तिके अवसरके गीत बड़े ही सरस, हृदयग्राही और मार्मिक होते हैं। नीचे राजस्थानी ग्राम-गीतका एक नमूना है :—

"आज म्हारो गीगलो दाद स बतलाव गो,
दाद स बतलावोगो, दादी क मन भावगो।
पगां मां पैजनियां गीगो ठुमक ठुमक आवगो,
हाथमां झुनझुनियां लालो खेलतो ही आवगो।
आज म्हारो गीगलो, बाबूजी स बतलावगो,
बाबू स बतलावगो, मायड़ क मन भावगो।
पगां मा पैजनियां गीगो ठुमक ठुमक आवगो,
हाथ मां झुनझुनियां लालो खेलतो ही आवगो।"

पुत्र उत्पन्न होनेपर दादी, माता तथा परिवारकी अन्य महिलाओंको जो असीम प्रसन्नता हुई है कि वे सभी मिलकर इस उल्लासको उक्त गीतमें प्रकट करती हैं। कहती हैं— "आज मेरा बच्चा अपने दादा (पिताके पिता) से बातें करेगा, उनसे तर्क-वितर्क करेगा, और उसे सुनकर दादीका हृदय आनन्दसे उत्फुल्लित हो उठेगा। पांवमें पैजनी पहनकर मेरा प्यारा बच्चा ठुमक-ठुमक चालसे चलेगा, और हाथमें झुनझुनी लेकर खेलते हुए आयेगा। इसके पश्चात वह

अपने पितासे भी बातें करेगा। बालककी भाव-भङ्गियोंका कितना स्वाभाविक और सरस वर्णन है। सूरदासके बालकृष्ण भी तो ठुमुक-ठुमुक चलते थे। फिर उनके कृष्ण और इस ग्रामीणके कृष्णमें क्या अन्तर है? यदि कोई अन्तर हो सकता है, तो यही कि सूरके कृष्ण भगवान भी थे और ग्रामवधूका कृष्ण सोलहो आना मनुष्य और ईश्वरकी देन है। इसी प्रकार भारतीय विभिन्न प्रान्तोंकी भाषाओंमें काव्य गुणोंसे अलंकृत कितने ही गीत भरे पड़े हैं। एक तामिल भाषाके ग्राम-गीतपर दृष्टिपात कीजिये :—

एन्दन मामहल सुन्दरम केलाय
मंजु निहर कुत्तलम कंज मलर मुहम
नंज मेनुम बिड़ी कुंचुम मोतियाल
रति अञ्जे ओडुम एड़ियाल
उन्दन आलैक्कु उहन्दवल
नेसम मिडुन्दवल ईसने

इसका भावार्थ यह है कि माता अपनी पुत्रीके प्रेमी या भविष्यमें होनेवाले जमाईसे कहती है कि हे युवक, 'मेरी पुत्रीकी सुन्दरताको सुनो। उसका मुंह तो कमलके फूलकी तरह है तथा उसके केश इतने काले हैं कि उनकी कालिमाके समक्ष काले बादल भी फीके पड़ जाते हैं, उसकी आंखोंकी पुतलियां इतनी काली हैं कि उनके सामने जहरकी कालिमा कुछ नहीं है, या जिस प्रकार जहरके खानेसे मनुष्य बेहोश हो जाता है उसी प्रकार मेरी पुत्रीकी पुतलियोंपर लोग मतवाले बन जाते हैं। वह मधुरभाषिणी है। उसकी सुन्दरताको देख कामदेवकी स्त्री रति भी डर कर भाग जाती है। वह प्रेम-भण्डार है। अस्तु, हे ईश—ऐश्वर्यशाली पुरुष आओ, वह निश्चय ही तुम्हारे प्रेमके योग्य है।

माताके उक्त उद्गारमें कितनी स्वाभाविकता है। सभी माता-पिता अपनी सन्तानको सुन्दर समझते हैं, किन्तु उनमें भी उनकी लड़की जिसका ब्याह होनेवाला है, अत्यन्त सुन्दरी और सुशीला है। वे उसे अधिकसे अधिक सुन्दर और योग्य बतानेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु इस भावनाके प्रकट करनेमें कलाका बड़ा ही सुन्दर प्रस्फुटन हुआ है। श्रृङ्गार रसके परिपाकके लिए उपमा और अतिशयोक्तिका प्रयोग इतना सरस हुआ है कि यह ग्राम-गीत किसी भी प्रतिभा-सम्पन्न कविकी कवितासे टक्कर ले सकता है। इसमें काव्यके सभी गुण विद्यमान हैं। अब बिहारके कुछ गीतोंके सम्बन्धमें दो शब्द सुनिये।

एक नवविवाहिता युवती पतिके घर आयी है। उसके आनेके थोड़े दिनोंके बाद उसका पति परदेश जाना चाहता है। वह विवाहिता स्त्रीसे कहता है कि घरका दरवाजा खोल दो, मैं परदेश जाऊंगा। वह युवती भी मान करती है और स्वाभाविक अभिमानसे कहती है कि यदि तुम्हें परदेश ही जाना है, तो तुम मेरे पिताको बुला दो। मैं भी अपने पिताके घर चली जाऊंगी। इसके बाद उसका पति कहता है कि यदि तुम्हें अपने नैहर (मायके) जाना है, तो शादीमें जितना रुपया खर्च हुआ है, उसे देकर जाना। उसके बाद नववधू कहती है कि यदि तुम्हें विदेश जाना ही है तो तुम मुझे उसी परिस्थितिमें करके जाओ जो ब्याहसे पहले थी। अर्थात् विवाहके पूर्व वह क्वांरी थी। वह वह कली थी, जिसका पूर्ण विकास नहीं हुआ था। पूर्ण रूपसे पुरुष सम्पर्कविहीना थी। अगर उसका दूल्हा उसे इस परिस्थितिमें ला सकता है, तब तो वह जाय; नहीं तो उसे छोड़कर उसे जानेका कोई हक नहीं। इसी भावसे पूर्ण निम्नाङ्कित गीतको पढ़िये और समझनेकी चेष्टा कीजिये।

"झिलमिल खोल ना केवड़िया,
हम विदेशवा जइबो ना।
जो तू हूं पियवा विदेशवा जइबो ना,
हमरा बाबाके बुला दो, हम नइहरवां जइबो ना।
जो तू हूं धनियां नइहरवा जइबो,
जितना लागलबा रुपैया उतना देके जइह ना।
जो तू हू पियवा विदेशवा जइबो ना,
जैसन बाबा घरवां रहली वैसन बनाके जइह ना।

इसी प्रकार विदेश जाने, विवाह, वियोग-संयोग तथा पुत्र-जन्मके समयके अनेक ग्राम-गीत ग्रामवासियोंकी जिह्वापर हैं, और समय-समयपर उनके कण्ठोंसे निकलते रहते हैं। बिहार, युक्तप्रदेश, पञ्जाब, राजपूताना तथा मध्यप्रदेशके ग्राम-गीत संगृहीत किये जायं तो हमारा हिन्दी-संसारका भण्डार अवश्य पूर्णताको प्राप्त होगा। नयी कल्पना, अछूत उपमायें, विभिन्न रसोंका विशद वर्णनका दर्शन होगा। पढ़े-लिखे लोगोंको अनुसन्धानात्मक काम भी मिलेगा तथा अपनी सभ्यता एवं संस्कृतिके गड़े हुए खजानोंको हम ढूंढ़ निकालेंगे। कतिपय साहित्यसेवियोंने इधर ध्यान दिया है, किन्तु अधिकांश साहित्यिक नागरनिवासी होनेके कारण इससे बहुत दूर हैं। अन्वेषणमें सफलता है—सत्यं, शिवं, सुन्दरम्‌की प्राप्ति होती है। और इस अन्वेषणमें भी हम इसी सत्यको प्राप्त करेंगे।

—राय साहब प्रो० रामनारायण सिंह, एम०ए०, बी०एल०

पदक और पुरस्कार

काशी नागरी प्रचारिणी सभाके प्रधान मन्त्री श्रीरामचन्द्र वर्मा सूचित करते हैं:—

विभिन्न विषयोंके उत्तम और मौलिक ग्रन्थोंके रचयिताओंके सम्मान एवं उत्साहवर्द्धनके लिए सभाद्वारा अनेक पुरस्कार और पदक दिये जाते हैं। इस वर्ष जो पुरस्कार पदक दिये जानेवाले हैं, उनका विवरण निम्नलिखित-है—

१—रत्नाकर-पुरस्कार—२०० रुपयेका यह पुरस्कार सौर १ माघ संवत् १९९४ से २९ पौष १९९८ के अन्तर्गत प्रकाशित व्रजभाषाकी सर्वोत्तम मौलिक रचना अथवा सुसंपादित कृतिपर दिया जानेवाला है। इसके साथ राधाकृष्णदास रौप्य पदक भी दिया जायेगा।

२—रत्नाकर-पुरस्कार—यह दूसरा रत्नाकर पुरस्कार भी २०० रुपयेका है और १ माघ १९९५से २९ पौष १९९९ के अन्तर्गत प्रकाशित हिन्दीकी अन्य उपभाषाओं यथा डिंगल, राजस्थानी, अवधी, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदिकी सर्वोत्तम मौलिक रचना अथवा सुसंपादित ग्रन्थोंके लिए दिया जायेगा। इसके साथ बलदेवदास रजत पदक [illegible] जायेगा।

३—डाक्टर छन्नूलाल-पुरस्कार—२०० रुपयेका यह पुरस्कार १ माघ १९९६ से २९ पौष २०० के अन्तर्गत प्रकाशित हिन्दीकी विज्ञान विषयक सर्वोत्तम रचनापर दिया जायेगा। इसके साथ ग्रीव्ज रौप्य पदक भी दिया जायेगा।

४—डाक्टर हीरालाल स्वर्ण पदक—यह पदक १ बैसाख १९९८ से ३० चैत्र १९९९ तक प्रकाशित पुरातत्व, मुद्राशास्त्र, इन्डोलाजी, भाषा-विज्ञान तथा लिपिप्राकी सम्बन्धी हिन्दीकी सर्वोत्तम मौलिक पुस्तक अथवा गवेषणापूर्ण निबंधपर दिया जायेगा।

५—द्विवेदी स्वर्ण पदक—यह पदक प्रति वर्ष हिन्दीमें सर्वोत्तम पुस्तकके रचयिताको दिया जाता है। सं० १९९८ तक प्रकाशित पुस्तकोंपर विचार हो चुका है। अगला पदक सं० १९९९ की पुस्तकोंपर दिया जायेगा।

प्रत्येक पुरस्कार अथवा पदकके लिए विचारार्थ पुस्तकों की [illegible] प्रतियाँ आनी चाहियें। विशेष विवरणके लिए पदक पुरस्कारोंकी नियमावली द्रष्टव्य है, जो सभासे मंगायी जा सकती है।

* * *

समालोचना और प्राप्ति स्वीकार

सरल हिन्दी व्याकरण। लेखक—श्री शिवनारायणलाल। पृष्ठ-संख्या ३०४, मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक विशेषतः स्कूल और कालेजके छात्रोंको हिन्दी व्याकरणका बोध करानेके लिए सरल भाषामें लिखी गयी है। पर इससे छात्रोंके अतिरिक्त अन्य लोग भी लाभ उठा सकते हैं। लेखकका कहना है कि इस पुस्तकमें कई ऐसी बातोंका समावेश किया गया है जो सर्वथा नयी हैं। जैसे सन्धि-प्रकरणमें उर्दूके उन शब्दोंकी सन्धियां, जो हिन्दीमें प्रचलित हैं। इसी प्रकार और भी कई विषयोंपर लेखकने स्वतन्त्र रूपसे विचार किया है। छात्रोंको व्याकरण सम्बन्धी कठिनाइयोंको समझनेमें इस पुस्तकसे यथेष्ट सहायता मिल सकती है।

स्तोत्रमाला। संग्रहकर्ता उपर्युक्त। इसमें ईश-प्रार्थना सम्बन्धी भावपूर्ण संस्कृत श्लोकोंका संग्रह है। साथमें हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। हिन्दीके भी कुछ भजन संगृहीत किये गये है। पृष्ठ-संख्या १५०, मूल्य ॥)

माडर्न ट्रेड (अंगरेजी)। लेखक—वही। प्रस्तुत पुस्तक कलकत्ता विश्वविद्यालयके आई-कम० के छात्रोंके लाभार्थ लिखी गयी है। इसमें व्यापार-सम्बन्धी बहुत-सी बातें बतलायी गयी है। हुण्डी, बिल, बीमा आदि विविध विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। पृष्ठ-संख्या ३०४, मू० ३)

उपर्युक्त तीनों पुस्तकें लेखकसे ही, शङ्कर एण्ड कम्पनी, ११५ बी, एमहर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्तासे मिल सकती हैं।

करबला (काव्यग्रन्थ)। रचयिता—श्री कमलाप्रसाद वर्मा, मूल्य ॥=) आने। प्राप्ति-स्थान—ग्रन्थकार, कमलाकुञ्ज, गुलजार बाग (पटना)।

प्रस्तुत पुस्तकका विषय अपने नामसे ही प्रसिद्ध है। यह इस विषयकी अपने ढङ्गकी एक ही पुस्तक है। इसकी शैली हिन्दी-उर्दू मिश्रित है, भाषा और भाव गम्भीर है। इस रचनामें हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भी पूरा जोर डाला गया है। भूमिकामें करबलाकी कहानीका परिचय कराते हुए श्रीशिवपूजन सहायजीने ठीक ही कहा है कि रचयिताने इस पुस्तककी रचना अपनी प्रतिभाका चमत्कार दिखाने या काव्य मर्मज्ञोंको रसानुभूतिमें निमग्न करनेके उद्देश्यसे नहीं की है—की है केवल सर्वसाधारणके हृदय तक वह अमर सन्देश पहुंचानेके लिए, जो सत्य और त्यागकी महिमा प्रकट करनेवाला है। इस लक्ष्य-सिद्धिपर उन्हें सन्तोष होना चाहिये।

हम क्यों झगड़ते हैं ?

'हम' शब्दका प्रयोग बहुवचनमें होते हुए भी यहां द्विवचनका ही द्योतक है। इसका अर्थ हिन्दू, मुसलमान या देशवासीका भाव नहीं लाता, बल्कि 'हम दोनों' पुरुष-स्त्री या पति-पत्नीके ही अर्थमें यहां प्रयुक्त हुआ है। अस्तु, हम क्यों झगड़ते हैं का अर्थ हुआ कि हम पति-पत्नी आपस में क्यों लड़ते हैं, दुखी होते हैं, स्वर्ग सुखको नर्ककी चिनगारी बना डालते हैं और सामूहिक जीवनको बोझ बना छोड़ते हैं, सरसतामें नीरसता और मीठेपनमें कड़वापन ला कर ही शान्ति लेते हैं। आजकल पति-पत्नीकी लड़ाई अधिकांश घरोंमें देखी जाती है। यह युद्धसे भी भयानक, चार दीवारोंसे घिरे हुए अनेक कुटुम्बों-राष्ट्रोंको नष्ट कर रही है, इसके गोले शब्दहीन होकर हृदयकी कलीका खून कर रहे हैं और मजा तो यह है कि इस संसार व्यापी महायुद्धका कभी अन्त होता नहीं दिखाई देता। इस युद्धके निपटारेका अन्त कोई राष्ट्र बीचमें पड़कर नहीं करा सकता। आखिर इसका कारण क्या है और क्या इसको दूर करनेका कोई मार्ग भी है ?

मेरी समझमें इस लड़ाई या झगड़ेके अनेक कारण हैं। किन्तु मैं उनमेंसे कुछ मुख्य कारणोंको ही आपके सामने यहां रखती हूं :—

हमारे देशमें, विशेषतः हिन्दुओंमें, व्याह एक धार्मिक अनुष्ठान समझा जाता है और जब यह कार्य समाप्त हो जाता है, तब लड़के और लड़कियोंको आपसमें मिलनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। इससे एक बातकी पूर्ति नहीं हो पाती। लड़के या लड़कीके मनमें विवाहसे पहले, अपने दूल्हे या दुलहिनके लिए एक कल्पना बनी रहती है। हर एक समझदार युवक मनमें सोचता है कि उसकी दुलहिन ऐसी होनी चाहिये। कुछ चाहते हैं कि उनकी होनेवाली स्त्री अत्यन्त धार्मिक हो, गङ्गा स्नान करती हो, रामायण या गीताका पाठ करती हो, अपने पतिके अतिरिक्त और किसी पुरुषकी ओर आंख उठाकर भी न देखती हो। और दूसरी ओर कुछ ऐसे भी पुरुष हैं, और सम्भवतः आजकल, जब कि पाश्चात्य सभ्यताका प्रचार सम्पूर्ण संसारमें प्रचुर मात्रामें फैला हुआ है, शायद उन्हींकी संख्या बेशी है, जो चाहते हैं कि उनकी पत्नी एक अच्छे दर्जेकी पढ़ी-लिखी, चुलबुली, गाने-नाचनेमें निपुण, वार्त्तालाप करनेमें, आंख नचानेमें, हाव-भाव दिखानेमें और दूसरेको आकर्षित करने तथा सांसारिक ज्ञानमें कुशल हो। विवाहोपरान्त जब दोनों प्रकारके नवयुवक अपनी पत्नियोंमें वांछित गुणको नहीं पाते तो निराश हो जाते हैं और उनका दिल दिन-दिन आगे बढ़नेकी जगह पीछे हटने लगता है। मीठे रसमें कड़वेपनकी गन्ध आने लगती है। अनेक समझदार लड़कियां पतिकी प्रवृत्ति देखकर वैसी ही बननेकी चेष्टा करती हैं। मैंने देखा है कि विवाहके बाद युवतियोंने गाना-बजाना और नृत्य करना सीखा है।

अब रही बात लड़कियोंकी। सम्भवतः मैं उनके विचारोंको प्रकट करनेमें कुछ पक्षपात कर बठूं। किन्तु मैं पूरी चेष्टा करूंगी कि मेरे विचार उनके हृदयके चित्रको चित्रित करनेमें निर्पेक्ष बने रहें। मेरी समझमें कोई भी लड़की, पढ़ी-लिखी हो या अपढ़ हो, यही चाहती है कि उसका पति हृष्ट-पुष्ट और सदाचारी पुरुष हो। यह उसकी सर्वप्रथम मांग है और इसीमें वह अपने सम्पूर्ण स्वर्गमय भविष्यका स्वप्न देखती है। इसीमें उसकी आशा और निराशाका भेद छिपा रहता है। इस विपत्तिसे बचनेके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि विवाहके पूर्व स्त्री और

पुरुष दोनोंको एक दूसरेका ज्ञान हो, किन्तु वैसा मेल-जोल या दोस्ती न हो जैसा कि अभारतीय युवक या युवतियां करती हैं।

हमारे देशमें दो प्रकारकी स्त्रियां हैं। एक तो वे जो दिन भर घरमें बैठी रहती हैं और घरके काममें ही समय गुजारती हैं। बाहर जानेका अवकाश या सुअवसर ही नहीं प्राप्त होता। पर्देमें रखी जाती हैं। दूसरी वे हैं जो बाहर जाती हैं और कुछ काम भी करती हैं। घरमें रहनेवाली स्त्री, जिसे किसीसे मिलनेका मौका नहीं दिया जाता, घरके कामोंसे छुटकारा पाकर पतिका इन्तजार करती रहती हैं, पर जब देर हो जाती है और पतिदेव घरको नहीं लौटते तो उसे क्रोध आ जाता है और जब वह घरमें प्रवेश करते हैं तो वह प्रेमपूर्ण वार्तालाप करनेके बजाय सीधे मुंह बाततक नहीं करती। इससे पतिदेवको दुख होता है और दोनोंमें अप्रसन्नताका अंकुर पैदा हो जाता है। आगे चलकर, पति-पत्नीके कलहका यही एक कारण बन जाता है।

हमारे देशमें अधिकसे अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य पुरुषके ऊपर रहता है और चाबीस घण्टे वह परिवारके निर्वाहकी चिन्तामें रहता है। वह अपनी चिन्ता, अपना दुख या हृदयके बोझको किसीसे नहीं कहता। केवल उसकी पत्नी ही है, जिसके सामने वह अपने बोझको हलका करता है और वह अपने पतिके हृदयकी बातको समझती है।

अतः पत्नीको चाहिये कि वह अपने पतिसे कभी अप्रसन्न होकर न बोले। सदैव अपनी प्रसन्नता और मीठे वचनोंके द्वारा पतिके कष्टोंको हल्का कर दे या उसे ऐसा बना दे कि घर आ जानेपर वह दिनभरके झंझटोंको भूल-सा जाय। कभी भी क्रोध या गुस्सेमें आकर न बोले। ऐसा करनेसे हमारा जीवन सुखी रहेगा और हमारे झगड़े भी मिट जायेंगे। हम दुखमें भी सुखी रहेंगे और गरीबीमें भी अमीरी महसूस करेंगे। हमारे झगड़े मामूली-मामूली बातोंको लेकर भी होते हैं। अगर बाहर जाते समय पति देवको उनके कपड़े तुरन्त न दिये गये, जरा इस स्थानसे हटाकर उस स्थानपर रख दिये जाते हैं, तो यह भी झगड़ेका कारण बन जाता है। साबुनदान मिलनेमें जरा देर हुई कि पति देवका पारा उठा। और साथ ही साथ श्रीमती भी बिगड़ जाती हैं। बस, यह एक भयङ्कर रूप धारण कर लेता है और हम आपसमें लड़ बैठते हैं। बढ़ते-बढ़ते बात इतनी बढ़ जाती है कि पतिदेवका पारा सातवें आसमानपर चला जाता है और श्रीमतीका उत्तर भी वैसा ही मिलता है। इसलिए स्त्रियोंको चाहिये कि वे सब चीजोंको संभालकर रखें ताकि मौकेपर मिल जायें। कोई चीज ऐसी जगह न रखें जिसे ढूंढनेमें कोई दिक्कत हो और उसके लिए कोई झगड़ा हो। घरमें उन्हें खूब कायदेसे सजाकर रखना चाहिये।

हां, इस सम्बन्धमें मैं एक और बात कह देना चाहती हूं। बहुत-सी लड़कियां और लड़कोंका विचार है कि विवाहके पहले उनका काफी परिचय होना चाहिये। वे एक दूसरेको पहचानते हों और उनमें पूरी कोर्ट-शिप भी हुई हो, जैसा कि अमेरिका और विलायतकी लड़कियां करती हैं। मेरी समझमें यह प्रणाली बिल्कुल उचित नहीं है। स्त्री और पुरुष दोनोंमें एक दूसरेके लिए एक प्राकृतिक आकर्षण होता है यानी एक दूसरेको अपनी ओर खींचता है। अस्तु, जब तक हम अलग-अलग रहेंगे, एक दूसरेसे जितना ही बचकर रहेंगे, वह स्वाभाविक आकर्षण बना रहेगा, और जब हम एक दूसरेसे मिल जायेंगे तो यह प्राकृतिक आकर्षण नष्ट हो जायेगा। अर्थात जो चीज हमें दूरसे जितनी अच्छी लगती है पाससे वह इतनी अच्छी नहीं लगती और उसमें उतना आकर्षण नहीं रहता। इस सिद्धान्तसे भी लड़के-लड़कियोंका एक जगह रहना ठीक नहीं। वे एक दूसरेको जानते हों, पहचानते हों, यह बात दूसरी है, किन्तु साल छः महीने भी उनकी दोस्ती हुई तो यह बात ठीक नहीं। भाई और बहन एक ही

हिन्दीके प्रसिद्ध कहानीकार और लेखक डा० धनीराम प्रेमकी धर्मपत्नी श्रीमती रतन प्रेम, जिन्हें बर्मिंघम विश्वविद्यालयसे समाज - विज्ञानका डिप्लोमा मिला है। आपने बर्मिंघम सेटलमेंट तथा अन्य संस्थाओंमें समाज सेवाका कार्य सीखा है। आप दोनों आजकल बर्मिंघममें हैं।

साथ रहते हैं। युवक भाई और युवती बहन होनेपर भी उनमें कोई पारस्परिक आकर्षण नहीं होता। भाई भी दूसरी स्त्रीसे प्रेम करता है और बहन भी दूसरे पुरुषको प्यार करती है। भाई-बहनमें जो प्रेम रहता है वह प्रेम दूसरी ही तरहका रहता है।इससे यह सिद्ध होता है कि दूर रहनेसे प्रेमाकर्षण अधिक होता है। और विवाहके बाद वह परिपक्व हो जाता है।

जो लोग मित्रता कराकर विवाह कराना चाहते हैं वे गलत रास्तेपर हैं। जिन देशोंमें यह प्रथा जितनी ही अधिक प्रचलित है,वहांपर पति-पत्नीका जीवन उतना ही दुखमय है। यह बात बराबर पढ़ने और देखनेमें आती है कि अमेरिका या लन्दनकी एक भावुक स्त्रीने विवाहके कुछ ही दिन बाद अपने पतिका त्याग कर दिया और उनमें आपसमें मुकदमेबाजी भी हुई। उनका प्रेम स्थायी न होकर अस्थायी बन गया है। उनके लिए यह खेल है, हमारे लिए यह जीवन और मरणका प्रश्न उपस्थित करता है। इसलिए हमें उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये।

झगड़ेकी चौथी बात हमारी अशिक्षा है। हमारे देशके अधिकांश स्त्री-पुरुष अशिक्षित हैं—कहीं-कहींपर दोनों और कहीं-कहींपर दोनोंमें एक। यदि पुरुष पढ़ा-लिखा विद्वान है तो स्त्रीको नाम भी नहीं लिखने आता। इस अशिक्षाके कारण हम एक दूसरेकी बातोंकी कीमत ठीक-ठीक नहीं लगा पाते, भावनाओंको समझनेमें देर होती है। पति अपनी पत्नीको, जो अपढ़ा और नासमझ है,आगे बढ़ाने या सुधारनेकी जगह उसे बुरी तरहसे मारते हैं, अपमानित करते हैं और नाना प्रकारका कष्ट देते हैं। इसलिए घरका सुख सदाके लिए चला जाता है और रात-दिन कलह अपना आसन जमाये रहता है। अस्तु, इन सब बुराइयोंको दूर करनेकी एक ही दवा है, और वह यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही शिक्षित हों और दोनों एक दूसरेके मनोभावोंको समझनेकी चेष्टा करें।

—चन्द्रमणि देवी, 'विदुषी'।

भारतमें महिलाओंकी स्थिति

हालमें ही बम्बईमें भारतीय महिलाओंकी राष्ट्रीय समितिके तत्वावधानमें एक महिला सम्मेलन हुआ था। उसके सभापति पदसे भाषण करते हुए डा० एम० आर० जयकरने कहा कि भाष्यकारों या अनुवादकोंने हमारे प्राचीन संस्कृत धर्मग्रन्थोंका बहुत गलत और भ्रमात्मक अनुवाद किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि आज कई शताब्दियोंसे हिन्दू-महिलायें नाना प्रकारके सामाजिक बन्धनोंमें जकड़ी हुई हैं। धर्मग्रन्थोंके त्रुटिपूर्ण भाष्योंके कारण समाजमें महिलाओंके सम्बन्धमें कितनी ही मिथ्या धारणायें और कुविचार फैले हुए हैं, जिनसे यह विश्वास जमता गया है कि महिलायें स्वतन्त्ररूपसे कोई कार्य कर नहीं सकतीं। श्रीजयकरने यह आशा प्रकट की कि निकट भविष्यमें ही, भारतमें विवाह और उत्तराधिकार सम्बन्धी सरल कानून बन जायंगे। इसमें सन्देह नहीं कि धर्मग्रन्थोंके भाष्यकारोंने हमारे उदारचेता ऋषियोंके वचनों के गलत एवं मनमाने अर्थ हमारे सामने रखे और समाजने उन्हें सही मान लिया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू जाति आज नाना प्रकारके कुसंस्कारों और कुरीतियोंमें ग्रस्त दिनपर दिन क्षीण होती जा रही है। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि हमारे धर्मग्रन्थोंका सही और यथार्थ समयानुकूल अनुवाद हो, जिससे वे हमारे सच्चे प्रदर्शक बनें।

———

मास्को-सम्मेलन

हालमें ही मास्कोमें अमेरिका, ब्रिटेन और रूसके परराष्ट्र मन्त्रियोंका एक सम्मेलन हुआ था। युद्ध छिड़नेके बाद यह पहला ही अवसर था कि इन तीनों देशोंके प्रतिनिधियोंने एक जगह बैठकर युद्धको सफलतापूर्वक सञ्चालित करनेके लिए परस्पर विचार-विमर्श किया। इस बैठकमें स्वीकृत निर्णयके सम्बन्धोंमें तीनों राष्ट्रोंकी ओरसे सन्तोष प्रकट किया गया है। केसाब्लांका और क्यूबेककी बैठकोंमें रूसके प्रतिनिधिके योग न देने अथवा आमन्त्रित न किये जानेके सम्बन्धमें नाना प्रकारके विचार प्रकट किये जा रहे थे। धुरी राष्ट्रोंकी ओरसे ढोल पीटकर यह प्रचार किया गया कि मित्र-शक्तियोंमें लक्ष्य और उद्देश्यके सम्बन्धमें मतैक्य नहीं है। पर अब मास्को सम्मेलनके बाद उनके इस प्रकारके मिथ्या प्रचार करनेका उत्साह भङ्ग हो जायेगा। सम्मेलनमें स्वीकृत निर्णयोंको देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होगा कि उनपर पूर्वी मोर्चेपर लाल सेनाकी विजय और रूसकी परराष्ट्र नीतिका प्रत्यक्ष प्रभाव है। रूस जापानसे युद्धरत नहीं है, फिर भी उसने इस सम्मेलनमें पहली ही बार मित्र शक्तियोंके साथ चीनके स्वार्थ और अधिकारको स्वीकार किया है, और मित्रशक्तियोंके जापानके साथ पृथक रूपमें युद्धलिप्त होनेपर भी, दोनों धुरी शक्तियोंके बिना शर्त आत्मसमर्पणकी नीतिको भी मान लिया है। मास्को-सम्मेलनमें युद्ध सम्बन्धी कोई नया निर्णय नहीं स्वीकार किया गया है। इन निर्णयोंमें यूरोपके दूसरे मोर्चेके सम्बन्धमें कोई उल्लेख नहीं है। इससे यह प्रतीत होता है कि रूस इस विषयपर विशेष जोर नहीं देना चाहता, क्योंकि वह जानता है कि अब उसकी लाल सेनामें जर्मनीको पराजित करनेकी यथेष्ट शक्ति है। उसकी इसी अजेय शक्तिको देखकर ही अमेरिका बड़े आग्रहसे युद्धोत्तर विश्वमें रूसके साथ सहयोग स्थापन करना चाहता है। राजनीतिक दृष्टिसे भी सम्मेलनकी घोषणामें कितने ही विषयोंका उल्लेख नहीं है। उदाहरणस्वरूप पोलैण्ड और फिनलैण्डकी बात कही जा सकती है। जिन्होंने यह घोषणा की है कि जर्मनीके चंगुलमें फंसे आस्ट्रियाको पुनः सार्वभौम राष्ट्र बनाया जायेगा, उन्होंने पोलैण्डके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा। सम्मेलनमें एक महत्वपूर्ण निर्णय यह स्वीकार किया गया है कि शीघ्र से शीघ्र छोटे-बड़े शान्तिकामी राष्ट्रोंका एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ गठित किया जायेगा। यह सङ्घ समस्त राष्ट्रोंकी सार्वभौम नीतिके ऊपर कायम होगा और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और अमनकी रक्षा करेगा। गत महायुद्धके बाद भी इसी तरह एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ 'लीग आफ नेशन्स'के नामसे गठित किया गया था, पर वह इतना निकम्मा सिद्ध हुआ कि इस समय उसका अस्तित्व ही मिट गया है। देखें, अब यह अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखनेमें कहां तक सफल होता है। यों तो मास्को सम्मेलनमें कई महत्वपूर्ण निर्णय स्वीकृत किये गये हैं, पर दुख है कि एशियाके पराधीन देशोंके सम्बन्धमें कुछ चर्चा नहीं की गयी। इससे एशियाई देशोंका, मास्को निर्णयसे असन्तुष्ट होना स्वाभाविक ही है। वास्तवमें जब तक एशियाके पराधीन राष्ट्र स्वतन्त्र नहीं होते तब तक कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ विश्वकी शान्ति और सुरक्षा कायम रखनेमें सफल नहीं हो सकता।

तुर्की और मित्रराष्ट्र

काहिरामें मि० ईडेन और तुर्कीके परराष्ट्र मन्त्रीके बीच होनेवाली भेंटके विषयमें मांचेस्टर गार्जियन पत्रका कूटनीतिक संवाददाता लिखता है कि तुर्कीकी तटस्थता एक विशेष प्रकारकी है। वह ब्रिटेनका मित्र है। रूसके साथ उसकी सन्धि है, उधार-पट्टा प्रणालीके

अनुसार वह सामग्री पाता है। भौगोलिक दृष्टिसे पूर्वी भूमध्य सागरमें, जिधर युद्ध तेजीसे बढ़ता आ रहा है, उसकी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति है। राजनीतिक दृष्टिसे ब्रिटेन-तुर्की सन्धि उसकी वैदेशिक नीतिका आधार है। इसलिए मास्को सम्मेलनमें तुर्कीकी दिलचस्पी होनी स्वाभाविक ही है।

विराट राष्ट्रीय परिषद्में हुए प्रेसिडेंट इनोनूके हालके भाषणने भी प्रकट कर दिया है कि तुर्की जर्मन सैन्यवादके विरुद्ध है। प्रेसिडेण्टने स्पष्ट कह दिया है कि तुर्की विविध राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताका समर्थन करनेवाली नीतिका अवलम्बन कर रहा है और राष्ट्रोंको परतन्त्र बनानेवाली किसी भी शक्तिके विरुद्ध है। कहा जाता है कि आपके भाषणसे जर्मनी और उसके पिट्ठू राष्ट्रोंको बड़ी बेचैनी हो रही है। ब्रिटेनमें इसका स्वागत किया गया है और आशा है कि तुर्कीके वैदेशिक मन्त्री और मि० ईडेनकी भेंटसे तुर्की, ब्रिटेन और अन्य मित्र राष्ट्रोंके सम्बन्ध और अधिक सुदृढ़ हो जायेंगे।

यूरोपीय युद्धकी स्थिति

अभी हालमें ही युद्ध-संलग्न राष्ट्रोंके कर्णधारोंने अपने-अपने दृष्टिकोणसे, यूरोपीय युद्धकी वर्तमान अवस्थापर प्रकाश डाला है। सोवियट यूनियनके स्थापना दिवसके उपलक्षमें भाषण देते हुए स्टालिनने युद्धकी वर्तमान स्थितिकी आलोचना की, उसके कुछ ही दिन बाद म्यूनिकके बियार सिलारमें बहुत दिनोंके बाद हिटलरने भी अपने मनसूबे सुनाये हैं। उसी समय ही लन्दनके मेयरकी भोज सभामें मि० चर्चिलने वर्तमान सामरिक अवस्थाका सिंहावलोकन किया। स्टालिन वास्तववादी नेता हैं, इसलिए उन्होंने अपने भाषणमें नपे तुले शब्दोंका प्रयोग किया है। सोवियट नेताके भाषणों अथवा वक्तव्योंकी यह विशेषता है कि अन्य राजनेताओंकी भांति वह घुमा-फिराकर बातें नहीं करते, पर जो कुछ कहते हैं, सुस्पष्ट कहते हैं। इसलिए जो बातें अन्य राजनीतिक नेताओंके लिए अप्रिय कही जा सकती है, ऐसी अप्रिय सत्य बातें भी उनके मुंहसे निकलती हैं। स्टालिनकी इसी स्पष्टवादिताका प्रत्यक्ष परिचय हमें उनके भाषणमें मिलता है। उन्होंने विशेष रूपसे रूसी सैन्यदलकी ग्रीष्म-कालीन सफलताका उल्लेख किया और इस बातपर गर्व प्रकट किया कि सोवियट राष्ट्रके जन-साधारणकी प्रचेष्टाके फलस्वरूप ही यह सफलता मिली है। मि० चर्चिलने भी अपने भाषणमें रूसकी सफलता और उसकी अजेय शक्तिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ब्रिटेन और अमेरिकाके साथ रूसका मतैक्य, पहलेकी अपेक्षा दृढ़ है, स्टालिनने इस बातको स्वीकार किया है, किन्तु साथ ही उन्होंने, यह भी कहा है कि यूरोपके दक्षिण भागमें अमेरिका और ब्रिटेन जो युद्ध चला रहे हैं, उसे वह यूरोपका दूसरा मोर्चा नहीं समझ रहे हैं। हां, जर्मनीके ऊपर बम वर्षा कर दूसरे मोर्चेका कार्य कुछ अंशमें पूरा किया गया है, पर उनके मतसे रूसको सहायता पहुंचानेके लिए यह यथेष्ट नहीं है। वह चाहते हैं कि शीघ्रही यूरोपमें दूसरा मोर्चा खोला जाय।

हिटलरके भाषणमें लम्बी-चौड़ी बातें बहुत हैं। उन्होंने शब्दाडम्बरोंसे वस्तुस्थितिपर पर्दा डालनेकी चेष्टा की है। शत्रुपक्षके आघातकी गम्भीरताको, विद्वेषकी भावना जाग्रत कर, उन्होंने मखौल उड़ाना चाहा है। पर उनके भाषणसे यह आभास मिलता है कि भविष्यकी आशंकासे उनका मन अवश्य विचलित है। रूस सीमान्तके युद्धकी भीषणताका उल्लेख करते हुए हिटलरने सोवियट सेनाकी वीरता और दृढ़ताको, इच्छा न रहते हुए भी, स्वीकार किया है। हालमें ही इटलीमें जो राजनीतिक उलट-फेर हुए हैं, उससे हिटलर अवश्य ही खिन्न हैं, पर वह इटलीमें अमेरिका और ब्रिटेनके अभियानको विशेष महत्व नहीं देना चाहते हैं। उन्होंने उसकी उपेक्षा ही की है। हिटलरका सबसे अधिक क्रोध ब्रिटेनके ऊपर है। उनके भाषणसे यह मालूम होता है कि वह अपनी सारी शक्ति लगाकर ब्रिटेनपर व्यापक रूपसे आक्रमण करना चाहते हैं।

चर्चिल काफी सावधान हैं। उनका भाषण बहुत संयत और गम्भीर है। जो लोग ऐसा अनुमान करते हैं कि अब मित्र-राष्ट्रोंकी मुट्ठीमें विजय आ गयी है, ऐसे लोगोंको, जो उल्लासमें उतावला हो रहे हैं, सावधान करते हुए मि० चर्चिलने कहा है कि जर्मनीकी शक्ति अभी भी सामान्य नहीं है। उन्होंने ब्रिटिश नागरिकोंको सचेत किया है कि निकट भविष्यमें इङ्गलैण्डपर जर्मन बिल्कुल नये ढङ्गसे हवाई हमला आरम्भ कर सकते हैं। उन्होंने बड़ी गम्भीरतासे कहा है कि १९४४ में यूरोपके रणक्षेत्रमें ऐसा विकराल और भीषण युद्ध होगा, जैसा कि आज तक नहीं हुआ था। उस युद्धसे ब्रिटेन और अमेरिकाको धन जनकी काफी क्षति उठानी पड़ सकती है। इससे स्पष्ट है कि यूरोपका युद्ध अभी भी चरम अवस्थाको नहीं पहुंचा है। यूरोपीय रणक्षेत्रके इस भावी संघर्षका क्या आकार होगा, उसकी भीष-

णता कैसी होगी और विश्वके भविष्यपर उसकी क्या परिणति होगी, यह अभी निश्चित रूपसे नहीं कहा सा सकता।

फ्रैङ्को और मित्रराष्ट्र

मैनचेस्टर गार्जियनने लिखा है कि स्पेन सरकारने फिलिपाइनमें जापानियों द्वारा स्थापित की गयी कठपुतली सरकारको बधाईका सन्देश भेजकर अपने लिए विपत्ति मोल ले ली है।

फिलिपाइन द्वीप एक दलकी तानाशाहीके अन्दर 'स्वतन्त्र' घोषित कर दिया गया है और वहां नाममात्रका नियन्त्रण रखकर फासिस्ट ढङ्गकी सरकार स्थापित कर दी गयी है। टोकियो बेतारके अनुसार स्पेनके वैदेशिक-मन्त्री काउण्ट बोरडानाने नये 'प्रेसीडेंट'को स्पेनकी ओरसे पूर्ण सौहार्द और पारस्परिक सद्भावनाका विश्वास दिलाया है।

मैनचेस्टर गार्जियन लिखता है कि इससे अमेरिकनोंका रुष्ट होना स्वाभाविक ही है। इस समय अमेरिकाका अपमान करना फ्रैङ्कोंके लिए बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं प्रतीत होता। अपने जर्मन और इटालियन मित्रोंके विरुद्ध युद्ध आता देखकर उन्होंने रूसमें लड़नेवाले ब्लू लीजनको सरकारी तौरपर भङ्ग कर दिया है। अब वह दिखानेके लिए यूरोपमें और अधिक तटस्थ बन गये हैं। फिर सुदूरपूर्वमें वह चिल्लानेके लिए क्यों अधिक फासिस्ट बनते हैं? भूल करना बुरा है और फ्रैङ्कोंके लिए तो भूलें करना कल्याणकारी हो ही नहीं सकता।
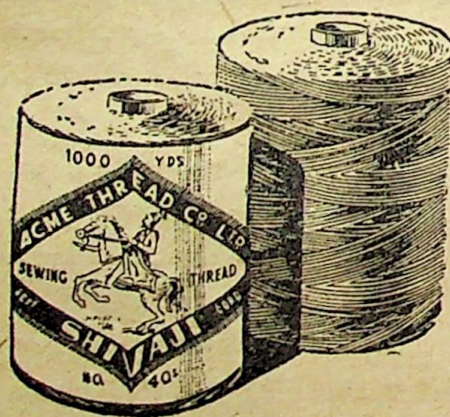
पुराने और नये वायसराय

गत २० अक्टूबरको लार्ड लिनलिथगोने भारतके वायसराय पदसे अवसर ग्रहण किया और उनकी जगहपर लार्ड वावेलने भारतका शासन-भार लिया है। लार्ड लिनलिथगोने साढ़े सात वर्ष तक शासन कार्य चलाया है। इतने लम्बे अर्से तक किसी भी वायसरायने भारतके शासन दण्डका संचालन नहीं किया। पर दुख है, इतनी लम्बी अवधितक शासन करनेपर भी लार्ड लिनलिथगोने भारतका कोई कल्याण नहीं किया, इसके विपरीत, उनकी नीतिसे देशका अहित ही हुआ है। आपके ही शासन कालमें, देशमें राजनीतिक गतिरोधकी सृष्टि हुई, जिसका अन्त अब तक भी न हो पाया और न इस समस्याका समाधान होनेकी कोई सूरत ही दिखायी दे रही है। देशकी आर्थिक दुरवस्था इस चरम सीमा तक पहुंच गयी है कि विकराल दुर्भिक्ष अपने मुंहमें सारे देशको निगलना चाहता है। इस समय देशमें, विशेषतः बङ्गालमें, दुर्भिक्षका ऐसा ताण्डव नृत्य हो रहा है कि हमारी सामाजिक अवस्था दयनीय रूपमें अस्त-व्यस्त हो रही है। लार्ड लिनलिथगो, लाख चेष्टा करनेपर भी केन्द्रमें संघ-शासन नहीं कायम कर सके। उन्होंने अपनी नीतिसे प्रान्तीय स्वायत्त शासनको हास्यास्पद बना दिया। उनके शासनकालमें केन्द्रमें, अथवा प्रान्तोंमें कोई लोकमतानुयायी नीति नहीं कायम हो सकी। उन्होंने सर्वत्र लोकमत विरोधी ही नीतिको प्रश्रय दिया। देशमें जो आज विकट समस्या उपस्थित हुई है, उसको हल करनेमें लार्ड लिनलिथगो बुरी तरह असफल रहे हैं। लार्ड लिनलिथगो क्या, कोई भी वायसराय, इस अन्न समस्याको हल करनेमें कृतकार्य नहीं हो सकता, जब तक देशके मान्य नेता जेलोंमें पड़े रहेंगे, जब तक राजनीति गतिरोधका अन्त नहीं होता। लार्ड लिनलिथगोने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और अपनी नीतिपर अटल रहे। देशके सभी विचार और मतके प्रमुख व्यक्तियोंने महात्मा गान्धी आदि कांग्रेस नेताओंको रिहा कर देनेकी अपील की, पर लार्ड लिनलिथगोने देशकी इस मांगको उपेक्षासे ठुकरा दिया। इस तरह लार्ड लिनलिथगोका शासनकाल उनकी शासन सम्बन्धी असफलताओं, विफलताओं और राजनीतिक अदूरदर्शिताका घोर अन्धकारमय काल रहा है।

अब उनके उत्तराधिकारी लार्ड वावेल उनकी नीतिका अनुसरण करेंगे अथवा वह अपनी उदार नीतिका परिचय दे, भारतके राजनीतिक गतिरोधका अन्तकर वास्तवमें देशका कुछ हित करेंगे, यह हम बड़ी उत्सुकतासे देख रहे हैं। भारत आनेके पहले आपने कहा था कि भारतसे उनका प्रेम है और कितनी ही अलक्ष्य वस्तुएं इस अकिंचन देशको उपहारमें देनेके लिए वह अपने मानसिक हैण्डबैगमें भरकर ले आये हैं। आनेके समय ही आपने वायसरायोंकी पुरानी परिपाटीके विरुद्ध, सीधे बङ्गालमें आकर स्वयं अपनी आंखों दुर्भिक्ष पीड़ितोंकी दुरवस्था देखी और उसे शीघ्रसे शीघ्र दूर करनेका आश्वासन दिया। इससे लोगोंको आशा हो रही है कि लार्ड वावेलके शासन कालमें देशकी वर्तमान अवस्थामें कुछ सुधार होगा। पर सुननेमें आया है कि वह इस समय विशेषरूपसे दुर्भिक्ष-दमनकी ही ओर विशेष ध्यान देंगे। राजनीतिक समस्याके सम्बन्धमें अभी वह कुछ नहीं करेंगे। उस दिन व्यवस्थापिका परिषद्के अधिवेशनमें आपका जो सन्देश पढ़कर सुनाया गया, उसमें आपने भारतकी राजनीतिक समस्याके सम्बन्धमें अपने विचार नहीं प्रकट किये। इस समय वह स्थितिका अध्ययन कर रहे हैं। असेम्बलीके बजट अधिवेशनमें हमें आपके इस अध्ययनका परिणाम सुननेका अवसर मिलेगा। जो हो, हमें तो आशा नहीं है

कि जब तक ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल और भारत मन्त्री मि० एमरी बने रहेंगे तब तक चाहे लार्ड वावेल वायसराय हों अथवा और कोई, भारतकी समस्या वैसी ही उलझी पड़ी रहेगी।

अन्न-सङ्कट और सरकारका दायित्व

उस दिन पार्लामेंटकी कामन्स सभामें भारतकी वर्तमान खाद्य समस्याके सम्बन्धमें बहस हुई। ब्रिटेनके राजनीतिज्ञ कभी-कभी भारतके प्रति अपनी मौखिक सहानुभूति प्रकटकर ब्रिटिश पार्लामेंटमें भारत सम्बन्धी इस प्रकारके जो प्रश्न छेड़ देते हैं, उसे हम अधिक महत्व नहीं दे सकते, क्योंकि हम अच्छी तरह जानते हैं कि ऐसे वादानुवादोंका क्या परिणाम हो सकता है। इस वादानुवादके सम्बन्धमें, एक ह्वाइट पेपर निकालकर पहलेसे ही काफी ढोल पीटा गया था, और लोगोंको आशा हो रही थी कि इस बार पार्लामेंटमें, भारतकी खाद्य-समस्याको हल करनेके लिए कोई महत्वपूर्ण निर्णय होगा। पर पार्लामेंटके सदस्योंको भारतसे कितनी दिलचस्पी है, यहांके क्षुधार्तों और दरिद्रोंके प्रति उनकी कितनी सहानुभूति है, वह इसी बातसे पता चल जाता है कि छः सौ सदस्योंमें, इस बहसके समय केवल पैंतीस सदस्य उपस्थित थे। खैर, जो हो, इस रस्म अदायगीमें किसी प्रकारकी कमी नहीं की गयी। मजदूर, उदार, अनुदार दलके सदस्योंने भारतके अन्न-सङ्कटके सम्बन्धमें सरकारकी नीतिकी कटु-मृदु आलोचना की। अन्तमें भारत सरकारकी ओरसे भारतमन्त्री मि० एमरी और ब्रिटिश सरकारकी ओरसे सर जान एण्डरसनने, आलोचकोंके तर्कोंका खण्डन करनेकी चेष्टा की। एक जातिके सङ्कट और विपत्तिकी गम्भीरताका आन्तरिक भावसे अनुभव करना दूसरी जातिके लिए कठिन है। विजेताके लिए विजितकी वेदना हृदयङ्गम करना तो कभी सम्भव नहीं। इस प्रकारकी मानसिक असुविधा रहते हुए भी कई एक सदस्योंने, विशेषतः मि० पैथिक लारेन्स, मि० कोव, मि० सेमूर काक्स, सर जार्ज शुस्टर आदिने इस सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारको उसकी जिम्मेदारियोंका स्मरण दिलाया। परन्तु भारत सम्बन्धी नीतिका दायित्व जिनके ऊपर है, उन्होंने बड़ी खूबीसे अपने कार्यों की सफाई दी। भारत मन्त्री मि० एमरीने भारतकी इस विकट अन्न-समस्याका समाधान करनेके लिए भारत सरकारकी नीतिका ही समर्थन किया। सर जान एण्डरसनने भी भारत मन्त्रीके सुरमें सुर मिलाया। उन्होंने कहा कि भारत सरकारपर यह दोषारोपण किया जा रहा है कि उसने अवस्थाको पहलेसे ही अनुभव न कर, कोई समुचित व्यवस्था नहीं की। किन्तु उस समय अन्नाभावसे लोग नहीं मर रहे थे। सर जानने भारत सरकारको निर्दोष प्रमाणित करनेके लिए कैसी सुन्दर दलील दी है! इसे सुनकर अब कौन भारत-सरकारको, अपना कर्तव्य न पालन करनेके लिए दोषी ठहरा सकता है? सर जानके कहनेका आशय यह है कि जब पहले आदमी मरते नहीं थे, तब उस समय ऐसी व्यवस्था करनेकी क्या आवश्यकता थी, जिससे वे आगे चलकर मरने न पायें। पता नहीं सर जानके इस युक्तिपूर्ण उत्तरसे प्रश्नकर्ताको सन्तोष हुआ या नहीं, पर हमारी साधारण बुद्धिमें उनका कथन सर्वथा निस्सार है। प्रश्न यह है कि क्या यह भारत सरकारका कर्तव्य नहीं था कि वह पहलेसे ऐसी कोई व्यवस्था करती, जिससे अन्नाभावसे लोगोंके मरनेकी नौबत ही नहीं आती। संसारके सभी स्वाधीन राष्ट्रोंने, युद्धसे उत्पन्न इस प्रकारकी विकट स्थितिका सामना करनेके लिए समुचित व्यवस्था कर रखी है। किसी देशसे अन्नाभावके कारण वहांके निवासियोंके मृत्युमुखमें पतित होनेकी करुण-कहानी हमें सुननेको नहीं मिलती। भारतवर्ष यदि स्वाधीन देश होता और हमारी अपनी राष्ट्रीय सरकार होती तो वह सरकार निश्चय ही कोई ऐसी व्यवस्था करती, जिससे देश दुर्भिक्ष द्वारा कवलित होनेसे बच जाता। भारतमें जो वर्तमान खाद्य-सङ्कट उपस्थित हुआ है, यह किसी प्राकृतिक दुर्घटनाके परिणाम स्वरूप अकस्मात नहीं हुआ है। विदेशसे भारतमें जो खाद्यान्न आता था, वह युद्ध छिड़नेके बाद बन्द हो गया। इसका परिणाम क्या होगा, यह पहलेसे ही समझ लेना अर्थशास्त्रियों और राजनीतिके पण्डितोंके लिए अत्यावश्यक था। यह जान लेने पर उसका प्रतिकार करनेके लिए कोई उपाय सोचा जाता। पर भारत सरकारके कर्णधारोंने, युद्धके कारण भारतमें खाद्यान्नका आयात बन्द हो जानेपर भी, युद्धकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए भारतसे कुछ अन्न बाहर भेजना आवश्यक समझा। ऐसी अवस्थामें भारत सरकारका कर्तव्य था कि वह कोई व्यापक योजना तैयार कर इस समस्याको हल करती। पर वह अपने इस गुरुत्वपूर्ण दायित्व निबाहनेमें सर्वथा असफल रही है।

भारतको नमकहलाली

सर जेम्स ग्रिग पांच वर्षतक भारत सरकारके अर्थमन्त्री रह चुके हैं। हालमें ही आपने भारतके प्रति अपनी इस

लार्ड वावेल क्षुधार्तोंके बीचमें।

नमकहलालीका परिचय दिया है। इसी सिलसिलेमें आपने अपने अमेरिकन बन्धुओंका भ्रम निवारण कर उनका महान उपकार किया है। उनके विचारसे अमेरिकनोंको भारतकी वर्तमान अवस्थाके सम्बन्धमें ठीक-ठीक जानकारी नहीं है। अतः इस अज्ञानतावश वे कोई अनर्थ न कर बैठें, इसी अभिप्रायसे सर जेम्स ग्रिगने उन्हें पहलेसे ही सावधान कर देना उचित समझा। अमेरिकन आज भी कांग्रेसको भारतकी प्रतिनिधि-संस्था समझते हैं। यही सर जेम्स ग्रिगकी आपत्तिका मुख्य विषय है। इसी गलतफहमीको दूर करनेकी आपने उदारता दिखलायी है। ऐसा प्रतीत होता है कि अतीतके इतिहासके सम्बन्धमें अभिज्ञता होते हुए भी सर जेम्स ग्रिगकी श्रेणीके ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंका ज्ञान अधूरा ही है। आज जो अमेरिकनोंसे भारत-सम्बन्धी अपनी साम्राज्यवादी नीतिकी वकालत कर रहे हैं, और कांग्रेसकी मर्यादाको नष्ट करनेकी कुचेष्टा कर रहे हैं, क्या वे अमेरिकाके स्वाधीनता-संग्रामके इतिहासको भूल गये हैं?
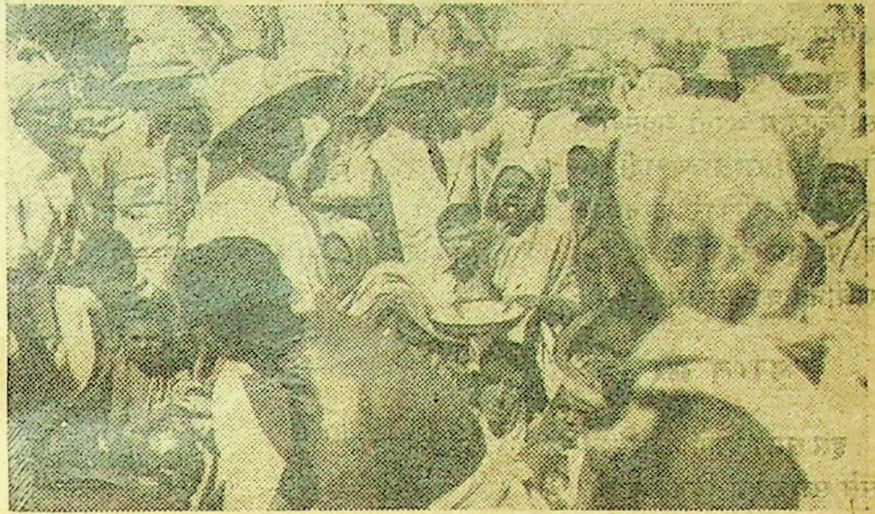
पराधीनताका अभिशाप

उस दिन भारत-मन्त्री मि० एमरीने बर्मिङ्घममें भाषण देते हुए भारतके वर्तमान दुर्भिक्षके कारणका विश्लेषण किया। आपके भाषणका यही मर्म है कि ब्रिटिश शासनकी महिमासे ही भारतके दुर्भिक्षने विकराल रूप नहीं धारण किया और ब्रिटिश सरकारकी महिमासे ही हम लोग अब तक बचे हुए हैं। भारत-मंत्रीके मतानुसार ब्रिटिश सुशासन के फलस्वरूप ही भारतमें अनेक सुधार-कार्य किये गये हैं जिससे वहांकी जनसंख्या बहुत बढ़ गयी है। बढ़ती हुई लोक-संख्याकी इस अवस्थामें ही युद्धका विपर्यय आ उपस्थित हुआ और उसीका परिणाम वर्तमान सङ्कट है। किन्तु ब्रिटिश शासनके प्रतापसे ही अवस्था गम्भीर नहीं होने पायी। कई प्रान्तोंमें शोचनीय अवस्था उपस्थित होने और कितने ही प्रान्तोंमें जीवनोपयोगी वस्तुओंके मूल्यमें अत्यधिक वृद्धि होनेपर भी भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारोंमें परस्पर सहयोगिता होनेसे एवं अधिक खाद्यान्न उत्पन्न करनेके आन्दोलन चलानेसे सङ्कटको बहुत कुछ दूर किया जा सका है। केवल दक्षिण भारतके कुछ जिलों और विशेषतः बङ्गालके किसी-किसी भागमें भयावह स्थिति उत्पन्न हो गयी है। मि०एमरीके कथनका यह तात्पर्य है कि भारतके अन्यान्य भागोंमें भी दुर्भिक्षसे जनता पीड़ित होती, पर ब्रिटिश सरकारकी तत्परतासे वहां ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न नहीं होने पायी, केवल थोड़ेसे ही स्थानोंमें उसे रोकना सम्भव नहीं हुआ। भारतकी अवस्थाके सम्बन्धमें पता नहीं मि० एमरीको किससे यह अभिज्ञता प्राप्त हुई, जिससे उन्होंने अपने भाषणमें ये तथ्यहीन बातें बतलायीं। यह सन्तोषकी बात है कि मि० एमरीने स्वीकार किया है कि बङ्गालके किसी-किसी भागकी अवस्था उद्वेगजनक हो गयी है। पर उन्हें मालूम होना चाहिये, इस समय प्रायः समग्र बङ्गालकी अवस्था शोचनीय हो गयी है। केवल कुछ अञ्चलोंमें ही अन्न-सङ्कटने भीषण आकार नहीं धारण किया है। आपके इस कथनमें कि ब्रिटिश सरकारके प्रतापसे ही भारतका अन्न-सङ्कट बहुत कुछ टल गया है, सत्यका कितना अंश है, यह वे अच्छी तरह जानते हैं जिसे प्रति दिन अन्नसङ्कटका सामना करना पड़ रहा है। इस प्रकारकी निराधार बातें मि० एमरी जैसे कट्टर साम्राज्यवादीके ही मुखसे निकल सकती हैं। सच तो यह है कि ब्रिटिश शासकोंके, दुरवस्थाका प्रतिकारके लिए समुचित व्यवस्था न करनेके फलस्वरूप ही भारतको इस अन्न सङ्कटमें ग्रस्त

होना पड़ा है। हमारी पराधीन अवस्था ही इसका एकमात्र कारण है। हम जब तक स्वाधीन नहीं होते, तब तक हमारी ऐसी दुर्दशा होती रहेगी, यह ध्रुव सत्य है। इसीलिए हम अपनी अवस्थाके सम्बन्धमें मि० एमरी अथवा और किसी साम्राज्यवादी ब्रिटिश राजनेता द्वारा दी गयी कैफियतको स्वीकार करनेको तयार नहीं हैं। वे चाहे जो कहें, पर हम जानते हैं कि हमारी वर्तमान अवस्था, हमारी पराधीनताका अभिशाप है।

भारत सरकारकी खाद्यनीति

इस समय देशमें जो विकट अन्न समस्या उपस्थित हुई, उससे सारा देश विचलित हो उठा है। यह स्थिति क्यों उत्पन्न हुई, इसके सम्बन्धमें कई कारण बतलाये जाते हैं और उन कारणोंको दूर करनेके लिए कई तरहके उपाय भी बतलाये जाते हैं। इसी सिलसिलेमें हालमें ही दिल्लीमें एक खाद्य-सम्मेलन हुआ था। उस सम्मेलनमें खाद्य नियन्त्रणके सम्बन्धमें कितने ही निर्णय स्वीकार किये गये हैं। यह अनेक बार कहा जा चुका है कि प्रान्तीय सरकारें अपने बलपर वर्तमान सङ्कटका सफलतापूर्वक सामना करनेमें असमर्थ हैं। पर भारत सरकारने इस विषयपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अभी तक इस सम्बन्धमें उसने कोई अखिल भारतीय नीति अख्तियार नहीं की। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सरकार खाद्य नियन्त्रणके सम्बन्धमें, प्रान्तीय सरकारोंकी अपनी व्यवस्थामें, किसी तरहका हस्तक्षेप करना नहीं चाहती। दिल्लीके खाद्य-सम्मेलनमें, खाद्य समस्याका समाधान करनेका सारा दायित्व प्रान्तीय सरकारोंको ही दिया गया है। पर अबतक खाद्य-संग्रह और वितरणकी जिस नीतिका अवलम्बन प्रान्तीय सरकारोंने किया है, वह व्यर्थ सिद्ध हुई है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण बङ्गाल और दक्षिण भारतके कितने ही जिलोंकी, अन्नाभावसे उत्पन्न वर्तमान अवस्था है। इसलिए हमारा विश्वास है कि खाद्य संग्रह और वितरणकी व्यवस्थाका भार प्रान्तीय सरकारोंपर छोड़ देनेसे इस कार्यमें आशाजनक सफलता नहीं प्राप्त होगी। सम्मेलनके निर्णयानुसार विभिन्न प्रान्तों और रियासतोंमें जो अतिरिक्त खाद्यान्न है, उसे इसी महीनेसे, उन प्रान्तोंमें वितरण किया जायेगा, जहांका अन्नका परिमाण कम है। सम्मेलनने एक निर्णय यह भी किया है कि बड़े-बड़े शहरोंमें राशनिंग जारी की जायेगी। पर छोटे-छोटे शहरों और गांवोंमें रहनेवालोंको उचित परिमाणमें खाद्यान्न पहुंचानेके सम्बन्धमें कोई निश्चित योजना नहीं बनायी गयी। भारतकी अधिकांश जनता गांवोंमें ही रहती है, इसलिए उन असंख्य ग्रामवासियोंकी अन्न-सङ्कटसे रक्षा करनेकी कोई व्यवस्था होना आवश्यक है। देखना है, दिल्लीके खाद्य-सम्मेलनके निर्णयानुसार भारत सरकार देशको अन्न-सङ्कटसे मुक्त करनेमें कहांतक सफल होती है।

अवांछनीय उछल-कूद

भारतकी वर्तमान राजनीतिक गतिरोधको दूर करनेके सम्बन्धमें विभिन्न राजनीतिक दलों और मतोंके व्यक्तियोंने समय-समयपर अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं, पर अभी तक कोई ऐसा मार्ग नहीं ढूंढ़ निकाला गया, जिससे इस समस्याका समाधान हो सके। वस्तुतः भारत सरकार ही नहीं चाहती कि देशकी वर्तमान राजनीतिक अवस्थामें किसी तरहका सुधार हो। फिर भी हम उन महानुभावोंके साहस और प्रयत्नकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते, जो सरकारकी वर्तमान नीतिसे पूर्ण अभिज्ञ होते हुए भी, राजनीतिक गतिरोधको दूर करनेकी कोशिससे बाज नहीं आते। हालमें ही समाचार मिला है कि सर्वश्री के० एम० मुंशी, गोपीनाथ श्रीवास्तव, और सन्तानम् गतिरोधको दूर करनेके उद्देश्यसे देशकी वर्तमान राजनीतिक स्थितिके सम्बन्धमें, कांग्रेसमैनोंका एक सम्मेलन करना चाहते हैं। उस दिन सम्भवतः इसी सिलसिलेमें श्री मुंशीने वायसरायसे मुलाकात की थी। इस सम्मेलनके आयोजनकर्ताओंके पवित्र उद्देश्यके सम्बन्धमें हमें कोई सन्देह नहीं, फिर भी हम उनसे तथा उन कांग्रेसमैनोंसे, जो इस समय जेलसे बाहर हैं, यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि उन्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि देशकी राजनीतिक समस्याके सम्बन्धमें कांग्रेसकी ओरसे कोई निश्चित विचार प्रकट करनेका एकमात्र अधिकार देशके उन मान्य नेताओंको है, जो आज जेलके सीकचोंके अन्दर हैं। उनकी अनुपस्थितिमें कांग्रेसके नामपर किसी तरहका निर्णय करना उस महान संस्थाकी मर्यादा नष्ट करना है। ऐसी अवस्थामें इन महानुभावोंकी यह उछल-कूद अवांछनीय है।

'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे नवलकिशोर सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

विश्वमित्र
विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

REGD. NO. C. 2230

सम्पादक—

रामाशीष सिंह

दिसम्बर, १९४३ वर्ष १२ संख्या ३ मार्गशीर्ष, २०००

भग्नावशेष

पथिक, ये सब धूलके कण।

मत करो उपहास इनका, हैं त्रसित ये चाहके क्षण॥

मिलनका इतिहास हैं ये, विरहकी नीरव कहानी।

प्रणयकी धूमिल अनल हैं, क्षोभकी जलती निशानी।

मत छुओ, दुख जायेंगे प्रिय! मर्मके रिसते हुए व्रण।

विश्वकी अनुभूतियां कटु, भाव मृदु मेरे हृदयके।

हैं यही आकुल प्रतीक्षा, निमिष कुछ भीषण प्रलयके।

उन दिनोंकी मधुर सुस्मृति, आजके भूले हुए प्रण!

साध हैं अस्वस्थ मनकी, मृतकका शृङ्गार हैं ये।

वेदनाके अमर पल, उनसे मिला उपहार हैं ये।

स्नेह सिंचित दीप टूटा, नीड़के बिखरे हुए तृण॥

—होमवती देवी।

भारतके प्राचीन नगर और नागरिक

श्री आर० ए० वात्स्यायन

भारतकी प्राचीन सभ्यता प्रधानतः दो प्रकारकी है--नगरमुखी और ग्राममुखी। नगरमुखी सभ्यताका विकास ग्राममुखी सभ्यताकी उपेक्षा करके होती है। परिणाम-स्वरूप देशके जनसाधारणके साथ उसका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित नहीं होता और उसके विकसित होनेकीभी आशा नहीं की जा सकती। जिस नगरको केन्द्रितकर, किसी विशेष सभ्यताका प्रादुर्भाव होता है, उसके पतनके साथ ही उसकी भी मृत्यु हो जाती है। प्राचीन यूनान, रोम, मिश्र, मोहेञ्जोदारो आदिकी सभ्यता इसी प्रकारकी थी। ग्राममुखी सभ्यताके साथ देशके जनसाधारणका आत्मीय सम्बन्ध होनेके फलस्वरूप, किसी विशेष नगरके नष्ट होनेपर भी, उस विशेष सभ्यताका अस्तित्व लोप नहीं होता। ग्राम उसके प्रवाहकी रक्षा करते रहते हैं और उपयुक्त समय आनेपर पुनः वह सभ्यता विकसित हो उठती है। हमारी प्राचीन भारतीय सभ्यता इसी श्रेणी-की थी, और इसीलिए आज भी उसका अस्तित्व नहीं मिट सका है। सुयोग और सुअवसर पाते ही हमारी ध्वंसप्राय सभ्यता पुनर्जीवित हो उठी है। परन्तु हमारी प्राचीन सभ्यताके ग्राममुखी होनेके कारण, यह बात नहीं थी कि प्राचीन हिन्दू नगरोंका निर्माण नहीं करते थे या प्राचीन युगमें भारतमें विशेष उल्लेख योग्य नगर थे ही नहीं। बहुत प्राचीन कालसे भारतमें नगरोंका अस्तित्व पाया जाता है। प्राचीन भारतके नगर हिन्दू भाव-धारा और हिन्दू संस्कृतिसे परिपुष्ट हो, अपने ऐश्वर्य और वैभवके लिए विश्व-विख्यात थे।

वैदिक युग

प्राचीन आर्योंकी जो शाखा भारतमें आकर स्थायीरूप-से बस गयी, वह मुख्यतः कृषिजीवी थी। गो-पालन एवं कृषि द्वारा ही इस शाखाके आर्य अपनी दैनिक आवश्य-कताकी वस्तुएं उत्पन्न करते थे। अतः अपने इस उद्देश्य-के अनुकूल वासस्थान चुनकर वे छोटे-छोटे दलोंमें विभक्त हो, पृथक-पृथक स्थानोंमें बसे हुए थे। इस प्रकारके कितने ही दल, जिनकी वैदिक संज्ञा गोष्ठी या व्राज थी, जहांपर एकत्र वास करते थे, उसे 'ग्राम' कहा जाता था। ऋग्वेदमें ग्राम शब्दका प्रयोग जनसमष्टिके अर्थमें हुआ है। ग्राम शब्दके प्रचलनसे ही यह बोध होता है कि प्राचीन आर्योंने खानाबदोशीकी वृत्ति परित्यागकर स्थायीरूपसे घर बनाकर रहना पसन्द किया। प्राचीन वैदिक साहित्यसे पता चलता है कि उस युगमें एक गांवसे दूसरे गांवमें जानेके लिए प्रशस्त मार्ग बने हुए थे और 'ग्रामनी' (गांवका प्रधान व्यक्ति) और वणिक शकट या घोड़ेपर सवार हो, उन मार्गोंसे आते-जाते थे। सभी मार्गोंका लक्ष्य था, राज-प्रासाद या पुर। वैदिक युगके आरम्भसे हिन्दू युगके अन्त तक ग्रामवासी ही इन मार्गोंका निर्माण और रक्षा करते थे। जिन-जिन ग्रामोंसे होकर ये मार्ग जाते थे, उनके अधिवासियोंपर ही, उनकी रक्षा और देख-भालका दायित्व रहता था।

वैदिक युगमें नगरोंका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं पाया जाता है। राजप्रासाद अथवा पुरसे ही नगरोंकी उत्पत्ति हुई है। राजा राज-कार्यके सञ्चालनकी सुविधाके लिए कुछ निर्दिष्ट राज-कर्मचारियोंको लेकर, स्वतन्त्ररूपसे जन-साधारणकी बस्तीसे पृथक रहता था। राजाका वास-स्थान अत्यन्त सुरक्षित रहता था, इसलिए उसका नाम था पुर या दुर्ग। वैदिक युगमें धनी एवं सम्भ्रान्त व्यक्ति प्रस्तर अथवा दारु-निर्मित प्रासादोंमें रहते थे। बहुत प्राचीन कालसे भारतवर्षमें दारु-निर्मित प्रासादोंका प्रचलन था। साधारण श्रेणीके लोग मिट्टीके बने घरोंमें रहते थे। उस समयके अधिकांश गृह मृत्तिका निर्मित थे। प्रत्येक गृहमें चार विभाग होते थे। (१) अग्निशाला (सम्भवतः यज्ञीय अग्निको प्रज्वलित रखनेके लिए निर्दिष्ट स्थान), (२) हविधान (यज्ञार्थ धान रखनेके लिए भाण्डार) (३) पत्नीनाम् सदन (अन्तःपुर) और (४) सदन (बैठकखाना)। प्रत्येक गृहमें अग्निहोत्रकी पवित्र अग्निको सदा प्रज्वलित रखना होता था। इसके अतिरिक्त गौ आदि पशुओंके लिए भी गृहके पास ही वास-स्थान निर्दिष्ट रहते थे। प्रत्येक गृहके दो पक्ष या खण्ड होते थे। समग्र गृहको चारों ओर प्राचीरसे घेर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गृहमें अभ्यागत और निमन्त्रित अति-थियोंकी अभ्यर्थनाके लिए भी एक विशेष स्थान नियत रहता था।

संहिता युग

मानव गृह्य सूत्रमें ग्राम, नगर और निगमका उल्लेख पाया जाता है। समय-समयपर ग्राम महाग्राममें परिणत हो जाते। जनपदवासी स्वभावतः ही क्षमता-शाली दलपति अथवा राजाके वास-स्थानके निकट ही अपने लिए वास-स्थान बनाते थे। इस प्रकार ग्राम क्रमशः महा ग्राममें परिणत हो जाता। बौधायनने नगरोंके सम्बन्धमें लिखा है कि नगरकी कलुषित धूलसे नागरिकोंके शरीर, मुख, नेत्र आदि मलिन हो जाते हैं। मनुने मनुसंहितामें लिखा है कि धन-धान्यशाली, धार्मिक बहुल, रोगादि शून्य, रमणीय, राजभक्त, कृषि और वाणिज्यादि सुलभ, जांगल देशमें वास करना हर राजाके लिए उचित है। वहां वह अनेक प्रकारके दुर्ग बनाकर वास करे। वह पहले प्रत्येक ग्रामका एक एक मुखिया, फिर प्रत्येक दस गांवका, बीस गांवका, सौ गांवका, और हजार गांवका एक एक अधिपति नियुक्त करे। गांवमें चोरी आदि किसी प्रकारका अपराध होनेसे यदि ग्रामाधिपति उसका विचार करनेमें असमर्थ हो, तो वह दश-ग्रामपतिसे निवेदन करे। इसी प्रकार यदि वह भी असमर्थ हो, तो अपने ऊपरवाले अधिपतियोंसे निवेदन करे। नगरोंका कार्य-संचालन करनेके लिए भी उच्च वंशमें उत्पन्न शूरवीर, तेजस्वी एक अध्यक्ष नियुक्त करनेकी व्यवस्था थी। नगराधिपका कार्य ग्रामाधिपोंके कार्योंका निरीक्षण करना भी था।

रामायण और महाभारत युग

रामायण और महाभारत युगमें भी, देशमें साधारणतः जहां राजा निवास करता था, वहां नगर बस जाता था। उस युगमें आर्य भारतमें सर्वत्र फैल गये थे, इसलिए देश जिस प्रकार छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त हो गया था, उसी अनुपातसे नगरोंकी संख्या भी बढ़ गयी थी। उस युगमें भी साधारण लोग ग्रामोंमें ही रहते थे। ग्रामसे आयतनमें छोटे स्थानोंको 'पल्ली' या 'घोष' कहते थे। सीमान्त प्रदेशमें स्थित ग्रामको 'प्रान्त' कहते थे। पल्लियोंमें स्वायत्त शासनकी प्रथा प्रचलित थी और राजा ही वहांका सर्वेसर्वा होता था।

इस युगके बहुतसे नगरों और पत्तनों (समुद्र तीरस्थ बन्दरगाहों) का विवरण मिलता है। इसी समयसे शक्तिसम्पन्न आर्योंने भारतके भीतरी प्रदेशोंमें अभियान कर नये-नये राज्यों और नगरोंका निर्माण आरम्भ किया। इस युगके बहुतसे नगरोंके नाम और उनके वैभवका विवरण
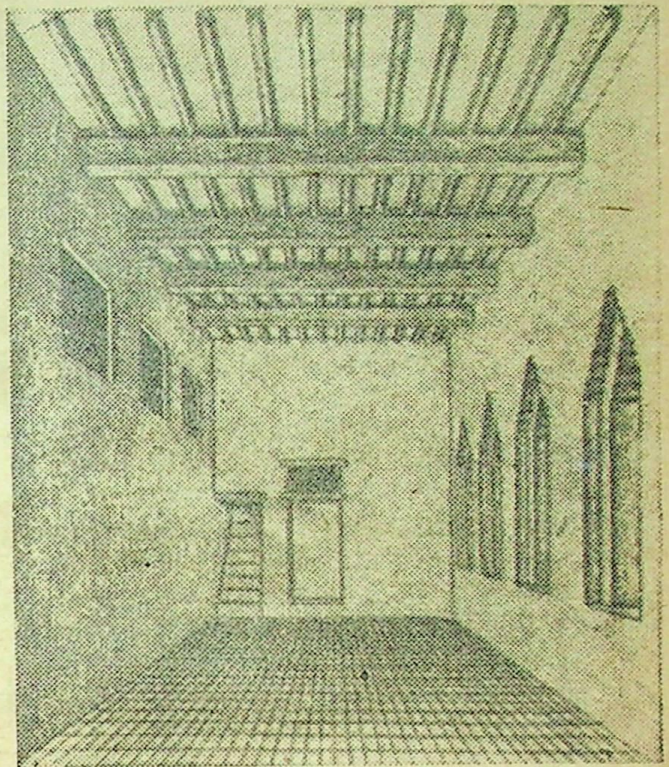
मोहेञ्जोदारोके एक कक्षका भीतरी भाग।

मिलता है, पर अभी तक यह निश्चय नहीं हो सका कि उनकी गठन-प्रणाली कैसी थी। फिर भी अनुमान किया जाता है कि पूर्व कालमें नगर-निर्माणकी जो प्रणाली थी, उससे कुछ उन्नततर प्रणालीसे इस युगके नगरोंका गठन किया गया था। रामायण युगमें निम्नलिखित नगरोंने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी—अयोध्या, मिथिला, शृङ्गवेरपुर पम्पा, मधुरा (मथुरा) किष्किन्धा, लङ्का आदि ; महाभारत युगमें भी अनेक समृद्धिसम्पन्न नगरों और राज्योंके नाम पाये जाते हैं। वस्तुतः अधिकांश नगरोंके नामपर ही वहांके राज्योंके नाम थे। उदाहरणार्थ--पाञ्चाल राज्य और पाञ्चाल नगर (राजा, जरासन्धका पुत्र सहदेव) कोशल, प्रागज्योतिषपुर (वर्तमान आसाम, कामाक्ष्या या गौहाटी इसकी राजधानी थी और उसका नाम था प्राग ज्योतिषपुर) गन्धार (वर्तमान रावलपिंडी और पेशावर, गान्धारीकी जन्मभूमि) मद्र (मद्रसे साधारणतः वर्तमान मद्रासका बोध होता है, किन्तु महाभारत युगमें मद्रदेश, मध्य पंजाबमें स्थित था। वहांके राजाका नाम था शल्य। जन्मेजयकी माता मद्रावती इसी देशकी राजकुमारी थी) इस युगके निम्नलिखित नगर विशेष प्रसिद्ध थे

एक प्राचीन नगरका बहिर्भाग ।

चारों वर्णोंके वासस्थलके मध्यमें राजप्रासाद निर्मित होता था। राजप्रासादके उत्तर पूर्वमें राजगुरु, पुरोहित और मन्त्रियोंके वासस्थान रहते थे, जलकी दीर्घिका भी रहती। राजाकी पाकशाला, हस्ती और अश्वशाला तथा भाण्डार-गृह पूर्व दक्षिणमें रहते थे। पूर्वकी ओर वणिक, शिल्पी तथा क्षत्रियोंके घर रहते थे। धनागार, आय-व्ययका हिसाब-घर और नाना प्रकारके कार-खाने दक्षिण पूर्वकी ओर रहते थे। शस्त्रागार पश्चिममें रहता था। दक्षिणकी ओर नगराध्यक्ष, वाणिज्याध्यक्ष, कर्मशालाध्यक्ष, सैन्याध्यक्ष, मद्य-व्यवसायी, अन्न-विक्रेता, गणिका-गायक सम्प्रदाय और वैश्य रहते थे। दक्षिण पश्चिममें गर्दभशाला और उष्ट्रशाला रहती थी और पश्चिम उत्तरमें यान,वाहनोंके लिए निर्दिष्ट स्थान थे। पश्चिममें तन्तुवाय, चर्मकार, अस्त्र और वर्म प्रस्तुतकर्त्ता और शूद्र वास करते थे। उत्तर-पश्चिममें चिकित्सालय और दूकानें रहती थीं। उत्तर पूर्वमें धनागार,अश्वशाला,गोशाला और उत्तरमें लौहकार, स्वर्ण-कार और ब्राह्मणोंके निवासस्थान थे। प्रत्येक दस घर-के पीछे एक कुआं रहता था। नगरके मध्यभागमें देवालय रहता था। उस युगमें जयन्त, वैजयन्त, शिव (महाकाल) वैश्रवण और अश्विनी कुमारद्वय आदि देवोंकी पूजा होती थी। श्री मदिर गृहम् (पवित्र मद्यशाला) भी नगरके मध्य भागमें रहता था। दिकपालोंके लिए भी उपयुक्त मन्दिर बने हुए रहते। उत्तर अथवा पूर्वमें श्मशानके लिए स्थान नियत रहता था। उच्च वर्णोंके लिए नगरके दक्षिण ओर श्मशान रहता था। चाण्डालों और अनार्योंके श्मशान पास ही पास रहते थे। नगरके आभ्यन्तरीन कार्योंका सञ्चालन करने तथा नगर-निवासियोंकी सुविधा-असुविधा की देख-भाल करनेके लिए नगराध्यक्ष नियुक्त रहता था। उसका काम यह भी देखना था कि नगरमें कहीं कोई राज्य विरोधी कार्रवाई तो नहीं हो रही है। उसे 'नागरक' कहते थे। नगरके किसी दातव्य प्रतिष्ठानमें यदि बाहरसे कोई

—हस्तिनापुर, वारणावत, काम्बिला, खाण्डव वन, (बाद-को इन्द्रप्रस्थ), विराटनगर, ताम्रलिप्ति, प्राग्ज्योतिपपुर, एकचक्रा, सिन्धुसौवीर, उशीनर, कौशाम्बी, कोशल (साकेत) वाराणसी (काशी), द्वारका, मथुरा, माहिष्मती, चम्पा, अंग, अवन्ती, त्रिगर्त, शिवि, और विदेह ।

बौद्ध युग और कौटिल्यका अर्थशास्त्र

कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें तत्कालीन नगरोंके सम्बन्धमें जैसा सुन्दर वर्णन है, वैसा और किसी ग्रन्थमें नहीं है। कौटिल्यने एक भी त्रुटि न रख नगरोंका सर्वांग विवरण दिया है। उनके दिये हुए विवरणसे ज्ञात होता है कि उस समयके नगर कितने निरापद और नागरिकोंकी सभी तरह की सुविधाओंसे पूर्ण थे। कौटिल्यके अर्थ शास्त्रसे ज्ञात होता है कि राजा जनबहुल स्थानोंसे उपयुक्त संख्यामें लोगोंको अन्य स्थानोंमें भेजकर नये स्थानोंमें अथवा प्राचीन नगरोंके ध्वंसावशेषोंपर नये नगरोंका निर्माण कराते थे। शकट, रथ आदिके चलनेके लिए प्रस्तर निर्मित मार्ग बनाये जाते थे। ये सब मार्ग, स्थानीय दुर्ग, जनपद, और गोचर भूमिकी ओर जाते थे। इनकी चौड़ाई चार दंड या २४ फुट होती थी। जो मार्ग श्मशान, व्यूह (सैन्यावास), ग्रामों आदिकी ओर जाते थे, उनका विस्तार ४२ फुट होता था। इनके अतिरिक्त गाय, बैल आदि पशुओंके चलनेके लिए विभिन्न मापके मार्ग होते थे।

अनार्य या भ्रमणकारी आकर ठहरता, तो नागरकको इसकी सूचना राजद्वारपर पहुंचानी पड़ती थी। यदि कोई शिल्पी अथवा वणिक भी आता, तो इसकी सूचना राजाको देनी पड़ती थी। गणिका और अन्न-विक्रेता अपने परिचित व्यक्तियोंके अतिरिक्त और किसीको अपने यहां आश्रय नहीं दे सकते थे। प्रत्येक मार्गमें जगह-जगह जलपूर्ण पात्र रखे रहते थे। मार्गको गन्दा करनेवालेको दण्ड दिया जाता था। तीर्थस्थान अथवा पीनेके जलाशयके पास जान-बूझकर मलत्याग करनेवालोंको राजनियमके अनुसार दण्ड दिया जाता था। नगरमें यदि कोई घरमें शव पड़ा रखता तो उसे दण्ड दिया जाता था। प्रत्येक शवको नियत फाटक या मार्गसे श्मशान भूमिमें ले जाकर उसका दाह किया जाता था।

नगरका एक सार्वजनिक स्नानागार।

नागरिक जीवन

प्राचीन भारतके नागरिक जीवनके सम्बन्धमें वात्स्यायन प्रणीत कामसूत्रमें विशद वर्णन है। उसमें लिखा है कि प्रत्येक सम्भ्रान्त नगर-निवासीका गृह दो भागोंमें विभक्त रहता था, एक बहिर्भाग, दूसरा अन्तःपुर। गृह-स्वामी, अभ्यागत, आगन्तुक और परिवारके पुरुष सदस्य दिनमें बहिर्भागमें रहते थे। उसमें ही घरका बाहरी काम-काज होता था। प्रत्येक गृहके सामने एक पुष्पोद्यान और पीछेकी ओर गृहस्वामिनीकी देख-रेखमें शाक-सब्जीका उद्यान रहता था। घरकी दीवारें अनेक सुन्दर रंगोंसे रंगी रहती थीं। अन्तःपुरमें भद्र महिलाओंके अतिरिक्त और किसीको प्रवेश करनेका अधिकार नहीं था। गृह-स्वामिनी घरकी सफाईका भार अपने ऊपर लेती थीं। प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या समय दैनिक यज्ञोंके अनुष्ठानकी ओर भी उन्हींका विशेष ध्यान रहता था। उन्हींकी आज्ञासे दान दिया जाता और देवताके लिए उचित वस्तुओंका उत्सर्ग किया जाता था। वात्स्यायनके समयमें अट्टालिकाओंका प्रचलन था। अट्टालिकाकी छतपर अथवा बरामदेमें नागरिक अपनी पत्नीके साथ ज्योत्स्नाका आनन्द लेते और नक्षत्रोंकी गतिविधि देखते थे। ग्रीष्मकालमें आश्रय लेनेके लिए भू-गर्भस्थ गृह बने हुए थे। नागरिक प्रातःकाल बिस्तरेसे उठकर मुंह हाथ धो अपना नित्य-कर्म करते। पहले अपने शरीरमें थोड़ा चन्दन लेपकर सुगन्धसे अपने वस्त्रोंको सुरभित करते। उसके बाद गलेमें सुगन्धित पुष्प माला पहन आंखोंमें काजल लगाते। ताम्बूल चर्वणसे अपने ओठोंको रक्तवर्ण करते। बालोंमें उत्तम सुगन्धित केश तैल लगा वे पूर्व सुरभित वस्त्र पहनते। तत्पश्चात अपना काम-काज करनेके बाद नागरिक अपने शरीरमें उत्तम तैल मर्दन करते। मेगास्थनीजने लिखा है कि चन्द्रगुप्त गोलाकार काष्ठदण्ड द्वारा अपनी देहकी मार्जना कराते थे। प्रति तीन दिनके अन्तरसे नागरिक अपने शरीरमें फेनका (साबुन) लगाते थे। देहमें साबुन लगानेवाले एक प्रकारके पेशेवर प्रसाधक थे। ये पीठपर प्रसाधन द्रव्य लेकर चलते थे, इसलिए इनको 'पीठ मर्दक' कहते थे। नगर-निवासी चार दिनके अन्तरसे हजामत बनवाते थे। उनकी हस्तांगुलियोंके नाखून यत्नसे सुरुचिरूपमें काटे जाते थे। वे दिन-रातमें केवल दो बार भोजन करते थे। सवेरे शाम जलपान करनेका विशेष प्रबन्ध रहता था। भोज्य पदार्थोंमें गुड़, शर्करा और नाना प्रकारके मिष्ठान्नोंका बहुल प्रचलन था। प्राचीन संस्कृत नाट्य-साहित्यमें मोदकका विशेष उल्लेख पाया जाता है। मध्याह्नका भोजन करनेके बाद नागरिक लोग विदूषकों और मित्रोंसे वार्तालापकर मनोविनोद करते अथवा कबूतर, तितिर या मेढ़ोंकी लड़ाई देखते थे। प्राचीन यूनानी लेखक, क्लिटार्चने तत्कालीन भारतीय नागरिकोंके आमोद-प्रमोद और क्रीड़ादिका विशद वर्णन किया है।
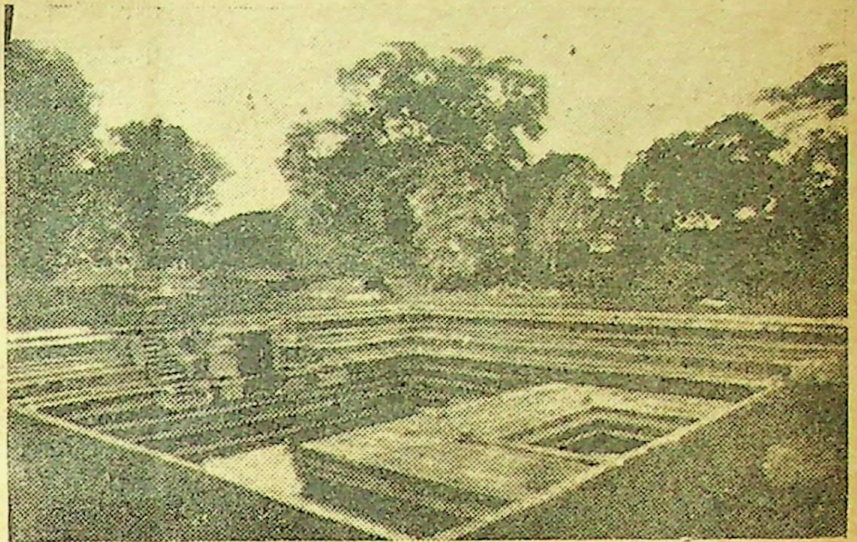
वर्तमान समयमें सभ्य समाजमें जिस तरह क्लब हैं,
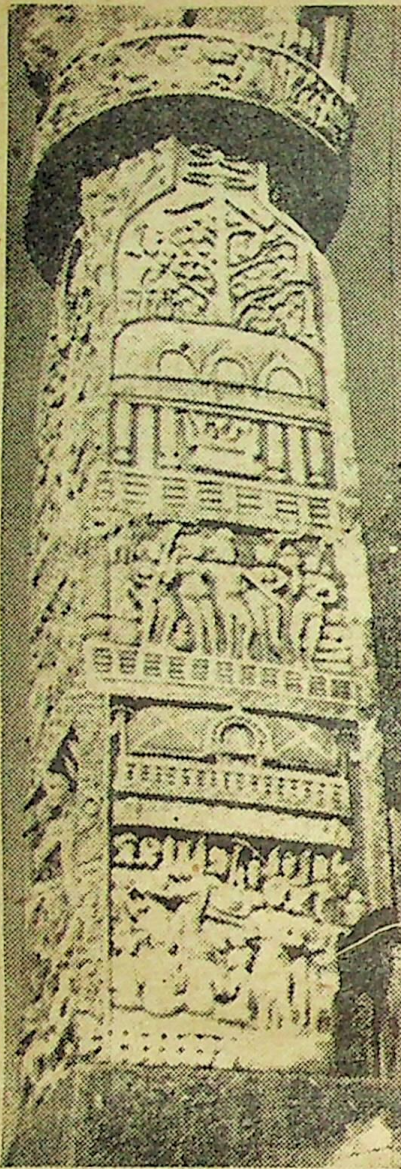
सांचीका एक द्वार-स्तम्भ।

प्राचीन हिन्दुओंमें उसी तरहके मिलन-केन्द्र थे, जिन्हें 'गोष्ठी' कहते थे। डा० एफ० डब्ल्यू टामसने अपने 'केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया' नामक ग्रन्थमें इस प्रकारके अनेक मिलन-केन्द्रोंका वर्णन किया है। अपराह्नमें यथायोग्य वेश-भूषासे सुसज्जित हो नागरिक लोग इन मिलन-केन्द्रों-में एकत्र होते। वहां साहित्य-चर्चा होती और कभी-कभी उत्सव भी होते रहते। इस प्रकारके उत्सवोंमें खाने-पीनेका भी प्रचुर आयोजन होता था। नगरकी सम्भ्रान्त गणिकायें भी इन उत्सवोंमें सम्मिलत हो अपने मधुर संगीतसे नाग-रिकोंका मनोरंजन करतीं। गोष्ठीसे लौट आनेपर रातमें नागरिक अपने-अपने घरमें गीत-वाद्य करते। उसके बाद भोजनकर अपनी पत्नीसे मिलते। इस प्रकार उनकी दैनिक जीवन-यात्रा आनन्दसे चलती रहती।

प्राचीन भारतके नगरोंके सम्बन्धमें कुछ लिखते समय महेञ्जोदारो और हरप्पाकी कुछ चर्चा न करनेसे लेख अधूरा रह जायेगा। सर जान मार्शलने अपने 'महेञ्जोदारो एण्ड इण्डस वेली सिविलिजेशन' नामक ग्रन्थमें दो भागोंमें महेञ्जोदारो और हरप्पाका विशेष वर्णन किया है। वर्तमान सिन्ध प्रान्तके लरकाना अंचलमें प्राचीन महेञ्जोदारोकी खोदाईमें पायी गयी प्राचीन वस्तुओंसे प्रमाणित होता है कि वहांकी सभ्यता ईसा मसीहसे तीन-चार हजार वर्ष पहले विद्यमान थी। मार्शलके मतानुसार महेञ्जोदारो और हरप्पाकी सभ्यता मिश्र और मेसोपोटामियाकी सभ्यतासे उन्नत थी। यह सभ्यता प्राचीन रोम और ग्रीक सभ्यताके समान नगरमुखी सभ्यता थी। प्राचीन भारतीय सभ्यता ग्राममुखी थी। यही दोनों सभ्यताओंमें प्रभेद है। महेञ्जो-दारोमें कुल सात स्तरके नगरोंका अनुसंधान किया गया है। उनमें एक प्राचीनतम युगका, तीन मध्ययुगके और शेष तीन अपेक्षाकृत आधुनिक युगके हैं। प्राचीनतम नगरके निर्मित होनेके कुछ ही दिन बाद किसी प्राकृतिक उपद्रवके परिणामस्वरूप, सारा नगर भूगर्भसे उठी मिट्टीमें दब गया। तब नगरके अधिवासियोंने प्राचीन नगरके भग्नावशेषपर नया नगर निर्माण किया। वह नगर भी इसी प्रकार काल-क्रमसे विनष्ट हो मिट्टीमें मिल गया। उसीके ऊपर फिर नया नगर निर्मित हुआ। बादको किसी कारणसे नगर-निवासियोंने वहां बसना उचित न समझ वहांसे कुछ दूर हट कर हरप्पामें इसी सभ्यताकी पुनः नींव डाली। महेञ्जोदारो-की सभ्यता क्यों विनष्ट हो गयी, यह आज भी इतिहास कारोंके लिए अनुसंधानका विषय है। इस नगरका पुन-र्गठन विभिन्न समयमें विभिन्न प्रणालीसे हुआ था। मध्य युगके अनेक गृह और नगरीका अधिकांश आविष्कृत हुआ है, पर आदि नगर अभी भी अनाविष्कृत अवस्थामें पड़ा हुआ है। कलकत्तेके म्यूजियममें महेञ्जुदारोकी खोदाई-से निकली बहुत सी वस्तुएं संग्रहीत हैं।

महेञ्जोदारोकी सड़कों और गलियोंका निर्माण सुश्रृङ्खलाके साथ हुआ था। सड़कें चौड़ी थीं और मकान प्रायः सड़कोंके ऊपर ही बने हुए थे। गलियोंका आरम्भका हिस्सा तंग होता था, पर वह क्रमशः चौड़ी होती थीं, प्रत्येक सड़कके पास ही वर्षाका पानी बहनेके लिये मोरियां बनी हुई थीं। इन मोरियोंसे नगरके मकानोंकी

मोरियां आकर मिली थीं। कूड़ा फेंकनेके लिए सड़कोंपर जगह-जगह बड़े-बड़े पात्र रखे हुए थे, जो भर जानेपर हटा लिये जाते थे और उनका कूड़ा नगरके बाहर ले जाकर फेंका जाता था। उस नगरमें सर्वसाधारणके स्नान करनेके लिए एक स्नानागार भी मिला है। उसकी गठन-प्रणालीकी आधुनिक युगके किसी भी स्नानागारकी गठन प्रणालीसे तुलना की जा सकती है। एक और स्नानागार मिला है, जिसके पानीको गर्म करनेकी व्यवस्था थी। मार्शल इसे हमाम कहते हैं। मोहेञ्जोदारोके नागरिक बैलोंसे चलाये जानेवाले वाहनोंका व्यवहार करते थे। सोना, चांदी, तांबा, हस्तिदन्त आदिका भी व्यवहार वे जानते थे, पर सम्भवतः वे लोहेका व्यवहार करना नहीं जानते थे। वहां आगमें तपायी हुई ईंटोंसे बने अनेक मकान पाये गये हैं। सम्भवतः नगरमें मन्दिर और समाधि-स्थान भी थे, पर अभी तक उनका आविष्कार नहीं हुआ है। मोहेञ्जोदारोके नागरिकोंके धर्मको देखनेसे वह इतना अधिक भारतीय प्रतीत होता है कि उसमें और हिन्दू-धर्ममें विशेष पार्थक्य नहीं दृष्टिगोचर होता। एक स्थानपर बहुतसे चरखे पाये गये हैं, जिससे यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन नागरिक ऊन और कपासका व्यवहार करते थे। स्त्रियां और पुरुष अनेक प्रकारके अलङ्कार धारण करते थे।

वस्तुतः मोहेञ्जोदारोकी सभ्यता इतनी विशाल और विस्मयकर है कि इस छोटेसे निबन्धमें उसका विस्तृत वर्णन करना सम्भव नहीं है। भारतके प्राचीन नगरोंके सम्बन्धमें ऊपर जो संक्षेपमें बतलाया गया है, उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतीय सभ्यता नगरमुखी न होनेपर भी भारतवासी नगर-निर्माण और नगरोंके उन्नति-साधन तथा श्रीवर्द्धनमें किसीसे पीछे नहीं थे। हमारे प्राचीन नगर आजके नगरोंसे कम सुन्दर और समृद्धिशाली नहीं थे।

हीरोइन

श्री रामसरन शर्मा

कहानीका आरम्भ तीन साल पहलेसे है।

उस दिन रातको हाथमें एटेची लेकर मैं हवड़ा उतरा था। बाहर निकलकर देखा, विशाल कलकत्ता नगर जगमगा रहा है। मुझ-सा उदासीन, अपनेमें आकर्षित, मानों शहरकी सुन्दरी वेश्याके सामने एक फटेहाल मनुष्य प्रेमकी भीख मांगने आया हो।

मैं कुछ सहम गया। मनमें आया, वापिस भाग चलो। कलकत्ता आनेसे पहले ट्रेनसे झांककर काली रातमें बामर लारीकी लाल-लाल आंखें चमकती देखकर ही भय लगा था। पर ट्रेन निधड़क चलती रही।

और मैं हवड़ा स्टेशनसे बाहर निकलकर अपने डूबते मनको सम्हालकर आगे बढ़ा—कलकत्तेमें खो जानेकी हिम्मत करके।

तब ब्लेकआउट नहीं था। कलकत्ता रातको प्रकाश करके अपने यौवन-मदमें इतराया करता था। बार और रेस्ट्रां भरे रहते थे, सोनागाछी भी रूपसे लदी पड़ी थी, फुटपाथपर भिखमंगे थे, साड़ियोंमें लिपटा रूप था—कलकत्तेमें सब कुछ था।

रास्तेकी थकन और सफरसे बदन टूट रहा था और मकानोंके उस झुण्डमें मेरे मित्र कौन-से कोनेमें होंगे, यह पता लगाना असम्भव लग रहा था। पर दो-चार बार टकरानेके बाद वह मिल गये।

मैं धमसे पलंगपर पड़ गया।

"कैसी तबियत है ?" उन्होंने पूछा

"बदन टूट रहा है।"

वह हंस पड़े।

"बदन टूटनेका इलाज पास ही है, रेस्ट्रांमें।"

दूसरे ही दिन। पड़ोसके एक बाबू मेरे मित्रके मित्र थे। बंगाली भद्रलोक सम्प्रदायके सदस्य। पचाससे सौ तकके बीच तनख्वाह, पूरा परिवार—वही सब कुछ जो इन सफेद कपड़े पहननेवालोंका होता है। इनसे परिचय हुआ।

फिर दूसरे दिन मुझे मन-ही-मन कहना पड़ा—धन्य भाग्य जो उनसे परिचय हुआ। कारण, आफिस जानेसे पहले उन्होंने अपनी पुत्रीसे परिचय कराया। नाम था मृणालिनी। रङ्ग खूब दूध पड़ी चाय-सा सुन्दर। आंखें वही बङ्गालिनों-सी मोहक। रङ्गीन, सूती साड़ीमें मण्डित यौवनकी राहमें बढ़ती नारी।

"मृणालिनी हिन्दी समझ लेती है", पिताने कहा "कहानियोंसे बड़ा प्रेम है।"

मैंने हाथ जोड़कर नमस्ते किया। मृणालिनीके पतले-पतले हाथ उठकर मुड़ गये।

पिता चले गये। मेरे मित्र भी चले गये। फ्लैटमें मैं अकेला ही रह गया।

कुछ देर चित्तरञ्जन एवेन्यूको देखा, सामनेकी ऊंची बिल्डिङ्गपर निगाह जमायी; फिर लौटकर आरामकुर्सीपर पड़ गया। मित्र अविवाहित थे, इस कारण फ्लैटका मालिक इस समय मैं ही था।

आंख मूंदकर सोचने लगा, कहानीका प्लाट। मृणालिनी हीरोइन बन रही थी, अपने जुड़ते हाथोंको उठाये, अपनी आंखोंमें भद्रलोक सम्प्रदायकी शिष्टता और संयतता लिये हुए।

सहसा आंख खोलकर देखा—मृणालिनी द्वारमें खड़ी थी।

"आइये," मैंने चौंककर कहा।

वह मंथर गतिसे आ गयी।

"बैठिये।"

वह बैठ गयी।

अब? मैं चुप। क्या कहूं—यह सोच ही रहा था कि उसने धीरेसे कहा—"आपके सोचनेमें व्याघात तो नहीं हुआ?"

"न, न आपके आनेसे व्याघात कैसा?" मैंने उतावलीसे कहा।

"बात यह है," उसने अटककर मुखको लज्जासे लाल करके कहा, 'मैं आपकी कहानी सुनना......

"सुनना।" मैंने चौंककर कहा।

वह और भी लजा गयी—"जी मैं हिन्दी पढ़ नहीं सकती।"

दोपहर भर मैं उसे अपनी रचनाएं सुनाता रहा; वह सुनती रही। फ्लैटके बाहर कलकत्ता अपने काममे लगा रहा। हम उसे भूलकर स्वयंमें खोये थे।

शामको—

मित्रने कहा, "चलो घूम आयें।"

"कहां?"

वह हंस पड़े। "कहीं, जहां कहानियोंकी हीरोइन टके सेर मिलती हैं। जहां रूप और रोमान्स बिकता है।"

मैं हिचकिचाया। शायद हीरोइनकी आवश्यकता अब नहीं थी, इस कारण।

पर वे मुझे ले ही गये।

जगमगाते कलकत्तेकी सड़कपर होकर हम पहुंचे सोनागाछी।

सोनागाछीमें पहुंचे नीरजाके पास।

नीरजा?—

हां, जाड़ेके बादल-सा रंग और बरसातकी घटा-सा विषाद मुखपर बिखराये वह नारी, जिसकी मुस्कान देखकर आंसुओंका भ्रम होने लगता था।

नीरजा हिन्दुस्तानी नहींके बराबर जानती थी। पर उस अटपटी भाषामें कितना आनन्द था, यह कहनेकी बात नहीं।

परिचय हुआ। मैंने देखा नीरजा मेरे पेशेकी बात सुनकर श्रद्धा और भक्तिसे भर उठी। न जाने क्यों? शायद बंगालकी नारी श्रद्धा, भक्ति और भावनाओंकी पुतली होती है।

नीरजाने अटककर पूछा, "क्या पीजियेगा?"

मैं चुप। फिर साहस बटोर कर कहा, "कुछ नहीं।"

नीरजाका मुख उतर गया। न जाने कैसी एक भूख-सी उसपर झलक आयी।

"पर मैं तो पिऊंगी" उसने कहा।

"क्यों?"

उसने कराहकर कहा, "आमी दारू नाहीं खावे, आमी मोरि जावे।"

(कह नहीं सकता, यह विशुद्ध बंगाली है या नहीं, पर यह वाक्य मेरे हृदयपर अंकित है।)

"तब पियो," मैंने कहा।

मित्र केवल हंस दिये। हीरोइन कैसी है, उन्होंने पूछा। फिर नीरजाकी ओर देख कर कहा, "तुम्हें यह एक कथा की हीरोइन बनायेंगे।"

नीरजाने—जी हां—हाथ जोड़कर सर झुका दिया। ओफ!

धीरे धीरे नीरजाका विषाद मिटने लगा। कमरेका प्रकाश और भी उज्ज्वल हो गया। सिगरेटका धुंवा, हंसी, गप......कलकत्ता रातकी रंगरेलियोंमें खो रहा था।

कई दिन रहना पड़ा कलकत्तेमें। उन दिनोंमें मालूम हुआ, मृणालिनीके पिताको और कोई चिन्ता न थी, उन्हें केवल अपनी मीनूके व्याहकी चिन्ता थी। मजेमें काम चल रहा था। लड़के स्कूलमें पढ़ते थे, बाद दफ्तरके बाप गप-शप करते, चाय पीते, खाना खाते और मृणालिनीके लिए बर खोजते।

सवेरे पत्रिका पढ़कर मेरे मित्रसे लड़ाई पर बहस करते, बात-चीत करते......

नीरजाको भी देखा, लड़ाईसे उसे भी दिलचस्पी थी। दारू पीकर वह सदा लड़ाईकी बात करती। कौन जीतेगा, उससे उसके किस मिलने वालेने क्या कहा था? बातोंसे छुट्टी पाती, तो हंसती, घूमने जाती......बड़ी भली नारी थी वह।

एक दिन मैं दोनोंसे विदा होकर कलकत्तेको छोड़ आया।

बात आयी और गयी।

तीन साल बीत गये।

तीन लम्बे-लम्बे साल।

कलकत्ता अखबारोंके प्रथम-पृष्ठपर जम कर रह गया। हवाई-हमलेके कारण नहीं, न राजनीतिके कारण ही, भूख और मौतने कलकत्तेको, बंगालको, देशको थर्रा दिया।

मौत, बीमारी, लूट, खसोट—

मैं कलकत्ता चल पड़ा। यों ही, देखनेके लिए।

रास्ते भर सोचता रहा—नीरजा, मृणालिनी।

पर कलकत्ता पहुंच कर धक-से रह गया। मनहूस, विषादका मूर्तिमान रूप—कलकत्ता। बेरौनक, उजड़ा सा, मानों मर रहा हो।

सड़कपर आदमी थे, मोटरें थीं, पर सब कुछ असत्य-से, मानों जीवनसे इनका सम्पर्क ही न हो।

जहां-तहां दूकानोंके आगे भीड़-भाड़। फुटपाथ पर—ओह! मैं कांप गया! नर कंकाल, भूख और यातनासे जान दे रहे प्राणी। उनसे बचकर निकल सकना कठिन था।

कलकत्तेमें काल पड़ रहा था। चित्तरंजन एवेन्यू तक जाते-जाते देखे, एम्बुलेन्स और लाशें।

मन कांपने लगा, पैर कांपने लगे।

धक-धक करते कलेजेसे सीढ़ियां चढ़ने लगा, अंधेरेमें टटोल कर...उस झुटपुटेमें देखा एक फ्लैटसे निकलकर एक नारी मूर्ति चुपचाप आगे बढ़ गयी। बढ़कर मृणालिनीके फ्लैटमें चली गयी।

"मृणालिनी"—मैंने धीरेसे पुकारा।

वह रुक गयी। मीनू ही थी।

मैंने देखा, सफेद मुख, बिखरे बाल। माथेपर पसीनेकी बूंदें।

"अच्छी तो हो?" मैंने पूछा।

"हां।" और फिर रुक कर बोली, "आप कब आये?"

मेरे उत्तर देनेसे पहिले उसके पिता अन्दरसे निकले। देखकर डर गया। कंकाल-मात्र वह डरावना-सा पुरुष।

"मीनू" उन्होंने कहा। फिर मुझे पहिचानकर बोले, "ओह! आप।"

और हम तीनों चुप!

"आइये," सहसा मृणालिनीने कहा।

मैं खोया-सा अन्दर चला। कुछ समझमें न आ रहा था। मृणालिनीके आंचलमें क्या बंधा था। क्या? अनाज? कहांसे लायी थी?

दो मिनट बाद ही कमरेके अंधियारेमें भेद खुल गया। मृणालिनी मेरे गलेमें हाथ डालकर···

जाने दीजिये।

मृणालिनी मर गयी थी। उसका भूत मुझे सता रहा था। मुट्ठी भर रुपये उसे देकर मैं बाहर चला आया। उतावलीसे!

चला आया और—

हां, अपनी दूसरी हीरोइनको देखने चला।

बात बड़ी कष्टदायक है। फैलाकर कह सकना, मेरे वशकी बात नहीं है। आप सुन सकें तो ...पर मैं कह नहीं सकता।

अंधेरी राहमें जो देखा—वह आपने भी नित्य देखा होगा। न देखा हो, तो कल्पना कर लीजिये।

सोनागाछीमें मुड़ते ही किसी चीजमें ठोकर लगी। चौंककर रुक गया।

फुटपाथपर वह पड़ी थी। वही! झुककर सलाई जलाकर पहिचान लिया—वही थी, या कोई और भी हो सकती थी। मुझे तो वह नीरजा लगी।

जी मचलाने लगा। उस कंकाल-मात्रको पहिचान सकना असम्भव था।

कांपते शरीर मैंने रिक्शा किया और उसमें पड़कर कहा—नीमतल्ला।

नीमतल्ला!

भांय-भांय करते कलकत्तेको छोड़कर मैंने देखा, चिताएं जल रही थीं। एक, दो, तीन...

नीरजा...

मृणालिनी...

दोनों ही मर गयी थीं। एककी चिता मेरे मनमें थी, उसकी मुर्दा बांहोंका स्पर्श अब भी मुझे प्रतीत हो रहा था, उसकी मुर्दा सांस अब भी फुसफुसा रही थी।

नीरजा—आमी दारू नाहीं खावे; आमी मोरि जावे। चिताएं जल रही थीं।

मुझे चक्कर आ गया।

पूर्णिमा

लौटकर क्या आयगी फिर पूर्णिमाकी रात ?
ऐसी पूर्णिमाकी रात ?

आज मेरे प्राणमें ही भर गया आकाश !
आज कितना लग रहा है चांद मेरे पास !
चांदके मुखपर खिला है मुक्त मेरा हास !
और मुझको छू रहा है चांदका निःश्वास !
चांदनी चुपचाप आकर कर रही है बात !
कोई रस-भरी-सी बात !

व्योम है निस्तब्ध, है निःशब्द यह संसार !
वायु भी निस्पन्द, मानो हो गया लाचार।
सुन रहे हैं प्राण मेरे आज आंखें मूंद !
पी रहे हैं प्राण मेरे, चू रही जो बूंद !
देखते हैं नेत्र मेरे एकटक उस ओर,
आ रहा जिस ओरसे मेरा चतुर चितचोर !
बज रहा है एक केवल, एक केवल तार !
उठ रही मेरे हृदयसे ही मधुर झङ्कार !
गूंजती सब ओर जिसकी है सुरीली तान !
आज जैसे प्राण ही, सबमें भरे हों प्राण !
झिलमिलाते चार तारे, सिर्फ दो-ही-चार !
और उमड़ा आ रहा है ज्योति पारावार !
द्वार हैं मनके खुले, सब वृत्तियां हैं बन्द ;
आज इतना प्रेम, इतना छा रहा आनन्द !
जागता कोई न, दुनिया है पड़ी सुनसान !
मौतके उस पार जाकर मिट गया तूफान !
आज कितनी शान्ति, जीवनमें मनोरम शान्ति !
रश्मि बन बिखरी पड़ी मेरी प्रियाकी कान्ति !
चांदनीमें आज सहसा खिल उठे हैं
प्राणके जलजात मेरे
प्राणके जलजात !

क्या न यों ही चांदनी मुझको करेगी प्यार ?
चल न सकता आयु-भर क्या यह अथक अभिसार ?
सोचता हूँ मैं यही फिर आज बारम्बार,
इस विजयके अन्तमें क्या बच रहेगी हार ?
आह, कितना क्षुद्र हूं मैं ? क्षुद्र यह संसार !
मृत्युकी मेरी अमा मुझको रही ललकार—
'चार दिनकी चांदनी है, फिर अंधेरी रात !
होगी फिर अंधेरी रात !'
इस तरह तैयार जानेके लिए क्यों हो गयी तू ?
इस तरह बेहोश—बेसुध बे पिये क्यों हो गयी तू?
इस तरह मुझको अकेला छोड़ भागी आ रही क्यों ?
इस तरह हर बातपर ही तू भला झुंझला रही क्यों ?
जानता हूं, एक दिन तू जायगी ही, जायगी तू !
क्या पड़ी जल्दी, बता तू हर घड़ी घबरा रही क्यों ?
क्या समझकर कर रही तू मर्मपर आघात ?
मेरे मर्मपर आघात ?
क्या न इतना भी तुझे मेरे लिये अवकाश ?
क्या बुझा सकती न मेरी एक छोटी प्यास ?
रुक न सकती और क्या तू एक क्षण भी हाय ?
कालके सम्मुख कुटिल तू भी विवश, निरुपाय ?
देखते ही देखते कुम्हला गया क्यों गात ?
तेरा चांदनीका गात ?

जा विलासिनि, दीखता है व्योम तेरी राह !
और पूरी कर पिपासित प्राणियोंकी चाह !
देखती कब तक रहेगी, हाय मेरी ओर ?
सैकड़ों मुझसे अभागे हैं, मुझे दे छोड़ !
जा भिखारिणी, मांग अब तू जा मुझी-सा भीख !
याद रखूंगा उसे, दी आज तू ने सीख !
मैं अन्धेरी रातमें ही देख लूंगा स्वप्न ;
मैं अन्धेरी रातमें ही ढूंढ़ूंगा ज्योति,
स्वप्न वह जिसपर टिका सौन्दर्यका संसार !
ज्योति वह, जिससे छलकता प्रेम-पारावार !
जा विनोदिनि, देख, होना चाहता ही प्रात !
ज्वालामय सुनहला प्रात !

—आरसीप्रसाद सिंह ।

वर्तमान युगमें रेडियोके चमत्कार

श्री मोहनलाल

इस विज्ञान-युगमें रेडियोका आविष्कार सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण है। इसका राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवनके सभी क्षेत्रोंमें अद्भुत प्रभाव है। जर्मनी और आस्ट्रियाकी पिछली क्रान्तियोंमें सबसे पहले रेडियो ब्राडकास्टिंग स्टेशनपर ही कब्जा किया गया था। रेडियोके आविष्कारका श्रेय इटलीके सेनिटर मारकोनी-को है।

वर्तमान युद्धमें रेडियो भी अपना एक विशेष महत्व रखता है। सभी यह सिद्धान्त स्वीकार करते हैं कि युद्ध-कालमें देशकी जनताके अन्दर किसी प्रकारका व्यर्थ भय या अपनी सरकारकी सैनिक-शक्तिके प्रति किसी प्रकारका अविश्वास उत्पन्न न होने देना चाहिये। शत्रु-पक्षकी कोशिश जनताके दिलमें ठीक इसी प्रकारके भ्रम उत्पन्न करनेकी होती है। क्योंकि वह इस बातको बखूबी जानता है कि जनता यदि युद्धकी परेशानियोंसे घबरा उठेगी, तो उसका दिल अवश्य बैठ जायेगा और ऐसी हिम्मत-पस्त जनताके बलपर टिकी कोई भी सरकार बहुत दिनों तक शत्रुके मुकाबलेमें युद्धस्थलमें खड़ी नहीं रह सकती। मजबूरन उसे सन्धिके लिए शत्रुके सम्मुख घुटने टेकने पड़ेंगे।

रेडियो एक प्रकारकी बिजलीकी लहर है। जैसे जलमें लहरें पैदा होती हैं, वैसे ही हमारे बोलनेसे हवामें भी लहरें पैदा होती हैं और इन लहरों या तरङ्गोंकी सहायतासे हमारे मुखसे निकलते हुए शब्द, एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाते हैं। इस दृष्टान्तसे यह स्पष्ट समझमें आता है कि रेडियो-तरङ्गके लिए भी हवा अथवा ऐसे ही किसी तत्वका होना जरूरी है, जिसके भीतर होकर रेडियो-तरङ्ग प्रवाहित होंगी। वैज्ञानिकोंने ईथर नामके एक सर्वव्यापी पदार्थ या तत्वकी कल्पना की है। इसी ईथरके आधारपर रेडियोकी लहरें प्रवाहित होती हैं। कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि ईथर नामकी कोई वस्तु नहीं है। किन्तु आइन्स्टाइनने "ईथर और सापेक्षवाद" नामकी अपनी वक्तृतामें ईथरके अस्तित्वको अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है। साधारण बिजलीकी रोशनी या बिजलीके पंखेके लिए तारकी जरूरत होती है; लेकिन रेडियोकी लहरें तारकी सहायताके बिना ही एक जगहसे दूसरी जगह जा सकती हैं। इसीलिए रेडियोको बेतार भी कहते हैं। बिजली-का अस्तित्व पहलेसे होनेपर भी सन् १८६१ में मैक्सवेलने ही पहले-पहल बिजलीकी लहरोंका अस्तित्व हमें बतलाया था। इसके बीस साल बाद हर्ट्जने एक सिद्धान्त निकाला और उसीसे रेडियो द्वारा खबरें आदि भेजनेके उपाय निकाले गये हैं।

सन् १८७९ में को-हियरर नामके यन्त्रके मूल तथ्यका आविष्कार किया गया था। इस यन्त्रकी सहायतासे बिजलीकी लहरोंका अस्तित्व प्रमाणित किया गया। सन् १८८५ में एडिसनने रेलवे-स्टेशन और चलती हुई ट्रेनके बीच बेतारसे खबर भेजनेका एक उपाय खोज निकाला। किन्तु १८९५ में मारकोनीने ही सबसे पहले यह दिखाया कि बिजलीकी लहरोंके द्वारा खबरें भेजी जा सकती हैं। सन् १८९६ में उसने पहले पौने दो मीलके फासलेसे बिना तारकी खबरें भेजीं। इसके अगले साल उसने चार मील-की दूरीपर बिना तारकी खबरें भेजनेमें सफलता पायी। १९०१ में १२ दिसम्बरको मारकोनीने १८०० मीलकी दूरी-से 'एस' अक्षरको रेडियोके सहारे सुना। इस समय इतनी तेजीसे रेडियोकी उन्नति हुई कि सन् १९०२ में अटलाण्टिक महासागरके इस पारसे उस पार रेडियोके द्वारा खबर भेजी गयी। संक्षेपमें यही रेडियोका इतिहास है। पूर्वोक्त कई वैज्ञानिकोंके अलावा और भी कई वैज्ञानिकोंके नाम रेडियोके जन्म-वृत्तान्तके साथ लिये जाते हैं। सन् १९०६ में जनरल डानउडी और पिकार्डने यह आविष्कार किया कि कार्बोरेण्डम् स्फटिक (क्रिस्टल) और सिलीकानसे बने हुए स्फटिकके बीचसे अल्टरनेटिंग बिजली सिर्फ एकही ओर प्रवाहित होती है। प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक स्व० सर जगदीश चन्द्र बसुने भी इसी विषयका आविष्कार स्वतन्त्ररूपसे किया था। इन्हीं सब आविष्कारोंके द्वारा बिजलीको शब्दके रूपमें बदलना सम्भव हुआ। रेडियोके मूल तथ्य-को हम टेलीफोनके दृष्टान्त द्वारा सहजमें समझ सकते हैं। टेलीफोनके दो हिस्से होते हैं। एक है माइक्रोफोन, जिसे हम मुंहके सामने रखते हैं। इसी यन्त्रकी सहायतासे हम अपने शब्दको बिजलीके रूपमें बदलकर तारकी सहायतासे दूर भेजते हैं। दूसरा हिस्सा है टेलीफोन, जिसे

हम कानसे लगाते हैं। यही यन्त्र दूसरी जगहसे बिजली-के रूपमें परिणत शब्दोंको फिर उसी रूपमें हम तक पहुंचाता है।

संक्षेपमें मतलब यह है कि टेलीफोनके प्रयोगमें हम एक बार शब्दको बिजलीके रूपमें बदलते हैं और फिर वह बिजली शब्द बन जाती है। इसी तरह रेडियोमें एक ओर शब्दको बिजलीकी लहरोंका रूप दिया जाता है और दूसरी ओर बिजलीकी लहरें शब्दके रूपमें परिणत होती हैं। रेडियो और टेलीफोनमें अन्तर यही है कि टेलीफोनमें शब्दको बिजलीके रूपमें बदला जाता है, इसलिए उसमें तारकी जरूरत है ; लेकिन रेडियोमें शब्दको बिजलीकी लहरोंका रूप दिया जाता है और बिजलीकी लहरें ईथरके सहारे चलती हैं, इसलिए इसमें तारकी कोई जरूरत नहीं है। इस जगह-पर यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि बहुत दूरसे रेडियो-की जिन लहरोंको हम यन्त्रकी सहायतासे पकड़ते हैं, वे साधारणतः आकाशमें बादल वगैरहमें प्रतिफलित होकर ही—टकराकर ही—हमारे पास आती हैं। अतएव प्रधान रूपसे रेडियोमें दो चीजोंकी जरूरत है—एक खबर भेजनेवाली मशीन और दूसरी खबर लेनेवाली मशीन। पहली मशीन शब्दको रेडियोकी लहरोंके रूपमें बदलकर चारों ओर फैला देती है और दूसरी मशीन उन लहरोंको उसी शब्दके रूपमें बदल देती है। जिस जगहसे खबर भेजी जाती है, उस जगह एक हवामें स्थित तार (एरियल) में बहुकम्पन युक्त दोलायमान बिजलीकी करेण्ट पैदा की जाती है। इस बिजलीकी लहरें ईथरके सहारे चारों ओर दूर-दूर तक फैल जाती हैं। इन लहरोंको वार्तावाहक (कैरियर) लहरें कहते हैं। रेडियोकी ये लहरें जब इन लहरोंको ग्रहण करनेके लिए उपयुक्त सहध्वनित (ट्यूण्ड) वार्ताग्राहक यन्त्रके वायुमें स्थित तारपर आकर पड़ती हैं, तब इस तार-में भी वह बहुकम्पनयुक्त दोलायमान बिजलीकी करेण्ट प्रवाहित होती है। आदमी जब माइक्रोफोनके सामने बोलता है, तो उसकी बात बिजलीके रूपमें बदल जाती है। इस बिजली-को प्रेरक यन्त्रके हवामें स्थित तारकी दोलायमान बिजली-के ऊपर डाला जाता है। इससे दोलायमान बिजली-का स्पन्दन-परिमाण (एम्पालच्यूड) उस शब्द या बातके रूपमें परिवर्तित होता है। इस परिवर्तनके फलस्वरूप एक नयी लहर उत्पन्न होती है। इसे वागाश्रित लहर (मोडुलेटेड वेव्हज) कहा जा सकता है। यह वागाश्रित लहर ग्राहक यन्त्रके हवामें स्थित तारमें वैसे ही कम्पनसे युक्त दोलयमान बिजली उत्पन्न करती है। मतलब यह कि जिस शब्दके बोलनेमें जैसे और जितने कम्पन होते हैं, वैसे ही और उतने ही कम्पन वहां भी जाकर पैदा होते हैं और वैसा ही शब्द दूसरी जगह सुननेवाले-को सुनायी देता है। अगर इस बिजलीको टेलीफोनके जरिये भेजा जाय तो यह बिजली शब्दके रूपमें परिवर्तित नहीं होगी। कारण, कम्पनकी संख्या अगर फी सेकण्ड १९ से लेकर १९ हजार तक हो, तभी हम शब्दको सुन पाते हैं। रेडियोकी बिजलीके कम्पनका आवर्त १० हजारसे ३ करोड़ तक फी सेकण्ड हो सकता है। टेलीफोनमें एक पतला पर्दा (डायाफ्राम) रहता है। यह कांपता है, इसीसे हम शब्दको सुन पाते हैं। किन्तु रेडियोकी बिजली अल्टरनेटिंग (द्विरभिमुखी) होती है, और उसकी कम्पन-संख्या भी बहुत अधिक है। इसीलिए टेलीफोन-का पतला पर्दा रेडियोकी बिजलीमें एक तरहसे स्थिर ही रहेगा और कोई बात सुनायी न देगी। इसीलिए रेडियो-की बिजलीको टेलीफोनमें भेजनेके पहले एकाभिमुखी कर लेना होता है। जिस यन्त्रकी सहायतासे यह काम किया जाता है, उसे अङ्गरेजीमें डिक्टेटर कहते हैं। किसी-किसी स्फटिक का यह धर्म है कि उसके भीतरसे बिजली केवल एक ही ओर प्रवाहित होती है। इसी तरह-के एक स्फटिकका आविष्कार सर जगदीश चन्द्र वसुने किया था। कार्बोरेण्डम एक और स्फटिक है। इसका भी यही गुण है। डिक्टेटर यन्त्रके द्वारा भेजनेसे बिजली दोनों ओर अर्थात् एक बार सामने, फिर पीछे, फिर सामने—इस तरह प्रवाहित न होकर केवल एक ही ओर प्रवाहित होगी। अब हम अगर इस बिजलीको टेलीफोनके द्वारा भेजें, तो टेलीफोनका पर्दा कांप उठेगा और जिस शब्दके कारण वागाश्रित लहरकी सृष्टि हुई थी, वही शब्द हम सुन पायेंगे। यहांपर यह बता देना ठीक होगा कि लाउड-स्पीकर भी एक तरहका टेलीफोन है। अन्तर केवल इतना ही है कि टेलीफोनसे केवल एक ही आदमी बात सुन सकता है, लेकिन लाउड-स्पीकरसे एक साथ बहुतसे आदमी उसे सुनते हैं।

रेडियोकी लहरें कितनी दूर तकसे ग्रहण की जा सकती हैं, इस प्रश्नका उत्तर नीचे लिखी बातोंपर निर्भर करता है—ऋतु, दिन या रात, आकाशकी अवस्था, हवामें जो लकड़ियोंपर तार लगाया जाता है उसकी अवस्थिति, रेडियोकी भेजनेवाली मशीनकी

ताकत, ग्रहण करनेवाली मशीनकी सूक्ष्मग्राहिता और परिचालककी निपुणता। गर्मियोंमें आकाशकी अवस्था बेतारकी खबर लेनेके लिए बहुत अच्छी या उपयोगी नहीं होती। दिनकी अपेक्षा रातको ही बेतारका शब्द अधिक स्पष्ट और बहुत दूर तक सुना जा सकता है। लेकिन यह भी ठीक है कि रातको भी रेडियोकी शक्ति सर्वदा समान नहीं रहती। भेजनेवाली और ग्रहण करनेवाली मशीनके बीच-के स्थानकी प्रकृतिके ऊपर भी रेडियोकी आवाजका साफ और दूर तक सुनायी देना बहुत कुछ निर्भर करता है। कारण, ऐसे भी स्थान हैं, जिनके प्रेरक-यन्त्रके निकटवर्ती होनेपर भी, वहां कोई रेडियोकी लहर नहीं पहुंचती। ऐसा शायद भूगोल अथवा आकाशकी अवस्था या जमीनकी सतहके गठनके कारण ही होता है। रेडियोकी लहर स्थल-की अपेक्षा जलके ऊपर बहुत अच्छी तरह प्रवाहित होती है। यद्यपि यह निश्चित रूपसे नहीं बतलाया जा सकता कि रेडियोकी लहरें कितनी दूर तक पकड़ी जा सकती हैं, तथापि यह कहा जा सकता है कि सौ मीलके अन्दर सब समय बेतारकी खबरें प्राप्त की जा सकती हैं। मगर गर्मियों-के मध्य भागमें दो-एक सप्ताह इसमें व्यतिक्रम भी हो सकता है। ९०० मीलकी दूरीके स्थानसे सालके नौ-दस महीनोंमें शामको बेतारकी खबरें जरूर सुनायी पड़ेंगी। २००० मीलकी दूरीके स्थानमें सर्दियोंके मध्य भागमें आधी रातको कुछ समय तक रेडियोकी खबर अवश्य सुनायी देगी। २००० मीलके ऊपर सर्दियोंके मध्य भागमें कई सप्ताह ऐसे होते हैं, जब आधी रातको घण्टे-दो-घण्टेके लिए रेडियोकी खबरें जरूर सुनायी देती हैं। लेकिन इस हिसाबमें कभी-कभी गड़बड़ी भी हो सकती है।

रेडियोका व्यवहार सबसे पहले जहाजपर किया जाता था। समुद्र-यात्रामें आब-हवा, दिशाओंका निर्णय, स्थान-का निर्देश कितना जरूरी होता है, यह सभी जानते हैं। ये सब काम पहले भी रेडियोकी सहायतासे होते थे और अब भी होते हैं। सन् १८९७ में मारकोनीने एक जहाजसे १० मीलकी दूरीपर, किनारेपर, बेतारकी खबर भेजी थी। क्रमशः रेडियोकी मशीनोंकी उन्नतिके साथ-साथ १०००० मील तक अब खबर भेजी जाने लगी है। लेकिन इसमें भी विस्मयकी कोई बात नहीं है। १९१० में एक जङ्गी जहाजने दिनको ४००० मील और रातको लगभग ७००० मील दूरके स्थानसे रेडियोकी खबर प्राप्त की थी। १९१३ में कोल्स्टर साहबने सबसे पहले गवर्नमेण्टको यह सूचना दी थी कि लाइट हाउस, लाइटशिप और जीवन-रक्षक स्टेशनोंमें रेडियोका व्यवहार हो सकता है। १९२४ में स्काटलैण्डके एक द्वीपमें एक बेतार-युक्त लाइट हाउस खोला गया। रेडियोकी लहरें प्रतिफलक (रेफ-लेक्टर) की सहायतासे एक किरण-समष्टि (बीम) के रूपमें बदलकर एक सौ मील तक भेजी जाती हैं। इनकी सहायतासे जहाजोंके कप्तान कोहरेमें भी स्थान और दिशाका निर्णय कर सकते हैं। जैसे समुद्रमें जहाजपर, वैसे ही आकाशमें वायुयानपर भी रेडियो बहुत काम आता है। आजकल चलते हुए हवाई जहाजसे नीचे पृथ्वीपरके मनुष्य-से बातचीत की जाती है। जल और आकाशके अलावा स्थलमें भी, जहां और सब उपायोंसे बातचीत करनेकी सुविधा नहीं है, वहां रेडियो इस काममें सुविधाजनक होता है। आज कल युक्तराष्ट्र अमेरिकामें खबरोंका आदान-प्रदान रेडियोकी सहायतासे ही होता है। महा-सागरके एक किनारेसे दूसरे किनारेपर रेडियोकी सहा-यतासे ही खबरें भेजी जाती हैं, बात-चीत की जाती है। रेडियोसे बातचीत करनेमें प्रधान असुविधा यह है कि उस बातचीतको हर एक स्थानके आदमी अपने ग्राहक-यन्त्रसे सुन सकते हैं, जिससे कोई बात छिपी नहीं रह सकती। इस असुविधाको दूर करनेके लिए भी कई उपायोंका आ-विष्कार किया गया है, जैसे गाइडेड वेव्ह टेलीफोन, केरियर फ्रीकोविन्सी और ओवर रेडियो टेलीफोनी। इन उपायोंसे तारकी सहायतासे दो स्थानोंके बीच रेडियोकी लहरें भेजी जाती हैं। कुछ ऐसे उपाय निकाले गये हैं, जिनसे एक ही समयमें विभिन्न तारोंके द्वारा विभिन्न खबरें भेजी जा सकती हैं। किन्तु यह तरीका बहुत कुछ टेलीफोन सिस्टमका ही रूपान्तर है। आजकल एक प्रकारके ऐसे यन्त्रका आविष्कार हुआ है, जिसका उपयोग केवल एक खास तौरके ग्राहक-यन्त्रके साथ ही हो सकता है। इस उपायसे खबर या बातचीतको औरोंसे छिपा रखना बहुत-कुछ आसान हो गया है।

और भी कई तरहसे रेडियोका व्यवहार होता है। जैसे जहाज और हवाई जहाजके विपत्तिमें पड़नेपर, उसकी सूचना देनेवाला प्रकाश भेजना और दूरसे किसी वस्तुका नियन्त्रण या सञ्चालन करना। इसका व्यवहार वायुयानों-में, लड़ाईके टैंकोंमें और जङ्गी जहाजोंमें किया जाता है। रेडियोका व्यवहार प्रधानतः आनन्द या मनोरञ्जनके लिए ही किया जाता है। इसके सिवा फोटो, अंगूठेकी

छाप और हस्तलिपि भी आजकल रेडियोकी सहायतासे एक जगहसे दूसरी जगह भेजी जाने लगी है। इसका मूल तथ्य यह है, कि फोटोके काले रङ्गकी गहराईके अनुसार इसके द्वारा भेजे गये प्रकाशकी शक्ति कम-बेश होगी। फोटो इलेक्ट्रिक सेलकी विशेषता यही है कि इसके भीतर जिस (कम या अधिक) शक्तिका प्रकाश पड़ेगा, वैसी ही शक्तिसे युक्त प्रकाशके रूपमें बदलकर फोटोके फिल्ममें उसे डालकर ठीक वैसा ही फोटो खींच लिया जाता है। टेलीविजन भी मूलतः बहुत-कुछ ऐसा ही है। अन्तर केवल यही है कि टेली-विजनमें चित्र-ग्राहक-यन्त्रमें चित्र उसके पर्देपर प्रतिफलित होता है।

शिक्षाके फैलानेमें भी रेडियोका व्यवहार किया जाता है। रेडियोके द्वारा मौखिक शिक्षा देना खूब सहज हो गया है। किन्तु इसमें मुख्य असुविधा यह है कि खर्च बहुत बैठता है। फिर भी किसी-किसी स्थलमें यह अधिक व्यय भी अपव्यय नहीं कहा जा सकता। कारण, इस उपायसे बहुत थोड़े समयमें केवल एक अभिज्ञ मनुष्य विभिन्न स्थानों-के हजारों आदमियोंको घर बैठे एक साथ शिक्षा दे सकता है। आधुनिक खोजने रेडियोकी मशीनोंकी बड़ी उन्नति की है और अब भी नये-नये सुधार होते जा रहे हैं। अब अनेक स्थानोंमें वायुमें लगाया हुआ तार लम्बे आकारका नहीं, छोटा होता है। इस तरहके हवामें लगाये जाने-वाले तारकी सहायतासे बहुत दूरकी रेडियोकी लहरें यद्यपि नहीं पकड़ी जा सकतीं, तथापि अनेक बातोंमें यह सुविधा-जनक है। आजकलके वैज्ञानिकोंने रेडियोकी लहरोंके ऊपर आकाशके वैद्युतिक उपद्रवकी सम्भावना भी बहुत कम कर दी है। उन्होंने यह भी खोज निकाला है कि रेडियो-लहरोंकी लम्बाई कम होनेसेही वे बहुत दूरके ग्राहक-यन्त्रोंमें बिजली पैदा कर सकती हैं और उन्हींको दिन या रातको सभी समय बहुत दूरपर ग्रहण किया जा सकता है। आज-कल भारतवर्षके प्रायः सभी रेडियो-स्टेशनोंसे ये छोटी लहरें भेजी जाती हैं। वेकुअम ट्यूब नामका एक विशेष यन्त्र होता है, उसीकी सहायतासे रेडियोकी लहरोंकी शक्ति बढ़ायी जाती है और उन्हें एकाभिमुख किया जाता है। रेडियोका रहस्य बहुत जटिल है। यह विज्ञानका चरम चमत्कार है।

अमा

ज्योत्सना आती होगी चली।
विहंस आलोकित करती हुई किसीकी राह किसीकी गली।

नींदके मधु झोंकेपर झूल
सो गया जीवन सुख-दुख भूल
सुप्त सुधिके आंगनमें पुलक लगी खिलने सपनोंकी कली।

पैंजनीके मनमोहक राग
रागकी गतिविधिमें अनुराग
साधनाकी मुर्झाई डाल स्नेह - आशामें फूली - फली।

तारिकाओंके जगमग प्राण
प्राणमें मचल रहे अरमान
जायेगी यह निशीथकी निविड़ कालिमा विधिके हाथों छली।

स्वर्णका होगा सुन्दर प्रात
और चांदीकी होगी रात
सुघर सुघराई होगी नव विभावरीकी सांचेमें ढली।

ज्योत्सना आती होगी चली।

—नारायणलाल कटरियार।

मनकी आग

श्री मोहनलाल महतो

बसन्त आया। बनकी सभी कलियां खिलखिला उठीं—एक कली नहीं खिली। दुर्गम पहाड़ीकी एक झाड़ीमें वह कली अपनेको छिपाये रही। बसन्तकी शोभा अधूरी रह गयी ; वनके आंगनका एक कोना सूना रह गया।

बसन्तने उस कलीसे कहा—तुम भी खिलो, मैं तुम्हारा मुंह चूमूंगा।

मलयानिलने प्रार्थना की—रानी, मुझे सुवास चाहिये, तुम खिलो।

मधुकर बोले—मानिनि, अपने मादक मधुसे मुझे तृप्त करो।

तितलियोंने निहोरा किया—सखी, हम तुम्हारी बलैया लेंगी, खिलो।

धूलि बोली—एक बार विकसित होकर मुझमें मिल जाओ, पगली!

कली सिहर बठी। खिलनेका अन्तिम परिणाम है मिट्टीमें मिल जाना! वह कोमल पत्तियोंकी गोदमें मुंह छिपाकर उदास हो गयी। एक सङ्गी-हीन छोटी चिड़िया उसी झाड़ीकी एक तुनुक टहनीपर नित्य बसेरा लेती थी। कलीको उदास देखकर चिड़िया बोली—मेरी सखी रानी, मैं तुम्हें नित्य देश-विदेशके गीत सुनाऊंगी। चिन्ता मत करो। अपने बचपनका तिरस्कार मत करो—यह ईश्वर-का वरदान है, प्यारी सखी!"

तृप्त होकर कली मुस्कराने लगी। बसन्त भग्न-मनोरथ होकर लौट गया।

(२)

छोटी चिड़िया अपने रङ्गीन पंखोंको फैलाकर दूर-दूर उड़ती और सन्ध्या समय लौटकर अपनी टहनीपर बैठ जाती। एक दिन कली बोली—सखी, जी नहीं लगता। बड़ी उदासी है। न तो मेरे पास बसन्तका मलयानिल आता है और न मधुकर, तितलियां नहीं आतीं। अके-लापन मेरे हृदयको चुटकियोंसे मसलता रहता है—क्या करूं?

चिड़ियाने कहा—मैं गाकर तुम्हारा जी बहलाती हूं, कली रानी! मैं मानवोंके गांवों और नगरोंमें जाकर जो गीत और स्वर सीख आयी हूं, वही सुनो। मैं तुम्हें मानवों-के गीत सुनाऊंगी!

कलीने मुस्कराकर कहा—मेरी प्यारी सखी, तुम कितनी अच्छी हो।

चिड़िया गाने लगी। क्रम-क्रमसे उसका कोमल स्वर ऊंचा उठता गया। अन्तमें ऊंचा उठते-उठते स्वर चीत्कार बन गया। कली भयभीत होकर चीख उठी। स्वरके आघातोंसे कली विकल हो गयी।

गाना बन्द करके चिड़िया बोली—यह गीत तुम्हें कैसा लगा सखी!

कलीने कराहते हुए कहा—मैं मर गयी, चिड़िया रानी! उफ्, इतनी ज्वाला, इतना आघात। तुम्हारा वह अमृतमय स्वर क्या हुआ प्यारी! ऐसा गीत कहांसे सीख आयी—ऐसा ज्वालापूर्ण गीत!!!

छोटी चिड़िया रुआसी-सी होकर बोली—क्या कहा, ज्वालापूर्ण गीत! मैं अनुभव करती हूं, मेरा स्वर, मेरा वह स्वर जिससे बसन्तकी शोभामें मैं सिहरन उत्पन्न कर देती थी, अब मुझे याद नहीं रहा। मानवोंके बीचमें आने-जानेसे ही मेरी कोमल वृत्तियां मारी गयीं। मैं कहींकी भी न रही—अब मैं क्या करूं, कली रानी!

उस भोली-भाली कलीने जीवन—अपने नन्हें जीवनमें पहली वेदना और चिन्ताका अनुभव किया। वह मुर्झायी-सी एक कोमल पत्तीका सहारा लेकर लेट गयी। दिनका अन्त हो गया—रात आयी।

बसन्तने आकर फिर कहा—मेरी प्यारी कली, खिलो, क्षण-भरके लिए मेरी अपूर्णता दूर कर दो, रानी! यह संसार खिलने और फिर धूलमें मिल जानेके लिए है। अपने भीतर अपनेको बन्दी बनाकर रखना जीवनकी सार्थ-कता नहीं है, सुन्दरी!

कलीने कराहकर मुंह फेर लिया।

चैतकी चांदनी आलस बिखेरती हुई मुस्कराने लगी। फूलोंकी भीनी-भीनी महंक लेकर बयार डोलने लगी—कोयल थकी-सी कूक उठी। रजनीगन्धा और मेंहदीके फूलोंकी महंक फैल गयी।

चिड़िया बोली—सखी, मेरी आंखोंसे नींद रूठ गयी,

मेरे लुभावने सपने मचल गये—मैं क्या करूं।

कलीने धीरेसे कहा—तुम्हारे गीतसे मैं भी छलनी बन गयी, सखी !

(३)

मधुमासकी शान्त, उदास दोपहरी आयी खेतों और मैदानोंमें। चिड़िया अपने नन्हें-नन्हें पंख फैलाकर नील गगनमें उड़ी। वह कुसुमित वन, नये-नये कोपलोंसे भरे बाग, मन्दगामिनी नदी और निर्जन पहाड़ोंको पार करके खेतोंपर उड़ने लगी। किसान जौ और गेहूं काट रहे थे, जमीन्दारके सिपाही कटे हुए अन्नपर पहरा दे रहे थे। चिड़िया उड़ती हुई एक गांवके निकट पहुंची। गांव जन-हीन-सा था—सभी खेतोंपर काम करने चले गये थे। नीम-के ऊंचे वृक्षकी सबसे ऊंची टहनीपर चिड़िया बैठ गयी। यह नीमका वृक्ष गांवके बीचमें था, अपनी शत-शत शाखाओं-का भार लादे। शाखायें फूलोंसे भरी थीं और फूलोंपर मधु-मक्खियोंका झुण्ड गुञ्जार कर रहा था। मधु-मक्खियों-के पङ्ख परागमें सराबोर थे। चिड़ियाने देखा, नीचेकी ओर एक गुड़िया-सी नन्हीं बच्चा अपने छोटे-छोटे पैरोंसे चल-फिर रही है। बच्चीकी बगलमें एक छोटी-सी पोटली है और उसके हाथोंमें चांदीके घिसे हुए पतले-पतले दो कड़े। वह एक चलती-फिरती निर्दोष गुड़िया-सी है। हठात् एक दुबला, लम्बा, रोगी-सा एक पुरुष ओरसे आया। उस पुरुषकी आंखें अजगरकी आंखोंकी तरह चमक रही थीं। तेज और डगमगाती हुई चालसे वह बच्चीकी ओर झपटा। क्षणमात्रमें उसने बच्चीका मुंह बन्द कर उसे कसकर गोदमें उठा लिया। चिड़िया चीख उठी, छटपटाने लगी। बच्ची बेबश हो गयी ! वह भुखमरा बच्चीको उठाकर एक ढहे हुए घरमें, तेजीसे इधर उधर देखकर घुस गया। चिड़ियाने देखा, उस राक्षसने उठाकर बच्चीको जोरसे पटक दिया, फिर उसका पतला-सा गला अपनी लम्बी, टेढ़ी-मेढ़ी कठोर उंग-लियोंसे घोंटने लगा। बच्चीकी आंखें निकल गयीं, जीभ बाहर लटक गयी, मुंहसे रक्तका फेन निकल पड़ा। एक बार ऐंठकर बच्चीने दम तोड़ दिया —चेहरा काला पड़ गया !

चिड़िया मूर्च्छित-सी होकर इस टहनीसे उस टहनीपर तड़पने लगी, फड़फड़ाने लगी—वह अनन्योपाय थी। चिड़ि-याने फिर देखा, वह पिशाच बच्चीके हाथ उमेठकर कड़े निकाल रहा है। कड़े निकालकर उसने पोटलीकी ओर ध्यान दिया। कुछ भुने हुए चावल और चने थे। उस भुखमरेकी आंखें प्रसन्नताके मारे खिल उठीं। वह अपने रक्त-भरे हाथोंसे ताबड़तोड़ चने और चावल फांकने लगा ! बच्चीकी मृत-देहपर मक्खियां भिनभिनाने लगीं।

चिड़िया विकल होकर चीखती हुई भाग चली अपनी झाड़ीकी ओर। सन्ध्या हो रही थी—निर्जन खेतोंके उस पार सूर्य डूब रहा था।

* * * *

चीखकर कली बोली—इस झाड़ीसे दूर रहो सखी, तुम्हारे पङ्खोंसे आगकी फूलझरियां छूट रही हैं—मैं झुलस जाऊंगी।

हांफती हुई चिड़िया बोली—मैंने एक भयानक दृश्य देखा है। मुझे विश्राम करने दो—पैरों पड़ती हूं। मैं पागल हो जाऊंगी।

कली रोती हुई बोली—हाय, मैं जली, यह ज्वाला कहांसे ले आयी, अभागी ! दूर रहो इस झाड़ीसे ! किस नरकको साथ लिये आ रही हो !

चिड़िया पगली-सी बोली—मानवोंकी एक बस्तीसे आ रही हूं—मुझे विश्राम करनेका आदेश दो रानी !

कली विकल स्वरमें कहने लगी—तुम्हारा यहां कोई काम नहीं है। मानवोंके पापोंका ताप यहां क्यों ढोकर बारबार ले आती हो ?

विकल चिड़िया अपनी टहनीपर बैठती हुई बोली—आह, क्षमा करो।

कली एक बार कांपकर मुर्झा गयी। उसकी कोमल पंखुरियां झुलसकर झर पड़ीं। धूलने बड़े चावसे उन पंखु-रियोंको दामनमें छिपा लिया। बसन्त असमयमें ही ग्रीष्म-की आगमें झुलस गया। कोयल रोती हुई भाग गयी, उस देशमें, जहां कभी मानवकी छाया भी नहीं पड़ी थी ; किन्तु आत्मदग्ध मानव कहां जाय—वह नरकसे डरता है और स्वर्ग उसे स्वीकार नहीं करता। वह तो दोनोंके सम्मिश्रण-का नमूनामात्र है। अनन्योपाय अभागा मानव अपने मनकी आगमें अपनेको भूनता रहा, पकाता रहा किसी महाभोजमें परोसे जानेके लिए।

विश्वका आर्थिक नव-निर्माण

श्री जी० एस० पथिक, बी० काम०

इस युद्ध-कालमें ही विश्वकी नवयोजनाओंका निर्माण-कार्य आरम्भ हो गया है। आज युद्धकी गति-विधिमें सहसा परिवर्तन देखकर मित्र-शक्तियोंने भावी-संसारकी व्यवस्थाका कार्य शुरू कर दिया है। इससे पूर्व भीषण युद्धके समयमें ही अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन आदि संयुक्त राष्ट्रोंने अटलांटिक चार्टरके रूपमें अपने राजनीतिक आदर्श और सिद्धान्तोंको संसारके सामने रखा। इस घोषणापत्रमें सभी छोटे-बड़े देशोंकी स्वाधीनता स्वीकार की गयी। पर बादकी घटनाओंसे प्रकट हुआ कि उसका कार्यक्षेत्र अधिकांशमें यूरोपसे ही सम्बन्ध रखता है। एशिया और अफ्रिका तथा सुदूरपूर्वके अन्य देश यूरोपीय देशोंके उपभोगके क्षेत्र हैं, इसलिए उनके सम्बन्धमें किसी भी बड़े आदर्शवादी देशसे स्वतन्त्रताकी कामना करना निरी मूर्खता है। आज इन्हीं देशोंपर अपना अक्षुण्ण आधिपत्य कायम रखनेके लिए वर्तमान युद्ध लड़ा जा रहा है। आज यदि इनपरसे हाथ उठा लिया जाय, और उन्हें यूरोपीय देशोंका उपनिवेश न बनाया जाय, तो फिर इस युद्धके लिए कहां स्थान रहता है। यूरोपके बंटवारेका प्रश्न ऐसा जबर्दस्त नहीं है कि इतना भयङ्कर युद्ध हो। यदि पूर्व में फिलीपाइन और ब्रह्म देशकी स्वाधीनता घोषित कर दी जाय, तो जापानकी क्या शक्ति है कि उनपर अधिकार कर सके। पर जापानके युद्धमें परास्त होनेपर क्या इन देशों-को स्वाधीनता प्राप्त होगी। अफ्रिकामें ही धुरी शक्तियों-को परास्त करनेके बाद वहां कुछ भागपर फ्रांसकी सत्ता स्वीकार की गयी और दूसरे भाग शायद संयुक्त राष्ट्रों द्वारा शासित होंगे। पर इसकी अपेक्षा अपने लोकतन्त्र भावों-के कारण मित्र-राष्ट्रोंने क्यों न यह घोषित कर दिया कि युद्धके उपरान्त इन सभी देशोंपर यूरोपियन देशोंका कोई लाग-लगाव न होगा और उनका शासन अपने ही देश-वासियों द्वारा होगा। जहां तक भारतका सम्बन्ध है, उसके प्रति पहले ही यह कह दिया गया कि अटलांटिक चार्टर लागू नहीं है। ऐसी स्थितिमें अटलांटिक चार्टर या कोई भावी राजनीतिक संस्था क्या कभी स्थायी शान्ति स्थापित कर सकती है ? उस अवस्थामें कोई भी देश बगा-वत कर सकता है। यह प्रकट है कि वार्साईकी सन्धिके फैसलेको कालान्तरमें जर्मनीने ठुकरा दिया था और फिर युद्ध-ऋण देनेसे भी इनकार कर दिया था। इसलिए विद्रोही प्रगतिको रोकनेके लिए ही इस बार एक नया मार्ग ग्रहण किया गया है, जिससे कि कोई देश आसानीसे रस्सी छुड़ा-कर भाग खड़ा न हो। आर्थिक पाश राजनीतिक बन्धनों-से भी कठोर होता है।

विज्ञानने जहां अनेक बातोंमें उन्नति की, वहां किसी देशको निर्बल बनाने और उसके धनको खींचनेके भी नये-नये साधन निकाले। पुराने जमानेमें लूट-पाट, जजिया और चौथ आदिसे धन खींचा जाता था। हिन्दुस्तानमें ही महमूद गजनवी, तैमूरलंग और नादिरशाहने हमले कर निश्चय ही अपार धन लूटा, मगर वह एक-एक बार ही ले जाया गया। पर आजके धन-अपहरणके तरीके सर्वथा नये हैं। इनमें हमलोंकी कोई जरूरत नहीं है। आज तो धन सामने रखा हुआ हमारे देखते-देखते उठ जाता है और हम कुछ नहीं कर पाते हैं। आज यही तो सब कुछ हो रहा है। किसी देशको निर्बल बनाना है, तो उसे कर्जसे लाद दीजिये। यदि वह पराजित हुआ है, तो उससे इतना हर्जाना वसूल करिये कि फिर कभी वह न उठ सके। यदि कोई उन्नति करता हुआ दिखायी देता है, तो वहां भी विदेशी पूंजी लगनेसे उसका आगे बढ़ना रुक जायेगा। इसके उपरान्त करेन्सी और एक्सचेञ्जके शस्त्र प्रयोगके लिए प्रस्तुत हैं। इनका असर होते ही कोई देश कभी पनप नहीं पाता। इस अवस्थामें युद्धमें पराजित और निर्बल तथा अधीनस्थ देशोंमें चाहे जितनी उपज और तैयार मालका निर्माण हो, उन्हें गिरानेके लिए अन्तर्राष्ट्रीय एक्सचेञ्जकी दर अमोघ साधन है। पिछले महायुद्धके बाद यही हुआ। जर्मनीके सिक्केकी दर विजयी इङ्गलैण्ड और फ्रांस ने गिरा दी। ऐसी स्थितिमें जर्मन करेन्सी पौण्डके मूल्यमें कौड़ियोंमें हो गयी। बुभुक्षित और पीड़ित जर्मनीने युद्धके बाद अनेक धन्धे शुरू किये और अधिकसे अधिक माल तैयार किया, पर उसे क्या मिला। उसका माल बढ़िया और सस्ता होनेपर संसारमें खपता, पर उसे दाम कितने मिलते। पर जब वह इन बन्धनोंसे मुक्त हुआ, तो उसकी शक्ति बढ़ गयी। सारांश यह कि राजनीतिक इकरारनामे कितनी

भी सचाईसे किये जायं, वे कभी स्थायी नहीं होते। कोई भी देश मौका पाकर उन्हें कभी भी ठुकरा सकता है। इसलिए इस युद्धके बाद जब नव संसारके स्थापित करनेकी घोषणा की जाती है और यह कहा जाता है कि भविष्यमें युद्ध असम्भव हो जायेगा, तब ऐसी स्थितिमें, कोई देश पराजित हो या सदियोंसे अधीनस्थ—उसको किसीके भी बन्धनमें रहनेसे अशान्तिके बीज वपन हुए बिना न रहेंगे। यदि आज भी आर्थिक व्यवस्थाएं समस्त देशोंको सहयोगमें लानेकी अपेक्षा आर्थिक शोषण और प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए निर्धारित की जायं, तो उनसे मित्र-राष्ट्रोंके महान उद्देश्योंकी कभी पूर्ति न होगी।

इधर अमेरिका और इङ्गलैण्डमें एक अर्सेसे नयी आर्थिक योजनाओंके निर्माणपर विचार शुरू हुआ है। केनीजने अपने प्रस्ताव रखे और उधर अमेरिकन बैंकरों तथा अर्थ-विदोंने अपनी निश्चित योजना संसारके सामने रखी। जहां केनीजने कई बार नये-नये प्रस्ताव रखे, वहां अमेरिकन योजना भी संशोधित हुई। अमेरिकन योजनाका रूप यह है कि भविष्यमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और उसके भुगतानके लिए एक विश्व क्लीरिंग बैङ्क स्थापित होगा। जो देश इस बैङ्कके सदस्य होंगे, उनका कारबार इसी बैङ्क द्वारा होगा। इस बैङ्कके सदस्य बननेवाले प्रत्येक देशको १२॥ प्रतिशतसे ५० प्रतिशत तक वास्तविक रूपमें सोना जमा करना पड़ेगा। प्रत्येक सदस्य-देशकी भीतरी करेन्सी और एक्सचेञ्जपर भी इस बैङ्कका नियन्त्रण रहेगा। इसके सिवा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिसे सभी देशोंके व्यापार और उद्योग-धन्धोंको प्रगति मिलेगी। प्रत्येक देशकी करेन्सीकी सुव्यवस्थामें बैंक भाग लेगा। थोड़ी मुद्दतपर बैंक सभी व्यावसायिक सौदोंपर कर्ज देगा। सारा व्यवसाय स्वर्णके ही आधारपर होगा। स्वर्णके आधारपर ही प्रत्येक देशके सिक्केका अनुपात निश्चित किया जायेगा। बैंकका प्रत्येक यूनिट १३७—१।७ ग्रेन बढ़िया सोना जमा करेगा, जो दस डालरके बराबर होते हैं। इस फण्डकी व्यवस्थाके लिए किसी एक देशको समस्त वोटोंके २० प्रतिशतसे अधिक वोट प्राप्त न होंगे। एक्सचेञ्ज दरमें परिवर्तनके लिए ७५ प्रतिशत वोट किसी देशको प्राप्त करने होंगे। प्रत्येक यूनिट-के लिए सोनेका परिमाण घटाने-बढ़ानेके लिए ८५ प्रतिशत वोट प्राप्त करने होंगे। यह भी कहा गयाहै कि जिन दरोंमें बैंक सदस्य-देशोंकी करेन्सियोंमें क्रय-विक्रय करेगा, उनका अनुपात १ जुलाई १९४३ के अमेरिकन डालरकी दरसे निश्चित होगा। यूनान और चीन आदि देशोंकी करेन्सियोंके लिए खास दर कायम की जायेगी, जहांकी दरें इस समय बहुत बढ़ी हुई हैं। इसके सिवा अन्य देश भी इस योजनामें ले लिये जायेंगे, जो इस समय धुरी राष्ट्र कहलाते हैं और या जो इस धुरी शक्तिके तावेमें हैं। मगर उनकी करेन्सी और एक्सचेञ्जकी क्या दरें होंगी और किन शर्तोंपर ये देश इस फण्डमें लिये जायेंगे, यह अभी कुछ तय नहीं हुआ। पर यह निश्चित है कि उन्हें भी लिया जायेगा। इस प्रकार विश्व-का व्यापार और उसका सञ्चालन इस केन्द्रीय संस्था द्वारा होगा। इतनेसे ही इस आयोजनका महत्व समझा जा सकता है। यह सब इसलिए है कि आर्थिक क्षेत्रमें अनु-चित प्रतिस्पर्द्धा न हो और न कोई देश किसी दूसरेको दबा सके। यह भी है कि इस फण्डके संसर्गमें रहनेसे कोई देश जल्दीसे बगावतका झण्डा न उठाने पाये। इस दृष्टिसे यह उपाय किसी राजनीतिक संस्थासे अधिक बलशाली है। इसीलिए अभीसे अमेरिकाने यह मार्ग ग्रहण किया है। संसारकी सभी करेन्सियोंपर डालरका आधिपत्य रहेगा और संसारका सोना अमेरिकाके इस फण्डमें जमा होगा। अभी ही अमेरिकाके पास संसारमें सबसे अधिक सोना है। ग्रेट ब्रिटेनके पास सितम्बर १९४१ में केवल १९१ करोड़ डालर सोना था, जब कि इसके पूर्व मार्च १९३९ में ३० अरब डालर सोना था। अमेरिकाके सिवा संसारके अन्य देशोंमें इस समय तीस-चालीस अरब डालरसे अधिक सोना नहीं है। संसारमें सबसे अधिक सोना आज भी अमे-रिकाके पास जमा है और इस व्यवस्था द्वारा संसारका रहा-सहा सोना भी इस फण्डमें जमा हो जायेगा। इससे यह भी होगा कि सभी देशोंमें सोना जमा करनेकी प्रवृत्ति और होड़ पैदा हो।

अमेरिकाके इन प्रस्तावोंसे ग्रेट ब्रिटेनको बड़ी बेचैनी पैदा हुई और उसने यह घोषित किया कि किसी भी देशसे इन प्रस्तावोंका समर्थन प्राप्त न होगा। अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेनके हितोंमें बाजी लगी। पर इस युद्धकालके बीच-में बिना संघर्ष उत्पन्न किये मामला सुलझानेका प्रयत्न किया गया। केनीजने वाशिंगटन पहुंचकर अपनी योज-नायें रखीं। असलमें ग्रेट ब्रिटेन स्वर्ण-मानको मानने-के पक्षमें नहीं है। दूसरे वह यह भी नहीं चाहता कि देश-के भीतर चलनपर फण्डकी कोई दस्तन्दाजी हो।

इस क्लीरिंग योजनामें अन्य कई दिलचस्प बातें हैं, जिन्हें ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका दोनों ही मानते हैं। सिद्धान्त

रूपमें इस फण्डके स्थापित करनेकी बात स्वीकार कर ली गयी है और ३३ देशोंने अपनी रजामन्दी भी जाहिर कर दी है। अभी जिन विषयोंपर विवाद चल रहा है या जो त्रुटियां दिखायी देती हैं, वे भी विचार-विमर्शके उपरान्त दूर हो जायेंगी। पर यह दिखता है कि अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और भुगतानमें सोनेका महत्व कम नहीं करना चाहता। वह सोनेकी पीठ-भूमिपर जमा रहना चाहता है।

मगर जहां संसारकी यह स्थिति होगी, वहां हिन्दुस्तानका इस आयोजनमें क्या स्थान होगा? कहना न होगा कि मित्र-शक्तियोंने हिन्दुस्तानका कुछ भी खयाल नहीं किया है। शायद इसलिए कि तैयार माल निर्यात करनेमें हिन्दुस्तानका नगण्य स्थान है। पर आज इस देशकी जैसी स्थिति है और जितने अंशमें यह देश उद्योग-धन्धोंके निर्माणमें अग्रसर हुआ है, उस दृष्टिसे इस आयोजनमें उसका पृथक स्थान अवश्य होना चाहिये। पर भारत-सरकार इस सम्बन्धमें उदासीन है। इसकी जगह यदि आज देशमें राष्ट्रीय सरकार होती, तो वह निश्चयही इस मसलेपर अपनी आवाज उठाती। भारतके तैयार मालका निर्यात-व्यापार कुछ कम नहीं है और दिनपर दिन वह अधिक निर्यात करनेमें समर्थ होगा। इसके सिवा वह सोना भी भेज सकेगा। सोनेका व्यापार भी भारतका खास अङ्ग है। इन सब दृष्टियोंसे विश्व बैंकका सदस्य होनेके लिए भारत सर्वथा योग्य है।

पर हमें यहां देखना है कि भावी संसारकी रचनामें भारतवर्षका आर्थिक भविष्य कैसा है। इस युद्धकालमें भारतवर्षने ग्रेट ब्रिटेन, उपनिवेशों और मित्र राष्ट्रों तथा अन्य देशोंको करोड़ों रुपयेका माल बेचा है। ग्रेट ब्रिटेनने इस व्यापारके लिए यूनाइटेड किंगडम कार्पोरेशन नामक संस्था स्थापित की। इसके द्वारा ही समस्त विदेशी व्यापार होता है और वह मालकी बिक्रीपर लाभ उठाती है। यह संस्था चाहे जिस देशमें जो माल खरीदती और वहांके उद्योग-धंधोंको प्रोत्साहन देती है। उसकी इस पक्षपातपूर्ण नीतिका भारतने घोर विरोध किया। पर उसकी कहां कोई सुनता है। भारतने अब तक जो माल बेचा है, उसके बदलेमें उसे न तो माल मिला और न सोना-चांदी ही। मिलीं, ब्रिटिश खजानेके सिक्केके कागज—'स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियां'। इस खरीद-बिक्रीका सारा हिसाब-किताब बही-खातों तक ही सीमित रहा। भारतीय व्यापारियोंने मालका बीजक और शिपिंगके कागजात, भारत सरकारको जब दिये, तब उन्हें यहांसे रुपया मिल गया। इस भुगतानके लिए भारत-सरकारको प्रति सप्ताह कई करोड़ रुपयेके नये नोट प्रकाशित करने पड़े, जिससे आज भारतीय करेन्सीमें अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। भारत सरकारने बिल और शिपिंगके कागज ब्रिटिश-खजानेको भेज दिये। ब्रिटिश खजानेने बैंक आफ इङ्गलैण्डको आदेश दिया कि वह इन बिलोंका पेमेण्ट कर दे। बैङ्क आफ इङ्गलैण्डने इन बिलोंकी रकम ब्रिटिश खजानेके नामे लिखी और रिजर्व बैङ्क आफ इण्डियाकी जमा की। इसके बाद भारत-मन्त्रीने रिजर्व बैङ्कको आदेश दिया कि वह उक्त रकमकी ब्रिटिश खजानेकी स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियां खरीद ले। इसपर रिजर्व बैङ्कने बैङ्क आफ इङ्गलैण्डको उनको खरीदनेका आदेश दिया। इस आर्डरके मिलनेपर बैङ्क आफ इङ्गलैण्डने भारतके लिए उक्त रकमकी स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियां ब्रिटिश खजानेसे खरीदीं और हिसाब बराबर कर दिया, अर्थात् रिजर्व बैङ्कके नाम इतनी रकम लिख दी और ब्रिटिश खजानेकी जमा कर ली। इस युद्धकालमें भुगतानकी यह पद्धति रही। सारा विदेशी व्यापार इङ्गलैण्डकी मार्फत हुआ। भारतका माल अमेरिका, फारस और अफ्रिका आदि बीसों देशोंमें गया, पर खेद है कि हमारी चीख-पुकार करनेपर भी अन्य देशोंसे सीधा सम्बन्ध नहीं रहा। यदि उनसे सीधा सम्बन्ध रहता, तो स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियां इतनी अधिक न बढ़तीं। मगर सिक्यूरिटियां बढ़ती चली गयीं। इस मौकेपर ब्रिटिश सरकारने भारतका पुराना ऋण, जो वास्तवमें ब्रिटिश साम्राज्यके विस्तारके लिए लिया गया था और भारतके उत्पादनसे उसका कोई सम्बन्ध न था, चुका दिया। सरकारने १९३७ से ही ऋण चुकानेका कार्य शुरू कर दिया था। १९३९-४० में ब्रिटिश सरकारने रिजर्व बैङ्कको आदेश दिया, जिसके अनुसार उसने स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियोंके बदलेमें भारतका १७ करोड़ ९ लाख २९ हजार पौण्डका ऋण चुकाया। १९३९-४० में भारतका स्टर्लिङ्ग ऋण ३४८७१२००० पौण्ड था। उसके उपरान्त १८९००० पौण्डकी रकमका ४॥ सैकड़ेका कर्ज (१९५०-५५) चुका दिया गया। इतना ही नहीं, २१०२००० पौण्डका रेलवेका देना भी विदेशियोंको चुका दिया गया। इस प्रकार कुल रकम १९३८४००० पौण्ड (अर्थात २९८४ लाख) की चुकायी गयी। इसके उपरान्त स्थाई ऋणकी रकम ३२९३२८००० पौण्ड रह गयी। इसके बाद १९४०-४१ में कुल स्टर्लिङ्ग ऋण २०२२६७५ पौण्डका चुका दिया गया। इसके सिवा रेलवेका अवशेष भुगतान

भी दिया। कहना न होगा कि कुल ७३५४१००० पौण्ड अदा किया गया। इस प्रकार ३३२२३९००० पौण्डके ऋणमें ३१ मार्च १९४१को २५८६९८००० पौण्डकी रकम रह गयी। सारांश यह कि १९३३-३४ में भारतका स्टर्लिङ्ग ऋण ५१२ करोड़ रुपये था, वह १९४१-४२ में १८० करोड़ रुपये रह गया। इस प्रकार ३३२ करोड़ रुपयेकी स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियां ऋणमें अदा की गयीं। पर इतनी सिक्यूरिटियां चुकानेपर भी आज उनकी रकम ६४२ करोड़ रुपये जमा है। प्रति सप्ताह सातसे दस-ग्यारह करोड़ रुपयेकी सिक्यूरिटियां बढ़ती हैं। कोई-कोई सप्ताह ही ऐसा जाता है, जिसमें उनकी वृद्धि न होती हो। इस दृष्टिसे यदि यह क्रम दो वर्ष तक और चला, तो इन सिक्यूरिटियोंकी रकममें मोटी वृद्धि हो जायेगी। पर ये सिक्यूरिटियां रिजर्व बेङ्ककी तिजोरियोंमें जमा पड़ी हुई भारतका क्या आर्थिक भविष्य प्रकट करती हैं? कहना न होगा कि इन्हीं सिक्यूरिटियोंपर भारतकी भावी आर्थिक रूप-रेखा निर्मित होगी। इन सिक्यूरिटियोंसे भारतको महाजन देश प्रकट किया जाता है, और ग्रेट ब्रिटेनको कर्जदार। मगर भारतको इन सिक्यूरिटियोंसे बड़ा भय है। अमृतमें भी जहर भरा रहता है, उसी प्रकार ये सिक्यूरिटियां भारतके आर्थिक भविष्यको खतरा पहुंचानेवाली हैं। आज जहां संसारके अन्य देश अपना भविष्य सुन्दरतम देखते हैं, वहां भारतका भविष्य ब्रिटिश अर्थविद, और ब्रिटिश आर्थिक पत्रोंके विवेचनसे ही अत्यन्त अन्धकारमय दिखायी देता है। इसीको लक्ष्यकर भारतकी ओरसे ब्रिटिश सरकारसे प्रार्थना की गयी कि वह स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियोंको अब अधिक जमा न करे, और उनका उपयोग भारतीय लोकमतके अनुकूल करे।

भारतमें अब भी ब्रिटिश पूंजी २४०००० ०० पौण्ड लगी हुई है। ये आंकड़े आजसे दस वर्ष पूर्वके हैं और कहा जाता है कि अब इस रकममें कई गुना वृद्धि हो गयी है। इस पूंजीका बहुत बड़ा भाग स्थायी नहीं है, अर्थात वह चलता-फिरता धन है। एक्सचेंज बैंक और ब्रिटिश अधिकृत कोस्टल शिपिङ्ग कम्पनियोंमें अंगरेजोंकी पूंजी लगी है। १५०००००० पौण्डसे २०००००० पौण्डके बीचकी पूंजी कलकत्तेके जूटके धन्धेमें लगी है। किन्तु कुछ वर्षसे जूटकी अधिक पूंजी भारतीयोंके हाथमें आ गयी है, क्योंकि जूट मिलोंके शेयरोंके सौदे भारतीय स्टाक एक्सचेंजमें होते हैं। इससे भारतीयोंको अवसर मिला कि वे इस धन्धेमें अपना हाथ बढ़ावें। इतनेपर भी संसारके इस प्रभावशाली धन्धेपर भारतमें अंगरेजोंका प्रभुत्व जमा हुआ है। इसके उपरान्त चायका महत्वपूर्ण उद्योग है, वह भी भारतीयोंके अधिकारमें नहीं है। उसमें अंगरेजोंकी ४००००००० पौण्ड पूंजी लगी हुई है। पर कलकत्ता स्टाक एक्सचेंजमें चायके शेयरोंके भी सौदे होनेसे भारतीय पूंजीपतियोंका भी इस धन्धेमें प्रवेश हो गया है। जिस प्रकार कई जूट मिलें भारतीयोंकी हैं और ब्रिटिश जूट मिलोंके शेयर भी उनके पास हैं, उसी प्रकार भारतीय व्यापारियोंने चायके अच्छे-अच्छे बगीचे खरीदे हैं और जो बगीचे अंगरेजोंके हाथमें हैं, उनके शेयरोंमें भी भारतीयोंका हाथ बढ़ा है। इसके उपरान्त भारतमें कुछ और कम्पनियां हैं, जिनमें अंगरेजोंकी पूंजी लगी है जैसे इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज और डनलप रबर कम्पनी आदि। पर इनके भी डायरेक्टरोंमें भारतवासी हैं, और उन्हें यह अवसर मिला है कि वे उनके शेयर खरीद लें। मगर ये सब कम्पनियां स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियोंसे खरीदी जा सकती हैं। यह ख्याल किया जाता है कि वैसे भी इस युद्धकालमें इन कम्पनियोंकी कामचलाऊ पूंजी अंगरेजोंके हाथमें रह गयी है और अवशेष पूंजीके शेयर भारतीयोंके हाथमें है। यह सम्भव है कि युद्धकी परिस्थिति सुधरते ही स्टाक एक्सचेंज द्वारा यह पूंजी अधिकसे अधिक परिमाणमें फिर अंगरेज व्यापारी खरीद लें। रेलोंके २०.२ मिलियन पौण्ड डिबेंचर स्टाक चुका देनेसे सभी महत्वपूर्ण रेलें ब्रिटिश पूंजीसे मुक्त हो गयी हैं। ईस्ट इण्डियन रेलवे, जी० आई० पी०, ईस्ट बङ्गाल रेलवे, साउथ इण्डियन रेलवे, बङ्गाल और नार्थ वेस्टर्न रेलवे और बङ्गाल और नागपुर रेलवेके चार प्रतिशत और तीन प्रतिशत डिबेंचर पूरे चुका दिये गये। अब तीन रेलोंकी सिर्फ ९० लाख पौण्ड शेयर पूंजी चुकाना रह गया है। यह भी चुक जानेसे भारतका रेलवे लाइनपर पूर्ण अधिकार हो जायेगा। बङ्गाल नागपुर, मद्रास और सदर्न मराठा और साउथ इण्डियन रेलवेके डिबेंचर चुक जानेपर भी तीन और रेलवे लाइनें बच जाती हैं, जिनका सञ्चालन अंगरेजोंके हाथमें है। पर उनकी पूंजी बहुत ही साधारण है।

यदि वर्तमान भारतीय उद्योग-धन्धे और व्यापार ब्रिटिश पूंजीसे सर्वथा मुक्त हो जायं; तो उसका सहज उपाय यह है कि स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियोंका उपयोग किया जाय। यह पूंजी चुकनेके बाद भी काफी सिक्यूरिटियां बच

रहेंगी, जिनका उपयोग युद्धके बाद किया जा सकता है, या युद्ध-कालमें ही उनके बदलेमें ब्रिटिश-सरकार भारतको सोना-चांदी दे सकती है या युद्ध-निर्माणमें सहायता देनेके लिए अमेरिकासे भारी धन्धे स्थापित करनेके लिए नयी-नयी मशीनें दे सकती है। पर लक्षण यह है कि यह कुछ भी न होगा। अंगरेज व्यापारी भारतीयोंके आन्दोलनसे काफी सचेत हो गये हैं और वे भारतमें स्थापित कारखाने और कम्पनियोंपर अपनी सत्ता बनाये रखना चाहते हैं। अफ्रिकाकी गोरी बस्तियोंमें भारतीयोंको मकान रखने तकका नागरिक अधिकार न हो; किन्तु भारतमें करोड़ों रुपयेकी पूंजीके कारखाने छोड़नेमें इतनी हिचकिचाहट की जाय! वस्तुतः इन कारखानोंसे कई गुना पूंजी उन्होंने वसूल कर ली है, किन्तु फिर भी भारत उनकी लगी हुई पूंजी चुकाकर अपना अधिकार न्यायतः चाहता है। यदि यह पूंजी नहीं चुकती है और भविष्यके लिए विदेशी पूंजी पर नियन्त्रण कायम नहीं होता और स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियोंके उपयोगकी अभीसे कोई व्यवस्था नहीं होती, तो भारतका भविष्य गहरे अन्धकारमें दिखायी देता है।

स्वराज्य कहिये या राजनीतिक स्वतन्त्रता—युद्धके उपरान्त भारतको प्राप्त होनेपर भी वह इस परिस्थितिमें आर्थिक बन्धनोंसे जकड़ा रहेगा। उधार-पट्टा बिलके इकरारनामेके अनुसार भारतके बाजार अमेरिकाके लिए खुले रहेंगे। इसके सिवा स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियां भारतकी आर्थिक स्थितिको निर्बल बना देंगी। आज इन्हीं सिक्यूरिटियोंको रिजर्व बैंक सोने-चांदीके स्थानपर रक्षित कोषमें जमाकर बदलेमें रुपयेके करेन्सी नोट निकालता है। पर इन सिक्यूरिटियोंकी अन्तर्राष्ट्रीय रुपयेके बाजारमें कोई पूछ न होगी। युद्धके उपरान्त भारतवर्षका भाग्य ब्रिटेन और साम्राज्यके देशोंके भाग्यसे जुड़ा रहेगा। स्वराज्यप्राप्त होनेपर ग्रेट ब्रिटेन यह सहन न करेगा कि भारतकी करेन्सी और एक्सचेंज उसके स्वार्थोंसे स्वतन्त्र हो। भविष्यके लिए इतने कठोर बन्धनोंसे भारत जकड़ दिया जायेगा कि यदि कदाचित् अमेरिकाके विश्व-बैङ्कमें भी उसका कोई स्थान हुआ, तो भी आर्थिक दृष्टिसे उसका उद्धार न हो पायेगा। स्टर्लिङ्गकी फौलादी दीवार उसके सामने खड़ी रहेगी। भावी उद्योगीकरणके लिए भी स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियां देशके लिए बाधक रहेंगी। अतएव भारतका औद्योगिक भविष्य ग्रेट ब्रिटेन और साम्राज्यके देशोंकी प्रगतिके अनुसार होगा। पौण्डकी स्थिरतापर ही भारतकी करेन्सी और एक्सचेंजकी स्थिरता कायम रहेगी। वर्तमान स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटियोंका उपयोग अंगरेज ब्रिटिश मालके आयातके रूपमें ही होने देंगे। इसका सीधा अर्थ यह है कि युद्धके उपरान्त भारत निर्यातकी अपेक्षा अधिक ब्रिटिश मालका आयात करे। यदि भारत कुल सिक्यूरिटियोंकी मशीनें खरीदना चाहे, तो वे भी शायद उसे तुरन्त न मिलेंगी, क्योंकि ग्रेट ब्रिटेन कहेगा कि उसके औद्योगिक निर्माणके लिए भी नयी-नयी मशीनें चाहियें। हां,भारत उसका तैयार माल बड़े मजेमें खरीद सकेगा। इसकी अपेक्षा भारत यदि चाहे कि इन सिक्यूरिटियोंसे वह दूसरे देशोंसे कल आदि खरीदे, तो वह उनके असली मूल्यको खो देगा।

इस युद्ध-कालमें भारतमें ही नये-नये धन्धे खड़े नहीं हुए। आज करोड़ों रुपयेकी भारतीय पूंजी सुस्त पड़ी हुई है, उसे भी उद्योग-धन्धोंमें लगनेसे रोक देनेके लिए आर्डिनेन्स द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। आज नये कारखाने और कम्पनियां बिना इजाजतके नहीं खुल सकतीं। आस्ट्रेलिया और कनाडामें नये-नये धन्धे खुले और भारतमें खूंटों और टेन्टोंका ही काम होता रहा। यह अजीब हालत है। अभीसे भविष्य कितना सुन्दर निर्माण किया जा रहा है, वह इस प्रगतिसे प्रकट होगा। संसारके देश अपना भविष्य बड़ी-बड़ी आशाओंसे देख रहे हैं, वे चाहे युद्धमें जीतें या हारें, पर उनका भविष्य संसारकी स्थायी शान्तिकी दृष्टिसे सुख और शान्तिका देनेवाला होगा। पर भारतका भविष्य कितना निर्बल होगा, वह इन लक्षणोंसे प्रकट होता है। इस युद्ध-कालमें ब्रिटिश सरकार भारतको महाजन देश मानने लगी है, पर अब उसे शायद यह भी गंवारा नहीं है, इसलिए एशियाका जो नया युद्ध भारतकी सीमापरसे लड़ा जानेवाला है, उसके सञ्चालनका बहुत कुछ भार इस देशपर पड़नेवाला है। यदि यह हुआ तो भारतवर्षकी आर्थिक रीढ़ टूट जायेगी और उसपर इतना कर्ज लद जायेगा कि वह सदियों तक न उठ सकेगा और यदि यह कर्ज देशवासियोंने ही दिया, तो भी उसकी औद्योगिक और व्यापारिक प्रगतियोंको धक्का लगेगा।

मगर इन सब फौलादी दीवारोंको भारत लांघ सकता है और उसका भविष्य सुन्दर निर्माण हो सकता है, यदि वह पूर्ण आर्थिक स्वायत्तता प्राप्त करे और भारतके स्वार्थोंको क्षति पहुंचानेवाली किन्हीं भी शर्तोंके आगे नतमस्तक न हो। भविष्यके लिए भारतका रुपया पौण्डसे पूर्ण स्वतन्त्र हो और उसका अपना स्वर्ण-मान हो।

समाजमें युवकोंका दायित्व

श्री केशवचन्द्र मिश्र, बी० ए०, साहित्यरत्न

"मातृ देवो भव, पितृ देवोभव" वाक्यों द्वारा श्रुतिने माता-पिताके जिस उच्च पदकी ओर संकेत किया है—वह पद आज अज्ञ माता-पिता द्वारा कितना अपमानित हो रहा है, यह देखकर प्रत्येक विचारशील व्यक्तिके हृदयपर गहरी ठेस लगती है। धर्मपरायणताके अवसान-कालमें मनुष्यकी नैतिक बुद्धि जब बिल्कुल भ्रष्ट हो जाती है, तब वह विवेक-हीन हो किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। शताब्दियोंके अनवरत भीषण आध्यात्मिक पतनके कारण आज हमारे पूर्वके सुख-साधन, सुख-घातक बन गये हैं। विपरीत परिणामी प्रक्रिया-का केन्द्र न तो प्राप्त ही हो रहा है, न हम उसके लिए यत्न ही करते हैं। युवकोंमें इसका अभाव और भी घातक हो रहा है। यही कारण है कि वे आज उच्छृङ्खलताकी सीमा पारकर जानेमें कुछ उठा नहीं रखते। बाल्य और युवावस्थाकी सन्धिमें ही वे सब कुछ कर और देख लेना चाहते हैं। उनकी मानसिक शक्तियां कामातुर हो, व्यभिचारकी विभीषिकाकी उन्नायिका बन जाती हैं। इन्हें प्रबन्धकला प्रवीणा प्रकृतिके नियमोंका उल्लङ्घन, शिशु-क्रीड़ासे अधिक नहीं मालूम होता। पशु-पक्षियोंको अप-त्योत्पादनका यथेष्ट अधिकार है। उनमें प्रकृति-विहित नियमके अनुकूल इसकी रुचि उत्पन्न होती है। पर मानव-संसारमें सर्वश्रेष्ठ बननेका दम भरनेवाला मानव, प्रकृतिके नियमोंका पालन अपनी परतन्त्रता समझता है। पशु-पक्षी कालाभिगामी हैं। वे किस प्रकार ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करते हैं? इन्द्रिय संयमी हैं। उनमें नर जाति नारीके साथ बलात्कार नहीं करता। पर इस बुद्धिमानीके पुतले—मानवके लिए कोई नियम नहीं, कोई नियन्त्रण नहीं, कोई भय नहीं।

आज इस प्रश्नकी गम्भीरताका विश्लेषण, केवल साहि-त्यिक विनोदके लिए ही नहीं अपेक्षित है, वरन् आधुनिक संघर्षमें अपनी अस्तित्व-रक्षाकी दृष्टिसे भी यह विचारणीय हो रहा है। मृग-मरीचिका सदृश नग्न नर्तन करनेवाली वासना आज स्पष्टसे स्पष्टतर हो गयी है। इसके इस स्वच्छन्द स्वरूपको मर्यादित करनेके सब प्रयास निष्फल हो रहे हैं। धर्म, स्वर्ग-बहिश्त, नरक-दोजखके नाम सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। तोबा-तिल्ला मच जाती है। इन सबके भयसे भी मनुष्यको नियन्त्रित नहीं किया जा सका। मनुष्य इतना स्वच्छन्द, अविचारी, उच्छृङ्खल, उद्दण्ड और प्रमादी है कि इसके लिए क्या-क्या नियम बनाने पड़े और भयोत्पादन हेतु किन-किन अदृश्य वस्तुओंकी कल्पना करनी पड़ी! पर कोई भी पाप-पुण्यका फेर इसे रास्तेपर नहीं ला सका।

शैशव-कालमें विवाहका प्रपञ्च, मनुष्य-जीवनका एक अवश्यम्भावी कार्य-क्रम बन गया है। आश्रम-प्रणाली आज हास्यास्पद बना दी गयी है। ठीक ही है। आज भारतीय विद्यार्थी भी ब्रह्मचर्य-अवस्थामें ही गार्हस्थ्यका मधुर आनन्द लेना चाहते हैं। विरक्त, शुष्क, तपस्यामय विद्यार्थी जीवनको वे आज रागमय, सरस शृङ्गारिकतासे आप्लावित करना चाहते हैं। वे तपोभूमिमें नवाबी विलासिताका मर्मस्पर्श करना चाहते हैं। इस घृणितरूपसे किये गये विद्योपार्जनका परिणाम किसीसे छिपा नहीं है।

पशुओंको—जङ्गली पशुओंको देखिये, न उनकी जन्म-कुण्डली मिलायी जाती है, न पुरोहित महाराज गणेश, नवग्रह, षोड़श मातृकादिकी पूजा कराते हैं, न बात-बातमें मुहूर्त ही देखा जाता है, न शुभ-लाभके चक्करमें पड़ते हैं। न बरात आती-जाती हैं, न होमादि होता है, पर उनके द्वारा प्रौढ़ सन्तानें, जिन्हें देख हम दांतों-तले उंगली दबाते हैं, उत्पन्न होती है। हम धर्मकी मखौल नहीं उड़ाते। परन्तु धर्म-भीरुताके आवरणमें विकसित होनेवाली दुर्बलता-को लक्षित करा देना चाहते हैं—जहां बात-बातमें धर्मका कचूमर निकाला जाता है।

छोटी अवस्थामें दम्पति, जो अभी स्वयं बच्चे हैं, वासनाके भयङ्कर चपेटोंमें आकर, अनभिज्ञताके कारण, मूर्खताके प्रभावसे यौन-प्रसङ्ग करने लगते हैं और परिणाम-में, अपनी बेवकूफीका—अपनी भ्रान्तिका फल समाज और राष्ट्रके मत्थे, एक दुर्बल, दीन-हीन, क्षीणकाय, रोगी, अल्पायु बालकके रूपमें थोप देते हैं।

इसमें माता-पिताका भी कुछ छिपे रूप हाथ रहता है। जब इन वृद्धोंकी विचार-लीला सामने आती है तो लज्जा और रोषसे मन मसोसकर रह जाता है। भारतवासी पुत्रोत्पन्न करना ऋणसे उद्धार पानेके मार्गका साधन

समझते थे। अतः इसके लिए वे तभी इच्छुक होते थे, जब अपनेको प्रौढ़, वयस्क और उत्तरदायित्वपूर्ण जान लेते थे। पर आज तो पुत्र श्रृङ्गारिक क्रीड़ाका फलमात्र माना जाता है। इसके लिए उत्तरदायित्व अपेक्षित नहीं माना जाता —चाहे वह फल एकसे दस ही क्यों न हो जाय—हो जाय इनकी बलासे, उनकी कामुक पिपासा तो शान्त होती है।

सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टिसे इसका परिणाम और भीषण हो रहा है। निर्बल, अयोग्य सन्तानोंकी वृद्धि निशि-दिन एक गम्भीर समस्या बनती जाती है। राष्ट्र और समाज उन्हें लेकर झंखता है। प्रति दिन हमारा धीरोदात्त वंशज अकर्मण्यता और व्यसनका शिकार बनता जाता है। एक ओर जन-संख्याकी वृद्धि और दूसरी ओर उनकी अयोग्यता, दोनों गर्हित बनते जाते हैं। गरीबीका परिणाम यह होता है कि पौष्टिक खाद्यके अभावमें माता-पिता और बच्चे अकाल-मृत्यु प्राप्त करते हैं। यदि जीवित रहे, तो मर जानेसे भी बुरी दशामें। यदि आंकड़ोंकी ओर ध्यान दिया जाय, तो और भी निराश होना पड़ता है। भारतमें लगभग १ करोड़ बच्चे प्रति वर्ष उत्पन्न होते हैं, इनमेंसे २० लाख बच्चे—मासूम बच्चे बिना मृत्यु, वर्षके भीतर ही जगतसे कूच कर जाते हैं—चारमें एक—अपने जीवनके प्रथमाब्दमें ही गत हो जाता है। इस नर-हत्याका उत्तरदायित्व किनपर है? सन्तानोत्पादनके तूफानमें रंगे हुए कामुकोंपर, अनमेल, बाल और वृद्ध विवाहके हिमायतियों पर। जिन्हें सामाजिक गतिविधिका ध्यान नहीं, जिन्हें राष्ट्रीयताका अभिमान नहीं—जिनके मस्तिष्कमें मकड़ीके जाले भरे हैं, ऐसे लोग देश-दशाका मार्मिक स्वरूप देखकर भी अन-देखे-से बने रह जाते हैं।

तत्त्वानुसन्धानके पश्चात् यह प्रश्न सहज ही उठता है कि इस कुवासना-प्रसारका कारण क्या है? आदर्शच्युत होनेके कारण प्रेमादर्श पतित हो गया है। उस प्रेमका आज एकान्त अभाव है, जिससे हम दानव बन गये हैं। आदर्श प्रणयके दार्शनिक विचारक प्लेटोकी एक अपनी प्रेम-रूप-रेखा है। वह किसीको भी अन्यथा नहीं मालूम हो सकती। "वह, जिसे जीवनमें प्रेम स्पर्श नहीं करता अन्धकारमें, भ्रान्तिमें चलता हुआ-सा है।" यह प्लेटोकी प्रेम-भावनाका सन्देश है। जिसका आदर्श विकारोंसे मुक्त होकर विभुताका संस्पर्श और आलिङ्गन, मूर्तसे अमूर्त हो उठना, स्थूलसे सूक्ष्मके प्रति ललकना, रक्त-मांस-सौरभसे उभर कर भाव-सौन्दर्यकी अतुल स्नेह-राशिमें डूब जाना है।

इटलीके महाकवि दान्तेने रणक्षेत्रके नरसंहारी अनिवार्य सैनिक जीवनसे उलझकर उस महामानवकी दृष्टि पायी कि उसने विट्रिस नामकी एक ९ वर्षीया साइसजादी, बालिकाको प्रथम बार देखा और १८ वर्षकी दो अन्य स्त्रियोंसे घिरकर, सड़कके दूसरे किनारे मात्रसे सलज्ज नत नमस्कार करते हुए दूसरी बार देखा और बस...। जीवनमें फिर कभी स्त्रीको देखना तक नहीं हुआ। इतने रूप-दर्शन भरसे दान्तेने जिस अनुपम ग्रन्थ 'डिवाइन कामेडिया'की रचनाकी, उसके दिव्य प्रकाशकी प्रेरणा-किरणें मानों शताब्दियोंकी तह चीरती हुई स्फुरित हो रही हैं। यह था दिव्य प्रणयका परिणाम। यही प्रतिध्वनि हमारी तपोभूमियोंसे भी आती है। इस आदर्शकी सामान्य-भावभूमिपर प्रतिष्ठा हो जानेसे, वासनाका व्यग्र रूप आप ही संयमके क्षितिजमें विलीन हो जायेगा। आज इसीकी अपेक्षा है।

युवकोंको आज वीतराग-भावना क्षेत्रका भावुक बनना चाहिए। नारीके त्याग, स्नेह, सेवाकी ऊष्मामें जब हम यह विकार-ग्रस्त देह निर्लिप्त भावसे दाबकर जीवनकी सांस लेंगे, तब अन्धकार—चाहे वह धर्मका हो, चाहे रूढ़िका हो, चाहे अज्ञानका हो—क्षणभरमें दूर हो जायेगा। मानव-रचनाका अधिकारपूर्ण विकास ही तब, परिलक्षित होगा और पारस्परिक अज्ञानाकर्षणकी लिप्सा शान्त हो जायेगी। मातृ-देव और पितृ-देवकी आभ्युदयिक कल्पना आदर्श क्षेत्रकी न रहकर वास्तविक जगतकी बन जायेगी।

उपर्युक्त विवेचनके पश्चात् यह कहनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि इस प्रकारकी अनधिकार और असामयिक चेष्टासे न केवल जातीय शौर्यका ह्रास होता जाता है, वरन् एक दुरूहतर और व्यापक प्रश्न उपस्थित होता जाता है। देशमें वैयक्तिक और सार्वभौमिक उद्योगोंके सम्पादित होते रहनेपर भी जन-संख्याका जो भीषण रूप लक्षित होता है, वह अन्यमनस्कताके भावसे अवहेलित होने योग्य नहीं। उसका हल निकालनेमें विद्वानोंमें मतैक्य नहीं हो सका है, पर इतना तो निश्चित हो गया है कि इस अव्यवस्थित वृद्धिको अनिवार्य नियन्त्रणकी शरण देना आवश्यक है। नियन्त्रणकी मर्यादा भारत-जैसे देशमें, अर्वाचीन भारतमें, जितनी वैधानिक प्रक्रिया द्वारा प्रतिष्ठित न हो सकेगी, उससे अधिक आदर्शात्मक नैतिकताके आधारपर होगी। भारत आज इसे भूल चुका है। हमारी दृष्टिमें स्मृतिकार

मनुकी ही आज्ञा सर्वमान्य बनाकर देशकी रक्षा की जा सकती है।

अंगरेजीके प्रसिद्ध विद्वान लेखक और तत्त्ववेत्ता माल्थस महाशयने संसारमें प्राणी-वृद्धिका जो सबसे बड़ा कारण बताया है, उसकी मान्यता विद्वानोंमें आज भी यथार्थ रूपमें बनी हुई है। वे लिखते हैं—'जीवन धारण करनेके लिए प्रकृतिने जितना आहार प्राणियोंको प्रदान किया है, उससे अधिक प्राणि-मात्रमें अपनी संख्या बढ़ानेकी चेष्टा है।'

वनस्पति तथा जीव-मात्रमें स्वभावसे ही अधिकाधिक बढ़नेकी शक्ति है। यदि वे एक दूसरेकी वृद्धिमें बाधक न हों और यथावत् खाद्य उपलब्ध होता जाय, तो थोड़े दिनोंमें उनके प्रसारकी सीमा न रह जाय, और खल्वाट भूतल-हरित तृण-राशिकी स्मित प्रभासे आच्छादित हो जाय। ठीक यही दशा मानव-प्राणीकी है।

वनस्पति तथा ज्ञानरहित पशुओंमें मनुष्यकी भांति सदसत्का विवेक नहीं। उनमें प्रज्ञाका स्थूल रूपमात्र है, पर मानव विवेक-सम्पन्न है। बुद्धिमान है। उसका दायित्व व्यापक है। उसे ऐसी वृद्धिको रोकना चाहिये, जिसके समुचित आहारका प्रबन्ध न हो सके, या जो वृद्धि ही स्वयं पुष्ट न हो। अमेरिकाके उत्तरी रियासतोंमें बस्तियां नयी होनेके कारण, भूमि बहुत उर्वरा थी और खाद्यपदार्थ अधिकतासे उपजते थे; वहांके निवासियोंमें दुष्कर्मकी मात्रा भी बहुत कम थी। २५ वर्षमें आबादी दूनी हो जाती थी। कुछ रियासतोंमें, जो पीछेसे आबाद हुई थीं, आबादीके दूने होनेमें केवल १५ वर्ष लगते थे, कुछमें तो १२ वर्ष ही। यदि २५ वर्षको ही प्रमाण माना जाय, तो हमारी कल्पनाको, पर्याप्त भारतीय जन-संख्याकी गति-विधि स्थूल रूपसे देखनेपर इतनी तीव्र नहीं लक्षित होगी, पर यदि ऊपरके आंकड़ेका ध्यान रखा जाय, तो सन्देहका अवकाश नहीं रह जाता; क्योंकि अन्यान्य कारणोंसे, जिनमेंसे कुछकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, अकाल-मृत्यु और शिशु-अवसानकी संख्या अधिक हो गयी है, इससे अमेरिका की रियासतोंके आंकड़े स्पष्ट नहीं हो सकते। क्या इस वर्तमान प्रश्नका उत्तर देना समाजका कर्तव्य नहीं है? इस प्रकारकी अवहेलना निकट भविष्यमें ही पूर्ण घातक सिद्ध होगी।

वास्तवमें यदि विषयके अनुरूप हल उपस्थित किया जाय, तो यह कहनेमें सङ्कोच नहीं कि सन्तानकी लालसा व्यसनका परिणाम नहीं, वरन् परमार्थ दृष्टिसे इतर लोक-का सहायक-साक्षी होना चाहिये। इस प्रकार सन्तानका दायित्व हम लोगोंपर अवश्य बना रहेगा। जो व्यक्ति स्वयं निर्बल और अयोग्य हो, उसे राष्ट्र, समाज, तथा अपने हितकी दृष्टिसे जन-संख्या वर्धनके कार्यसे अवकाश ले लेना ही उचित है। सक्षम व्यक्ति भी अपनी क्षमताके ही समानुपातसे इस प्रक्रियामें लगें। असामयिक चेष्टायें बन्द की जायें, तो क्या इस प्रकारका व्यक्तिगत नैतिक अवरोध जातीय उत्थानमें कम महत्वपूर्ण होगा?

ट्रैजेडी और कौमेडी

(एकांकी नाटक)

श्री छेदीलाल गुप्त

[चितरञ्जन एवेन्यूके बड़े-चौड़े पीचके प्रशस्त और चमकीले पथपर एक पञ्चमञ्जिले भव्य बिल्डिङ्गकी तीसरी मञ्जिलका कमरा, जिसकी खिड़कियां रास्तेकी ओर पड़ती हैं; कमरा, कुछ मामूली गृहस्थीकी चीजोंसे सुसज्जित, माडर्न ढङ्गका है। एक ओर एक बड़ी-सी मेज पड़ी है, जिसके इर्द-गिर्द कुर्सियां भी रखी हैं। दूसरे कोनेमें एक मामूली पलंग पड़ा है, उसी कोनेकी दीवारसे लगी दो आलमारियां खड़ी हैं। एकमें तो शायद कपड़े पड़े हैं। दूसरीमें किताबें चुनी हैं। मेजपर मामूली पढ़ने-लिखनेके सामान पड़े हैं, जिनमें एक दावात, अस्त-व्यस्त कई कलमें, एक ब्लाटर और एक ट्रे है, जिससे अब भी जली हुई सिगरेटका धुंआ निकलकर लोप होता जा रहा है।

दरवाजेके ठीक सामने यानी मेजके पासकी कुर्सीपर एक पतले-दुबले गोरे रंगका युवक गम्भीरतासे घिरा बैठा है। युवकका नाम अमर है।

अभी-अभी बन्द दरवाजेपर किसीके दस्तक देनेकी आवाजसे वह दरवाजेकी ओर आकर्षित हुआ है। अप्रतिभ-सा उठा और दरवाजे तक जाते-जाते बोला।]

अमर—कौन? (दरवाजा खोल लेनेपर) ओ, आओ!

[एक क्षीण मुस्कुराहट उसके होंठोंपर बिखर गयी। शायद उस मुस्कुराहटमें अपनी झिझकको छिपानेका प्रयास उसने किया। श्यामा सकुचाती हुई सिरसे सरक गयी साड़ीको सम्हालती हुई कमरेमें आकर सस्मित खड़ी रही और अमरने पूर्वकी भांति दरवाजा अन्दरसे बन्द कर लिया। लौटते हुए ही उसने कहा।]

अमर—कहिये, मेरे लायक जो सेवा हो.........आज कई दिन मुझे आये हो गये, पर आपसे चन्द बातें करनेका मौका आज ही पा सका हूं। जबसे आया हूं, पिताजीसे तुमको कई बार पूछ चुका। पिताजीने भी केवल कहा ही, लेकिन इसे किया आज। तो चलते-चलते सेवा कर लूं.........

श्यामा—सेवा! आप करेंगे? यह तो मेरे लिए है...

अमर—(तनिक हंसकर) जी, यह आप कैसे कह गयीं? आपका ख्याल गलत हो सकता है।

श्यामा—(बीचमें ही) हो सकता है; पर है नहीं। मैं ठीक हूं, मेरा ख्याल भी ठीक है, गलत नहीं, इसलिए कि नारी विवाहके बाद, दासी होकर पुरुषसे सहायताके रूपमें कुछ पाकर जीती रहती है।

अमर—तो आप कहना यह चाहती हैं कि यह अनुचित है?

श्यामा—अवश्य, आप सहमत नहीं दीखते?

अमर—मैं सहमत होऊंगा भी नहीं।

श्यामा—नहीं क्यों?

अमर—नहीं इसलिए कि नारी जिस रूपमें सेवाका भार ग्रहण करती है, उसे दासी-वृत्ति कहा ही नहीं जा सकता। आप उस मर्मको अनुभव नहीं कर रही हैं शायद। आप ही क्यों, आजकी दुनियामें बसनेवाली नारी ही अनुभव नहीं कर पाती और वह इसलिए कि वह अपनी स्वतन्त्रताकी मांगमें सफल हो चुकी है। (क्षण भरके लिए चुप होकर) शायद आप 'जैनेन्द्र'की सुनीतासे परिचित नहीं हैं? और रवीन्द्रनाथके 'एला' को भी नहीं पढ़ा?

श्यामा—दोनोंसे मैं परिचित हूं—सुनीता और एलासे भी।

अमर—सुनीता गृहिणी है—श्रीकान्तकी हर इच्छाकी पूर्ति करती है; यहां तक कि वह हरिप्रसन्नके आगे तन भी अर्पित करती है? वह भी एक नारी है, पर वह अपनेको दासी नहीं समझती। और 'एला' भी एक नारी है, अतीनको प्यार करती है, अतीन उससे प्रेरणा पाता है। शायद प्यार भी करता है, इतना कि अपने उद्देश्यों को भूल जाता है और तब वही नारी, एला क्लोरोफार्मका टावेल उसके मुंहपर रख देती है, नागिन!

(कमरेमें निस्तब्धता छा जाती है)

अच्छा, आप यह बता सकती हैं कि आप किस अवस्थामें खड़ी हैं अथवा सुनीता किस संज्ञासे सम्बोधित होती है और वह क्यों उसी संज्ञासे सम्बोधित की जाती है?

श्यामा—(जैसे ऊब चुकी हो) मैं जिस अवस्थामें खड़ी हूं उसे तो ......नहीं नहीं, यह आप क्यों पूछ रहे हैं, मैं जो हूं, सो आपके सामने हूं और सुनीताको मैं कहूं तो पत्नी ही कहूं, हरिप्रसन्नके अनुकूल होकर

जीनेके ही कारण।

अमर—मान लीजिये आपका भी विवाह हो जाय, तब तो आप किसीके अनुकूल होकर जीयेंगी, जीयेंगी न ?

श्यामा—(तिलमिलाकर) जीना ही पड़ेगा।

अमर—पड़ेगा ही नहीं, आप जीयेंगी...

श्यामा—(बीचमें ही झल्लाकर) लेकिन मैं समझती हूं कि इच्छाके विरुद्ध अगर कुछ होता है, तो वह पाप है, गुलामी है।

अमर—(उत्तेजित होकर) पर आप याद रखिये कि मेरी ओरसे किसी भी तरहका दबाव अथवा खिंचाव आप नहीं पा सकतीं। श्यामा, मैं नहीं चाहता कि तुम दासीपनको महसूस करो। मैं नहीं चाहता कि तुम मुझसे बोझिल होकर जीवनको नीरस और कलहमय बना लो। मैं यह जानता हूं कि तुम मेरे चिरपरिचित मित्र, जिसको मैंने आत्मीयता प्रदान की है, उसे ही, नायकको ही......(इसके आगे वह नहीं कह सका; मानों उसके लबोंपर किसीने उंगली रखकर कह दिया हो—चुप !) मैंने भी तुम्हें प्रेम किया था, कोशिश की थी कि उस युगकी दौड़में आगे आऊं, पर केवल अपनी भावुकतावश होकर। आज हमें यह समझ लेना होगा कि संसारकी सभी नारी—नारी है और संसार एक स्टेज, जिसपर मैं, तुम, नायक-जैसे कितने ही पात्रोंका आवागमन होता है। मैं जब जिसको जिस अवस्थामें पाऊंगा, तब उसे वही समझूंगा। जैसे बचपनमें एक नारी मां बनकर ममत्व दे गयी, एक नारी बहनके रूपमें निष्कलङ्क प्रेमका परिचय दे गयी और इस अवस्थामें एक और नारीका स्वागत करना पड़ेगा—वह होगी पत्नी !

(अमर कहते-कहते चुप होता है और श्यामा ठक् खड़ी रह जाती है ; जैसे उसे काठ मार गया हो)

अमर—श्यामा ?

(श्यामा चौंकती है; मानों सोयेसे जागी हो) !

अब तुम जा सकती हो। इसी स्पष्टीकरणके लिए मैंने तुम्हें बुलवाया था। (कलाईकी ओर देखकर) अभी नायक भी आने ही वाला है। मैं उससे मिलकर कलकी गाड़ीसे ही रवाना हो जाना चाहता हूं।

(श्यामा सर नीचा किये धीरे-धीरे जाती है। उसी क्षण नायक आता है। दरवाजेपर ही दोनों एक दूसरेकी आंखोंमें आंखें डाल देते हैं। क्षण-भरको श्यामा रुकती है। पुनः अपनी गतिमें चली जाती है।)

अमर—आओ नायक ! तुम आ गये, भई, कल मैं जा रहा हूं। इन दिनों जबसे मैं आया हूं, सिवा स्टेशनकी मुलाकातके बाद तुम्हारा दर्शन नहीं पा सका और जब तुम आते नहीं दीखे, तब मैंने तुम्हें तकलीफ दी, क्षमा करना।

नायक—आज कैसी बातें कर रहे हो ! तुम तो जानते ही हो, हम जिस चक्कीमें पिस रहे हैं। आखिर नौकरी ही ठहरी।

अमर—अच्छा, यह तो बताओ, तुम्हारे सामने जो आदमियोंका झमेला है, वे आदमी हैं या नहीं ?

नायक—हैं क्यों नहीं।

अमर—और, यह जो संसारको कायम रखनेवाली संज्ञायें हैं, मां-बाप, बहन-भाई, पति-पत्नी—इनमें तुम क्या हो ? तुम्हारे सम्बोधनके लिए मैं किस संज्ञाका उपयोग करूं ?

नायक—(हंसती हुई आंखोंसे उसकी ओर देखकर) निर्णय तुम्हीं करो।

(श्यामा चायका ट्रे लिये आती है। चाय बनाकर देती है। और खुद भी एक कप लेकर बैठ जाती है।)

अमर—नायक ! तुम्हारी मांको मरे आज तीन वर्ष बीत चुके, तुम्हारे पिता और मासूम बहनको भी यह दुनिया छोड़े दो वर्ष हुए होंगे। अब अकेले तुम हो और तुम्हारा सात-आठ वर्षका एक छोटा भाई। लेकिन तुम कुछ और महसूस करते हो ?

नायक—अमर ! आज तुम कैसी बातें कर रहे हो ! ऐसी बातें क्यों कर रहे हो ? सब एक रहस्य जान पड़ रहा है।

अमर—रहस्य है भी। मैं जानता हूं, तुम तो बताओगे ही नहीं। मैं ही बताता हूं, तुम महसूस करो कि तुम्हें एक पत्नीकी जरूरत है, मुनुआके लिए एक भाभीकी और हम-जैसोंके लिए एक व्यवस्थापिकाकी, जो हम लोगोंके पहुंचते ही चाय तैयार कर दे जाये और तुम जो 'मैं' होकर कोरे कागजोंपर कलम और दावातके द्वारा नारीका तन उघाड़ा करते हो, उसे सम्हालकर रखे, तुम्हें सोकर उठते ही एक चाय और दो सिगरेट और अखबारके पन्ने बिस्तरपर ही पहुंचा दे, और उस अभागे मुनुआके जीवनमें, जो बचपनसे मौन है, तुम्हारे अनुकूल होकर जी रहा है;

प्रेरणा और साहसका—सञ्चार कर सके।

(श्यामाकी बूढ़ी मां आती है।)

श्यामाकी मां—तुम क्यों जाओगे, बेटा अमर! तुम जा कैसे सकते हो?

(श्यामाके पिता भी आते हैं।)

श्यामाके पिता—कौन जाता है? कहां जाता है? क्यों जाता है? (फिर श्यामाके पास जाकर) कौन जायेगा बिटिया, किसे जानेकी आशा है।

(श्यामा लज्जासे गड़ जाती है और उसके होठोंपर मन्द मुस्कान नाच जाती है। साथ ही कई स्वरमें हास्यका ठहाका गूंज उठता है।)

अमर—बगैर मिठाई खाये कोई नहीं जा सकता, पिताजी! यह तो श्यामाकी वर्षगांठपर खेले जानेवाले नाटकका एक सीन है।

श्यामाका पिता—नाटकका सीन? बोलो तो जरा, अभी दस दिन भी आये नहीं हुआ, फिर श्यामाने भी मुझसे कुछ नहीं कहा; सिवा इसके कि तुम जाना चाहते हो। तुम्हारे पिताजीने लिखा है, वे कलकी गाड़ीसे मंगनी तय करने आ रहे हैं।

(श्यामाकी छोटी बहनका दौड़कर आना)

श्यामाकी बहन—बाबूजी, बाबूजी, कोई आया है, तुम्हें पूछता है।

(श्यामाके पिता बाहर जाते हैं। क्षणभर बाद अमरके पिताके साथ प्रवेश करते हैं।)

अमर—आजकी ही गाड़ीसे चले आये, पिताजी!

अमरके पिता—समय भी तो कम रह गया है।

अमर—हां, हां समय कम है, नायक!

(सबकी ओर अमरकी निगाह बारी-बारीसे जाती है और नायकके ऊपर जा टंगती है।)

अरे, नायक सुनते नहीं हो समय कम है। यहीं जीवन-नाटक ट्रेजेडी होते-होते कामेडी हो जाता है। चलो, इधर आओ। (श्यामाकी ओर संकेत कर) तुम भी...

(दोनों अमरके नजदीक जाते हैं। अमर अपने हाथोंमें श्यामा और नायकका हाथ लेकर मिला देता है। दूर—कहींसे शङ्खध्वनिकी स्वरलहरी गूंज उठती है और शनैः शनैः लोप हो जाती है।)

युद्ध-कालमें चीनी उद्योग-धन्धे

श्री लाड़िली नाथ रेणु, एम० ए० (आनर्स)

लोग-बागसे चीनके औद्योगिक सहकारी आन्दोलनकी बाबत बात कीजिये, वे बड़े गौरसे सुनेंगे और तारीफके पुल बांध देंगे, चीनियोंको शाबाशी देंगे और यह भी मान लेंगे कि यह बढ़ोतरीके लिए एक गजबका तरीका है। मगर जब सवाल उठाया जाता है कि आप भी ऐसे को-आप-रेटिव क्यों नहीं शुरू करते, तो बगलें झांकनेकी कोशिश की जाती है। पैदावारके लिए सब मानते हैं कि सहकारी पैदावार कमसे-कम चीनमें बहुत ही तेजीसे बढ़ती गयी है। लाभ देखिये, लाभके तो ऐसे चिट्ठे चीनकी रिपोर्ट देती है कि दङ्ग रह जाना पड़ता है। छः-छः और आठ-आठ महीनेमें कुछ समितियोंने अपना कर्जा चुका दिया था। कामकी बढ़ोतरीको देखिये, तो फूसमें आगकी तरह फैलती वह लगती है। किसी भी को-आप-रेटिवकी रिपोर्टको देखिये, उत्साह और भविष्यमें सफलताके निश्चयसे भरी हुई मिलेगी। ये समितियां कुछ कम मुश्किलोंका सामना नहीं कर रही हैं। लड़ाईके पासके मोर्चों तक जाकर कारखाना चलाना, यही नहीं, दुश्मनके कब्जेकी जमीनमें भी अपने स्वतन्त्र कारखाने चलाते रहना और उसके कम दामपर थोपे हुए मालका अपने अधूरे कल-पुर्जोंसे बनाये मालसे मुकाबला करना, कोई बच्चोंका खेल नहीं है। सिर्फ जोश ही लगातार पांच साल तक इन आदमियोंकी हिम्मतको कुचल देनेवाली अड़चनोंके सामने खड़े होनेकी ताकत नहीं दे सकता। इसमें क्या सङ्गठनका, जिसकी नींवपर यह औद्योगिक ढांचा बनाया गया है, उस नींवकी मजबूतीका और इस तरीकेमें जो नयी शक्ति देनेकी कूवत है, उसका कुछ महत्व ही नहीं है?

जो लोग इस बातकी नुक्ता-चीनी करते हैं कि ऐसा आन्दोलन दूसरे देशोंमें भी फैलाया जा सकता है, उनका सबसे पहला सवाल उठता है, चीनकी हालतपर। चीन आज लड़ाईमें फंसा हुआ है। लड़ाईके लिए उसके पास पहलेसे कोई तैयारी न थी। यही नहीं, वह वर्षोंसे आपसके झगड़ोंमें फंसा हुआ था। विदेशी लोग अपने-अपने प्रभावके

दायरोंमें उसको बांट बैठे थे। उसमें अनेकों राजनीतिक दल थे, जो एक-दूसरेको काटनेके लिए तैयार थे। उसके थोड़े-से उद्योग थे, जो सन् १९३७ में ही ९० फी सदी खत्म किये जा चुके थे। उसके पास तोपें न थीं, बन्दूकें न थीं, टैंकें न थीं, हवाई जहाज न थे, फौजी सामान तैयार करनेके एक-दो कारखाने थे, जो जापान-जैसी बड़ी शक्तिसे लड़नेके लिए और उसके अनेकानेक आधुनिक हथियारोंका सामना करनेके लिए सामान बना सकनेमें करीब-करीब नहीं-जैसे ही थे। चीन स्वयं अपने मालकी पूर्तिके लिए दूसरे देशोंपर निर्भर रहता था। अपने कच्चे मालकी खपतके लिए उसे दूसरे देशोंकी ओर ताकना पड़ता था। उसका एक बहुत बड़ा भाग सदियों पुरानी नींदमें सोया हुआ था और ऐसे अन्धकारमें छिपा हुआ था कि उसको अपने पड़ोसियों तककी खबर न थी और वह किसी भी नयी चीजको अपनाना अपने लिए तुच्छ समझता था। चीनको बाहरके देशोंपर न सिर्फ लड़ाईके सामानके लिए निर्भर रहना था, बल्कि अपने रोजमर्राके सामानके लिए भी।

जब सहकारी समितियां चालू की गयीं, तो फौज उनकी एक बड़ी खरीदार बन गयी। फौजका खर्चा आम जनताके खर्चेसे ज्यादातर दुगुना पड़ा करता है और यातायातमें, दुश्मनोंके धावोंमें बहुत काफी सामान बर्बाद भी हो जाता है। सहकारी समितियां फौजके लिए सामान बनाती हैं, मगर काफी नहीं। उनके सामने यह बड़ा प्रश्न था, अगर वे सिर्फ फौजके लिए सामान बनाती रहें, तो अपनी नींव वे कैसे मजबूत करेंगी। जब लड़ाई बन्द हो जायेगी, उस वक्त तक अगर इनका बाजार आम जनतामें जम न गया, तो बादमें जमना बड़ा मुश्किल हो जायेगा। उनके खिलाफ चीनमें यह बड़ी आलोचना रही है कि वे नागरिकोंके लिए हर रोजकी खपतका सामान तैयार करनेमें लगी रहती हैं और लड़ाईका सामान सिपाहियोंकी मददके लिए नहीं तैयार करतीं। दूसरी ओर यह भी कहा गया है कि ये लड़ाईके लिए कम्बल, डाकरी रुई, गाज वगैरह बनानेमें ही इतनी लगी रहती हैं कि ९० फी सदी तक इनका माल फौजको ही चला जाता है। चीनकी फौजको तो अब भी अपने जरूरी सामानका बड़ा भाग जापानी फौजोंपर धावे मार-मार कर और उनसे लड़कर लेना पड़ता है। चीनी सिपाही तो अब भी गर्वसे कहते हैं कि हमारा गोदाम और तोपखाना तो जापानी फौजें हैं, जो जब हम चाहते हैं, हमको सामान देती रहती हैं।

दूसरा कारण जो चीनी उद्योगोंकी बढ़ोतरीके लिए बताया जाता है, वह है किसी भी दूसरी तरहके मालका चीनमें न होना। चीनके समुद्री किनारेको छोड़कर पीछेके बड़े हिस्सेमें कोई बड़े कारखाने नहीं बने थे। समुद्री किनारेके कारखानोंको जापानने नष्ट कर ही दिया था। धीरे-धीरे वह बाहरसे सामान लाने और ले जानेके सारे रास्ते भी बन्द करता जा रहा था और दूसरे देश भी, बातें कितनी ही करें, मगर चीनको मदद देनेके लिए ऐसे कुछ ज्यादा उतावले नहीं थे। जब औद्योगिक सहकारी समितियां चलीं, तो उनके सामानकी मांग चारों ओर थी। फौजको सामान चाहिए, नहीं तो वह लड़ कैसे सकेगी, उसकी हिम्मत कैसे बंधी रहेगी। सरकारको सामान चाहिए, आम जनताको सामान चाहिए। चारों ओर उनके सामानकी मांग थी। पैदा करते देर लगती थी, खपत करते नहीं। जो भी चीज बन जाती, उसके दुगुने और चौगुने दाम आसानीसे मिल सकते थे। देखनेको तो इनके सामानके लिए खुला बाजार तैयार था, मगर यह बिलकुल सच न था। जापानी कब्जेकी जमीनमें जापानी माल सिर्फ सामना करने ही नहीं आ रहा था, बल्कि जबर्दस्ती सिरपर थोपा जा रहा था। स्वतन्त्र चीनमें भी बहुत काफी जापानी माल छुपा-छुपाकर अन्दर घुसा दिया जाता था; फिर भी यह स्पष्ट है कि लड़ाईकी हालतकी वजहसे औद्योगिक सहकारी आन्दोलनको बढ़नेमें आसानी हुई।

कच्चा माल बहुतायतमें मौजूद था। लोहा, कोयला, अन्य धातुयें, रुई, ऊन, चमड़ा, तेल, जिस चीजकी जरूरत हो; बड़ी मिकदारमें मौजूद थी, कोई दूसरा उनका खरीदार न था। अगर किसी चीजकी जरूरत थी, तो उनको इस्तेमाल करनेवाले कुशल कारीगरोंकी और उनके औजारोंकी। औजारोंका सवाल जरूर बेढब पेश था और शुरुआत पुराने ढर्रोंसे करनी पड़ी थी। मगर उनका भी माल बिकनेमें दिक्कत नहीं पड़ी।

औद्योगिक सहकारी आन्दोलनको शरणार्थियोंकी एक बहुत बड़ी संख्या काम करनेको मिल गयी थी। ये लोग जापानियों द्वारा कब्जा किये जानेपर अपने प्रान्तोंको छोड़-छोड़कर अनजान जगहोंमें आ पहुंचे थे। बहुतोंके पास रुपया न था। बहुतोंके पास औजार तक न थे, इनमें बहुतसे कुशल कारीगर भी थे। मगर अनजान जगहोंमें काम मिलना आसान चीज नहीं है। जिस समय आन्दोलन शुरू किया जा रहा था, तब सञ्चालकोंका खयाल

था कि जल्दीसे-जल्दी चीनकी मिलोंसे निकाले गये बेकार कुशल कारीगरोंको उपजके काममें सङ्गठित कर दें, इससे पहले कि जापानी लोग उनके हुनरका फायदा उठा सकें या भूख या गरीबीकी वजहसे मौत और बीमारियोंके चक्करमें फंसकर वे अपने हुनरको खो दें। आन्दोलन जितना जल्दी चल सकना चाहिए था, उतनी जल्दी न चल सका और उसका नतीजा यह हुआ कि कुशल कारीगर अधिक संख्यामें जापानियोंके साथ काम कर रहे हैं। अन्दरकी जगहोंमें कुशल कारीगरोंकी कमी है और शङ्घाईमें मजदूरोंका बाजार भरा पड़ा है। सन् १९३७ में करीब-करीब २० लाख चीनी कारीगर मिलोंमें काम कर रहे थे। इनमेंसे अब ज्यादातर शहरोंमें बेकार पड़े हैं। अन्दर जा सकना उनके लिए बड़ा मुश्किल है; हालां कि कुछ फौजमें भरती हो गये हैं, कुछ आसपासके खेतोंमें काम करने लगे हैं और कुछको शङ्घाई और दूसरे शहरोंमें फिर काम मिल गया है। शरणार्थियोंका अन्दाजा ३० लाखसे लेकर १ करोड़ ५० लाख तक लगाया जाता है। इन्डस्को (सहकारी समितियोंके सङ्घ) में काम करनेवालोंमें करीब ५० से ६० फी सदी तक कारीगर शरणार्थी हैं और बाकी स्थानीय बेकार पुरुष और औरतें हैं।

शरणार्थियोंके साथ-साथ इस आन्दोलनमें अपाहिज सिपाही भी बहुतायतसे मिलते जा रहे हैं। वे लोग फौजमें मिलकर काम करना सीखकर आते हैं और उनके लिए समिति चलाना बहुत ही आसान रहता है। अपाहिज होते हुए भी वे बहुतसे हुनरके काम कर सकते हैं।

चीनकी सरकारने औद्योगिक सहकारी आन्दोलनको शुरूसे ही मदद दी है। उसने उनको राजनीतिक दलोंके कब्जेमें फंसनेसे बचाया है। एक तिहाईके करीब उसने अपनी पूंजी लगायी है और उसीकी वजहसे बैंकोंकी भी बड़ी पूंजी मिल सकी है। समितियोंके सङ्गठनमें और उनकी बढ़ोतरीमें भी सरकारने हर तरह मदद की है। सङ्गठनका काम यों तो सरकारसे बिलकुल स्वतन्त्र है, मगर जगह-जगहपर बढ़नेमें जो प्रान्तीय और स्थानीय अधिकारी आम तौरपर मुश्किलें पैदा करते रहे हैं, वे अड़चनें सरकारके हाथकी वजहसे ही जल्दीसे-जल्दी दूर की जा सकी हैं। फिर भी यह काम बिना विरोधके नहीं बढ़ सका है। उदाहरणके तौरपर निमवेल्स अपनी किताब 'चाइना बिल्डस फार डिमाक्रेसी' में एक जगह लिखता है—"कुछ विदेशी दाताओंने पचीस हजार डालर इकट्ठा किया और यह सुनकर कि शान्सीके मोर्चेपर हैण्ड ग्रेनेड (एक विशेष प्रकारका काम) की बहुत जरूरत है, उसके बनानेकी एक सहयोग समिति शुरू करनेके लिए यह रुपया भेजा। स्थानीय फौजियोंने इसकी मंजूरी देनेसे इनकार कर दिया और यह खयाल छोड़ना पड़ा। हालांकि शान्सीमें यह काम बनानेके लिए सब जरूरी कच्चा माल बहुतायतसे मौजूद है और उसकी लागत बहुत ही सस्ती पड़ती है।" चांग-काई-शेक और उनकी सरकार इस आन्दोलनके महत्वको जानती है और इसकी बढ़ोतरीको बड़े शौकके साथ देखती रहती है। चीनके कम्यूनिस्ट भी अपने अधिकारके हिस्सोंमें आन्दोलनकी सहायता करते रहे हैं और हालमें तो उन्होंने समितियोंको अपने पुनर्निर्माण-विभागका एक हिस्सा बना लिया है।

एक और कारण जो इस आन्दोलनकी बढ़ोतरीका रहा है, वह इसके सञ्चालक-कार्यकर्त्ता हैं, ये लोग बड़े-बड़े फायदेकी जगहोंमें होते हुए भी देश-सेवाकी भावनामें अपने कामोंको छोड़कर आन्दोलनका काम हाथमें लेनेको चले आये हैं। इन लोगोंमें एक सामाजिक चेतना भरी हुई है और उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील है। उनमेंसे ज्यादातर अमेरिकामें सीखे हुए वे चीनी हैं, जिन्होंने अमेरिकन तरीके अख्तियार कर लिये थे। उनको अमेरिकन खाना, अमेरिकन कपड़े और अमेरिकन तरीके अच्छे लगते हैं; फिर भी आज वे गांवोंमें अपने देशवासियोंकी तरह पुरानी चालोंको अख्तियार करके रह रहे हैं। भाग्यवश उनकी शिक्षाने अपनेको अपनी दशाके अनुसार बदलनेकी शक्ति नष्ट नहीं की। उन लोगोंमें कामचलाऊ चीजें बनाने और नये-नये तरीके निकालनेकी एक तारीफ करने लायक कूवत है। काम करनेमें अपने तन मनको वे भूल जाते हैं, उनमें आशा और विश्वास भरा हुआ है और उनके साथ है हेवी ऐली, वह न्यूजीलैंडका रहनेवाला जिसने चीनको अब अपना घर बना लिया है, जो चीनके कोने-कोनेमें घूम चुका है और जिसमें आगे बढ़नेकी एक लगन है, जो हर आदमीमें, जिससे उसका वास्ता पड़ता है, साहस पैदा कर देता है। सहकारका काम उसने बचपनसे सीखा है। उसके पिता अपने देशमें यह तरीका फैलानेकी कोशिश कर रहे थे, आज उसको चीनमें यह अमूल्य मौका मिला है। यह उसके लिए कसौटी है। यद्यपि ये आदमी कुशल और उत्साह-भरे हैं, फिर भी आन्दोलनमें कुशल नेताओंकी कमी है। शिल्प-कुशल कार्यकर्ताओंकी कमी सहकारी समितियोंके सामने एक बड़ा सवाल रही है और खास तौरसे, जब कि वे बड़े-बड़े वेतन

देकर समुद्र-तटके इञ्जिनियरोंको रख नहीं सकते हैं।

चीनके इस आन्दोलनने करीब-करीब उद्योगोंके सभी भागोंमें पैर फैला दिये हैं। सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े, चमड़ेका काम, धातुका काम, मशीन बनानेका काम, खानोंका काम, रसायनिक वस्तुएं, दवाइयां, स्टेशनरी, मिट्टीका सामान, टूथब्रुश, सिगरेट, लैम्प, हैट, ट्रङ्क, छतरी वगैरह जरूरतकी चीजें सब सहकारी समितियों द्वारा बनायी जा रही हैं। लोग कहते हैं कि चीनी कारीगर ज्यादा हुनरमन्द होता है, इस वजहसे इतनी जल्दी इस आन्दोलनकी इतनी बढ़ोतरी हुई है। थोड़ेसे चीनी कारीगर ज्यादा हुनरमन्द हों, मगर मामूली मजदूर किसी दूसरे देशके मजदूरसे अधिक कुशल होगा, यह तो एक बहसका सवाल होगा। मि० सी० एफ० ट्रिकलेण्ड तो यहां तक लिखते हैं कि चीनी किसानोंकी तीन खासियतें हैं—(१) उनकी ईमानदारी, (२) उनकी व्यवहार-बुद्धि और (३) उनकी जातीय भावना। मैंने यूरोपमें ऐसे बहुत कम देशोंको देखा है और एशियामें तो एक भी नहीं, जहां थोड़ेसे किसानोंको, जिनको पहले कोई शिक्षा नहीं दी गयी है और बादमें भी जिनको काम चलानेका कोई खास रास्ता नहीं दिखाया जाता है, रुपया कर्ज दिया जाय और वह इतने वाजिबी तौरपर बांटा जाय, ऐसे वक्तपर अदा किया जाय और इतना कम हड़पा जाय, जितना कि होपोई प्रांतके सहयोगी किसानोंमें। चीनी कारीगरोंकी कुशलताकी बात चाहे कुछ भी हो, चीनकी हालतके बाबत एक चीनी रिपोर्टमें लिखा है कि उत्तरमें गेहूं, दक्षिणमें चावल,—छोटे गांव—अपर्याप्त यातायातके साधन—किसानी दस्तकारियां—अपने वातावरणमें ही सिकुड़े हुए, बाहरसे बन्द, शान्तिप्रिय, सन्तुष्ट—यह है परम्पराका चीन, वह चीन सदियोंसे वैसाही चला आ रहा है।

मगर क्या आन्दोलनकी सफलता इन बाहरी सहूलियतोंपर निर्भर रही है। चीनके औद्योगिक सहकारी आन्दोलनने छोटे पैमानेके कारखानोंको बड़े पैमानेके संगठनके साथ बांध दिया है, इसने छोटे-छोटे उद्योगोंकी एक दूसरेसे बनी हुई ऐसी लड़ी फैला दी है, जो पूर्ति, यातायात और खरीद-फरोख्तका एक नया तरीका बनाती जा रही है और जालकी तरह सारे देशमें फैलती जा रही है। छोटे पैमानेके निजी कारखानेका भविष्य चीनमें शायद छोटा हो, मगर सहकारी उपज और वितरणका फैला हुआ जाल एक दूसरी चीज है। इसका मतलब है, बड़े पैमानेपर उत्पादन; मगर एक छतके नीचे नहीं, एक संगठनके द्वारा, जिसमें छोटे-छोटे अपना इन्तजाम आप करनेवाले कारखानोंका समूह हो। चीनी प्रांतोंका आजकलकी हालतमें, जब कि माल एक जगहसे दूसरी जगह ले जानेके लिए सवारियों और सड़कोंकी बहुत कमी है और बड़ी मुश्किलें हैं और जब कि मण्डियां बहुत दूर-दूरपर एक दूसरेसे अलग-अलग हैं, यह तरीका सबसे अच्छा है। चेङतूमें १९४० में ५१ सहकारी समितियां थीं, जिनमें ५१६ कारीगरोंने काम किया। उनकी पूंजी २५,५०० डालर थी और वे हर महीनेमें १८ हजार डालरका सामान तैयार कर लेते थे, काफी बड़ा कारबार हो गया।

एक खासियत जो चीनी आन्दोलनकी है, वह है उपज और खपतको स्थायी बना देना। कोई समिति शुरू करनेसे पहले यह देखनेकी कोशिश की जाती है कि कच्चा माल आसपासमें ही मिलता है कि नहीं। कुशल कारीगर, जो उस कामके लिए चाहिये, उसी स्थानपर मिलते हैं या नहीं। और जब माल तैयार हो जाय, तब माल खपानेके लिए बाजार पास है या नहीं। जहां तक होता है कोशिश इसी बातकी की जाती है कि दोनों चीजें पासमें ही मिल जायें। न सामान बहुत दूरसे लाना पड़े और न बहुत दूर ले जाना पड़े। इससे बाहरके बने मालसे होड़ करनेकी जरूरत नहीं रहती। खपतसे ज्यादा पैदावारका भी डर नहीं रहता और एक जगहको दूसरी जगहका आसरा नहीं लेना पड़ता। अगर ये तीनों चीजें—कच्चा माल, कारीगर और बाजार—एक ही जगह नहीं मिलती हैं, बल्कि इनमें कोई दो मिल जाती हैं और तीसरी किसी दूसरी जगह लानी पड़ती है, तो भी समिति चला ली जाती है। मगर जरूरी हुआ तब ही।

काम जब शुरू किया जाता है, तब कारीगरोंकी हैसियतमें जो औजार वे अब तक इस्तेमाल करते आये हैं और जिन तरीकोंपर उन्होंने अब तक काम किया है, वह चाहे कितना ही पुराने ढर्रेका क्यों न हो, शुरुआत उसीपर की जाती है, ताकि शुरूसे ही नये तरीके सीखनेकी दिक्कतकी वजहसे कारीगर लोग सहयोगके तरीकोंको ही मुश्किल न समझने लगें। बादमें उन लोगोंको बता दिया जाता है कि नये तरीके क्या-क्या हैं और किस-किस तरहसे वे अपने कामको कमतीसे कमती समयमें कमतीसे कमती शक्ति लगाकर ज्यादा पैदा करनेवाला बना सकते हैं। कारीगर लोग कौन-सा तरीका और कब अख्तियार करें, यह उन्हींपर

छोड़ दिया जाता है। अपने आदर्शके लिए उन लोगोंपर जबर्दस्ती नहीं की जाती।

आन्दोलनके कार्यकर्ता ज्यादातर कुशल इञ्जिनियर हैं, जो अपनेको जरूरतके मुताबिक ढालना जानते हैं और जो वातावरणको भी प्रगतिशील ढरेंमें ढालना जानते हैं। वे शुरुआत दूसरोंके तरीकेसे करते हैं, मगर उनका ध्येय आधुनिक सभ्यताके नये-से-नये तरीकेको इस्तेमाल कर सकना रहता है। हर समितिमें वे धीरे-धीरे पैदावारके तरीकोंको एक योजनाके अनुसार आगे बढ़ाते चलते हैं; बहुतसे स्थानोंपर इसके लिए कारीगरोंको सिखाना पड़ता है। बहुत-सी जगह साधन न होनेके कारण नये-नये तरीके निकालने पड़ते हैं। लकड़ीकी मशीनें बनानेकी कोशिश की जाती है, मिट्टीके ढांचे बनाये जाते हैं, बांसके टांड बना लिये जाते हैं, जब लोहा मिल जाता है तो लकड़ीकी जगह लोहा ले लेता है। पानीके झरनोंसे बिजली तैयार करनेकी कोशिश की जाती है। हर समितिके औजारोंको ज्यादासे ज्यादा अच्छा करनेकी कोशिश की जाती है।

आन्दोलन-समितिको कारीगरोंपर, गांववालोंके स्वाभाविक सीधेपनपर, उनके हाथोंके हुनरपर, उनके काम करने की इच्छापर पूरा भरोसा है, उनको हर तरहकी सहूलियतें देनेकी कोशिश की जाती है। बिना किसी जमानतके रुपया दिया जाता है, बिना किसी फीसके सलाह दी जाती है, एक ध्येय हमेशा उनके सामने रहता है कि समिति और उसके कार्यकर्त्ता इन लोगोंके भाई-बाप न बन जायं, बल्कि इनको अपने पैरोंपर खड़ा कर दें। समितिका सारा इन्तजाम मेम्बरोंपर ही छोड़ा जाता है, आन्दोलनके सङ्गठनकर्त्ता आते हैं, देख जाते हैं, कभी कोई झगड़ा हुआ तो निपटारा कर जाते हैं, मगर समितिके काममें दस्तन्दाजी नहीं करते।

ये समितियां प्रजातन्त्रीय हैं, इनमें सब सदस्योंको बराबर हक है। हर एकको एक ही मत देनेका अधिकार है। हर आदमी, जो पूरे दिन समितिमें काम करता है, उसका मेम्बर होता है, मगर जो आदमी उसमें काम न करता हो, वह उसका मेम्बर नहीं हो सकता। किसी भी एक मेम्बरको २० फी सदीसे ज्यादा हिस्से नहीं मिल सकते। समिति अपने डायरेक्टर्स अपने आप चुनती है। अभी आन्दोलनके सङ्गठन-कर्त्ताओंका थोड़ा हाथ है, मगर उनका नियन्त्रण बाप-जैसा है, प्रजातन्त्र विरोधी नहीं। आगे बढ़ानेवाला है, पीछे हटानेवाला नहीं। संगठन-कर्त्ताओंके ऊपर आंदोलनके चलाने और रास्ता दिखानेकी जिम्मेदारी है और चीनमें ऐसी ताकत हमेशा नौकरशाहीकी ओर झुक जाती है, मगर सदस्योंको मत देनेका अधिकार है और वे इसको इस्तेमाल करना जल्दी-जल्दी सीख रहे हैं। उनको आन्दोलनके प्रजातन्त्रीय अधिकारको मजबूत बनानेके लिए शिक्षा और ज्यादा पूंजीकी जरूरत है। आजके इस आन्दोलनके जितने भी नेता हैं, वे सच्चे सहयोगको बनानेकी हृदयसे कोशिश कर रहे हैं और जब तक उनका वश चलेगा और जब तक सदस्य अपनी रायका उपयोग करते रहेंगे, बढ़ोतरी होती रहेगी।

यह आन्दोलन समितियों द्वारा सहकारी चेतना पैदा करनेका स्कूल बन गया है। अगर कारीगरोंको उनके पैरोंपर खड़ा करना है, तो यह जरूरी है कि वे यह जान लें कि इस आन्दोलनका मतलब क्या है। उनकी उत्पादन-शक्तिसे देशको कितना फायदा पहुंच सकता है। सहकार द्वारा वे किस तरहसे इस उत्पादन-शक्तिको बढ़ा सकते हैं। समाजके सदस्यके रूपमें उनकी कीमत क्या है। लोगोंको केवल सहकारी और औद्योगिक तरीके ही नहीं सिखाने हैं; उनको पढ़ना-लिखना और हिसाब रखना सिखाना भी जरूरी है। उनको सफाईके बाबत बातें जानना और मिलकर रहनेके तरीके सीखना जरूरी है। उनको हर दिनकी खबरें जानना जरूरी है। सहकारी आन्दोलन चीनके लिए सबसे ज्यादा क्रान्तिकारी साबित हुआ है। जो लोग बपौती-ढांचेमें फंसे हुए होनेके कारण अपनेको भूले हुए थे, जिन्होंने कभी सोचा न था कि दुनियामें उनके तरीकोंसे भी अच्छे तरीके हैं, उनको आज इस आन्दोलनने बराबरी और सहकारीका प्रबन्ध अपने आप करना सिखा दिया। हर डिपोमें कितने ही प्रान्तके आदमी साथ मिलकर काम करते हैं और अपने पुराने प्रान्तीय पक्षपातको भूल जाते हैं। हर हेड क्वार्टरमें सङ्गठनकर्ताओं, एकाउन्टेंट वगैरहके लिए ट्रेनिङ्ग क्लासें हैं, मेम्बरोंके लिए स्कूल हैं। औरतों और शरणार्थियोंके लिए भी ट्रेनिङ्ग क्लासें हैं, प्रायमरी स्कूल और नर्सरी शुरू की जा रही है। समितिके केन्द्रोंका वातावरण प्रगतिशील होता है, हर मेम्बर अपने बैजोंमें, इश्तिहारोंमें, नारोंमें और धन्धेकी खबरोंकी नोटिसोंमें बड़ा गर्व करते हैं। यह मानव-गुरुत्व और स्वतन्त्रताकी उन्नतिका चिह्न है। जब कभी उनके जलसे होते हैं, तो वह जगह खुशीकी चहल-पहलसे भर जाती है। धन्धेके सवालोंपर, लड़ाई कैसे चल रही है इसपर, अन्तर्राष्ट्रीय सवालोंपर बहस होती

रहती है। अगर कोई बाहरका मुसाफिर वहां तक पहुंच जाता है तो उससे दूसरे देशोंकी सहकारी समितियोंकी स्थितिके बारेमें और अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी आन्दोलनके बाबत जाननेकी उनकी बड़ी ख्वाहिश रहती है।

आन्दोलन शिल्पी ट्रेनिङ्गके लिए स्कूल चलानेमें आगे बढ़कर हाथ ले रहा है। उसके इञ्जीनियर, कार्यकर्ता और दूसरे शिल्प विशेषज्ञ इन स्कूलोंको चलाते हैं। इनमें सब तरहके उद्योगोंके लिए ट्रेनिङ्ग दी जाती है। चीनमें अभी तक मशीनका सारा काम गरीब और अपढ़ कारीगर करते रहे हैं,जो उन मशीनोंके बाबत, जो उनके हाथमें हैं,कुछ नहीं जानते, सिवाय इसके कि जो उन्होंने अपनी स्वाभाविक बुद्धिसे देखकर और काम करते-करते सीख लिया है। बिजलीवालोंको बिजलीकी प्रकृतिके बाबत कोई खबर नहीं; मोटर ड्राइवर मोटरोंके बाबत कुछ खास नहीं जानते। रेलवेमें काम करनेवाले इञ्जिनोंके बाबत कुछ नहीं जानते। सिर्फ कुशल हाथ और तेज बुद्धिकी वजहसे ही उन लोगोंका काम चलता था। आज जगह-जगहपर टेकनिकल स्कूल खोले जा रहे हैं, नहीं तो वक्त-वक्तपर केन्द्र-केन्द्रमें क्लासें चलायी जाती हैं और कारीगरोंको सिखानेकी कोशिश की जाती है। कलाकारोंके सम्बन्धमें भी आन्दोलन-समिति भूली नहीं है और खयाल है कि व्यापारिक कलाकारोंकी एक ऐसी सहकारी समिति बन जाय, जो आन्दोलनका भी काम कर सके और बाकी बाहरसे ठेके लेकर अपना काम चला सके। ऐसी समितिमें कपड़ोंपर डिजाइन बनानेवाले, नक्काशी और रंगोंपर, धातुओंके सामानपर, पीतलपर, जवाहिरात वगैरहपर डिजाइन बनानेवाले इश्तिहार, पोस्टर, वगैरहके लिए डिजाइन बनानेवाले, शिल्पकी मशीनों वगैरहके नक्शे बनानेवाले, कार्टून बनानेवाले, किताबों, मासिक पत्रों और अखबारों वगैरहके कलाकार मिल सकते हैं और वे सहकारी कारीगरोंको सिखाने और समझानेका काम भी अपने हाथमें ले सकते हैं। चीनी लोग बड़े कलाकार हैं और हर तरहकी तस्वीरोंको पसन्द करते हैं। समितिके कारीगर अपने पोस्टरों और पैकिङ्ग केसोंपर बड़ा गर्व करते हैं।

चीनमें जनताकी शिक्षामें नाटक एक बड़ा मुख्य भाग ले रहा है। यह पाया गया है कि अगर नाटकके रूपमें नये खयालोंको दिया जाय, तो लोग बड़ी जल्दी उसको ग्रहण करते हैं। चीनकी आठवीं सेना, जो कम्यूनिस्ट लोगोंकी बनी हुई है, लोगोंको लड़ाईके वास्ते तैयार करनेके लिए, उनमें जापानी विरोधी जोश भरनेके लिए, उनको अपने पैरोंपर आप खड़ा होना सिखानेके लिए, उनको स्वशासनकी शिक्षा देनेमें और नागरिक चेतना पैदा करनेमें बच्चोंके और बड़ोंके नाटकोंका एक बड़े पैमानेपर इस्तेमाल कर रही है और उसको बड़ी सफलता मिली है। सहयोग-समितियां भी इतने बड़े पैमानेपर तो नहीं, पर थोड़ा-थोड़ा नाटकोंका बराबर सङ्गठन करती रहती हैं। अन्तर्समिति जलसोंमें अलग-अलग समितियां अपनी समस्याओंपर नाटक रचकर खेलती हैं। खास-खास जलसोंमें भी नाटक और सङ्गीतका काफी इस्तेमाल किया जाता है। सहकारी गाने बन गये हैं। सहकारितापर और प्रगतिशील विषयोंपर नये-नये गाने बनाये जाते हैं। यहां तक कि समितियोंके नियम, उनके आदर्श, उनके काम करनेके तरीके भी सङ्गीतमें रचे जा चुके हैं। बस, एक सहकारी नाटक मण्डली और सहकारी सङ्गीत समितिके बननेकी कमी रह गयी है।

सहकारी समितियां एक दूसरेसे सहयोग करती हैं, अपना माल जहां तक हो सकता है, दूसरी सहकारी समितियोंसे ही लेनेकी कोशिश करती हैं। लोहारोंका लोहा सहकारी लोहेकी खानोंसे ही लिया जाता है, उसको सहकारी यातायात समितिकी गाड़ियां ही ढोकर लाती हैं। बिजली बिजली बनानेवाली सहकारी समितिसे ही ली जाती है। औजार सहकारी बढ़ई और लोहारोंसे लिए जाते हैं। कहीं-कहीं माल खरीदने और बेचनेकी सहकारी समितियां बन गयी हैं, जिनकी मदद उस प्रदेशकी सारी सहकारी समितियां अपने लिए कच्चा माल खरीदने और अपना बना हुआ माल बेचनेमें लेती हैं और जिनके द्वारा दूसरे प्रदेशोंकी सहकारी समितियोंसे भी सम्बन्ध जुड़ जाता है। स्कीम तो यह है कि प्रदेश-प्रदेशमें वहांकी सहकारी समितियां मिलकर अपनी एक प्रादेशिक सहकारी समिति और कितने ही प्रदेश मिलकर प्रान्तीय सहकारी समितियां बनावें,और हो सके तो सारे चीनकी एक केन्द्रीय सहकारी समिति भी बन जाय, जो समितियों द्वारा ही चुनी गयी हो और जो सारा सहकारी काम अपने हाथमें ले सके और बढ़ा सके।

हिरिया

श्रीराम शर्मा, 'राम'

हिरिया कुम्हारिनको भले ही इस बातकी शिकायत न रही हो कि गांवमें उससे कोई नहीं बोलता—न कोई सम्बन्ध रखता, पर उसका अपना बंधा-बंधाया काम, कि दिन निकला और उसने घर-घरका चक्कर लगाना आरम्भ किया, बिना बाधाके चलता रहता। किसीसे लड़ आती, किसीको मान-अपमानकी बातें कह आती। हिरिया अब बुढ़िया हो गयी है। गांवके जिन लोगोंने उसकी तरुणाई-का युग देखा था, उनसे यह अनेक बार कहते सुना, तब हिरिया आज-जैसी नहीं थी! बड़ी-बड़ी आंखें, गोरा और सलोना गात—सब कुछ हिरियामें एक अपूर्व मादकताका भास लिये था। गांवमें कोई और हो या न हो, पर हिरिया थी, जो ठुमकती, पैरोंके पायजेब झनझनाती, कौंधती हुई बिजलीकी तरह घरसे निकलती और इस घरसे उस घरका चक्कर काट आती। लोग कहते, सांवलियाकी प्यारी दुल-हिन यह हिरिया, तब थोड़े ही जानती थी कि यौवनकी दहलीजके पार भी कुछ है,—बुढ़ापा है, जो अशक्त और परवशताका साकार रूप है। अब वही आया है। इस हिरिया कुम्हारिनको उसी बुढ़ापेने आ घेरा है, अब......

परन्तु गांव तो चाहता है कि हिरिया मर जाये, कहीं खप जाये! चुड़ैल कहींकी! इसका एक ही धन्धा है, लड़ना और जिस किसीको कोसना। इसीसे, उस गांवके लोगोंका विश्वास बन गया कि किसी औरमें हो तो हो, लेकिन हिरियाके जीवनमें कहीं भी, ऐसा शुभ्र और पवित्र स्थान नहीं है, जहां मानवकी अनुभूति और प्रेम समाता हो। इसमें दया-ममता नामको नहीं। बस, लड़ना-झगड़ना ही इसका काम है। भले घरकी बहू-बेटियोंको गालियां देना ही इसका धन्धा है। यह नहीं जानती, आदमीकी क्या कीमत है, उसकी क्या महत्ता है। यह ईश्वरको भी नहीं मानती।

हिरियाके एक बेटा है, जो चोर है, लफङ्गा और बद-माश है। किन्तु उसकी चोरी और बदमाशीसे हिरिया भी लाभ उठाये, ऐसा सुयोग उसे एक दिन भी नहीं मिला। हां, जब-जब वह किसीसे लड़ आती, तो वह इस गर्वसे निश्चय ही अपनेको भरा देखती कि वह अकेली नहीं है—वह बांझ नहीं है। उसका बेटा है, जो एक-एकके दांत तोड़ सकता है। हिरिया अपने बेटेपर क्यों न गर्व करे, जो चाहता था कि उसके जीते-जी, कोई उसकी मांका अपमान करनेका साहस न करे। अगर कोई उसे भला-बुरा कहे, उसकी ओर भूलकर भी आंख उठाये, तो वह अपनी मजबूत लाठीसे एक-एकके सिर तोड़ देगा। हिरिया कहीं लड़ आती और कसूर भी उसीका रहता, तो भी उसका बेटा मांका अपमान करनेवालेका सिर फोड़ आता या टांग तोड़ आता।

ऐसे लड़ैत बेटेपर भला क्यों न गर्व करती, हिरिया? इसीसे वह स्वयं जीविकाके लिए परिश्रम करती, खाने-पीनेका सामान जुटाती और उससे अपना और अपने बेटे-का पेट भरती।

और बेटा है ऐसा शैतान कि दूसरोंका तो दूर, स्वयं हिरियाका जोड़ा-जोखा, माल-मत्ता लेकर चम्पत हो जाता है। इसके लिए अगर हिरिया कुछ कहती भी, तो वह गुर्रा-कर उसके सिरपर चढ़ जाता और मारने लगता। इसीसे हिरियाकी एक टांग भी टूट गयी। अब चल-फिर नहीं सकती। पहलेकी तरह कहीं आ-जा भी नहीं सकती। अब जमीनपर खिसक-खिसककर चलती है। दूसरोंकी दयापर, वह जीती है और अपने जीवनको काटती है।

कोई कहता, अरी हिरिया! अब ऐसी अपाहिज बन गयी! बेटा पाकर भी अभागी रही—दुर्भागी कहींकी! तो वह तुरन्त ही अपने पतिके नामको कोसती और कहती, वह तो मर गया, कम्बख्त, मेरे सरपर यह आफत रख गया। जो न मरे, न मरनेका नाम ले। ठाला बैठा खाता है और गुर्राता है। मारनेको दौड़ता है, मेरी हड्डी-पसली तोड़ता है......

जब-तब हिरिया इस प्रकार अपनी आत्माकी पीड़ाको व्यक्त करती और तभी निरी वेदनासे भर वह अपने मुंहको घुटनोंसे टेककर फफक-फफककर रो पड़ती।

एक दिनकी बात है, सुबह ही सुबह हिरियाका लड़का रामदीन पैसोंके लिए मांसे लड़ पड़ा। वह कुछ पैसे चाह रहा था और हिरिया नहीं दे रही थी। बस, इसी-पर रामदीनने उसको दो-चार घूंसे मार दिये। मार खाते ही हिरिया लगी रोने और सिर पीटने। रामदीन कुढ़ता

और बकता हुआ घरसे चला गया। दिन-भर वह घरसे बाहर रहा। उसके पीछे देर तक, हिरिया बैठी रोती रही, पर जब दोपहर हुआ, तो वह बेटे द्वारा पीटे जानेकी बात भूलकर रोटी बनाने बैठ गयी। उस बीचमें उसने कई बार द्वारकी ओर देख लिया और रामदीनके लौट आनेकी आहटको बड़ी सतर्कताके साथ सुननेका प्रयत्न किया, किन्तु उसने दाल बननेपर, चूल्हेपर तवा रख दिया, एक-एक कर रोटी बनानेका काम भी पूरा कर लिया, पर न रामदीन आया, न आता दिखायी दिया। तब उसने दाल और रोटीको चूल्हेपर ढककर रख दिया। नित्य-की तरह अपने स्वभाववश, रामदीनके खानेसे पहले उसने भूखी होते हुए भी खाना पसन्द नहीं किया। वात्सल्य और पुत्र-स्नेहसे पूरित हो, सदाकी तरह उस दिन भी वह रामदीनके आनेकी प्रतीक्षामें बैठी थी। सचमुच उस क्षण जैसे उस हिरियाके स्थानपर कोई और हिरिया आ गयी थी, जो ममतामयी थी, जो स्नेहमयी हो, मातृत्वसे परिपूर्ण हो रही थी। हिरियाके जीवनमें यही एक अवरोह था, जो उसे रामदीनके दुष्कर्मोंको क्षमा करनेके लिए बाध्य करता। पुत्रसे पिटकर, गालियां और झिड़कियां सुनकर भी, वह उस मुफ्तकी रोटियां खानेवाले रामदीनको सदा ही क्षम्य सम-झती रही, उसे सदा ही अपनी कृपा और दयाके साथ अपने मातृ-हृदयका सरस और सुन्दर प्यार अर्पित करती रही।

दोपहरसे दिन ढल गया। शाम भी आ गयी। राम-दीन नहीं आया। पुत्रकी प्रतीक्षामें व्याकुल हिरिया जहां बैठी थी, वहींकी वहीं बैठी कभी द्वारकी ओर देखती, कभी किसीके आनेकी पग-ध्वनि सुनती और कभी बैठी-बैठी ऊबकर भूखसे विचलित हुई झपकियां लेने लगती थी। घरमें किसी चूहे-बिल्लीकी आहट हुई, तुरन्त ही हिरियाने सजग हो, चूल्हेकी ओर देखकर लम्बी सांस ली और झुंझलाये स्वरमें बोली—कम्बख्त मर भी तो नहीं जाता। कहीं मुंह भी तो काला नहीं करता......

यह कहते ही हिरियाकी कमर चटक गयी। उसने आह भरी। सुबह जो रामदीनके हाथों कमरमें चोट लग गयी थी, वही एकाएक दुख गयी। उसीकी वेदनासे कराह कर वह फिर बोली—इसे कोढ़ी बनाये रामजी! इसे... तभी घरके द्वारपरसे एक पड़ोसीको जाता देख, रोककर बोली—अरे, रामदीनको कहीं देखा है तुमने?

उत्तर मिला—नहीं।

तब इस 'नहीं'के बाद ही हिरियाका हृदय एक अव्यक्त आशङ्कासे कांप उठा। वह अपने-आप बोली—चुड़ैल, तूने दे क्यों न दिये पैसे उसे। लड़का है, जिद भी करेगा। तू मां जो है, उसकी। तुझसे नहीं तो और किससे मांगेगा? बड़ा हो गया तो क्या, है तो वही पेटका जाया, तेरा बच्चा रामदीन...

यह कहते बरबस ही, हिरियाने सारा दोष अपने ऊपर ले लिया। वह पिटी, गालियां सुनीं, पर सभी कुछ जैसे उसीने कराया, उसीने रामदीनको उभाड़ा। तभी उसने फिर कहा—अरी हिरिया, क्या जनम-भर इन पैसोंमें उलझी रहेगी, इन्हींमें अटकी रहेगी, तू! जब तू है, तो मांगता है, रामदीन फिर कहां जायेगा मांगने, जब चली जायेगी तू, जब मर जायेगी तू?......

हिरियाका हृदय उमड़ आया। गलेमें थूक-सा अटक गया, जिसे निकालनेके साथ ही उसकी आंखोंका प्रवाह फूट पड़ा। उसने मुंहको घुटनोंपर रख लिया और उन रोती हुई आंखोंसे उस धुंधले हो आये अतीतको देखा, जब कि रामदीन बच्चा था, तुतलाकर बोलता था, घुटनोंसे घिसक-घिसककर चलता था। तब उसी बाल रामदीनको यह हिरिया आलोड़के साथ चूमती थी, गोदमें लेती थी और अपने दूध-भरे स्तनको निकालकर उसके मुंहमें देती हुई कहती थी—मेरा मुनुवां राजा है, मेरा मुनुवां बेटा है...

तभी हिरियाने सन्ध्याके उस झुटपुटेमें जोरसे चीख-कर पुकारा—अरे रामदीन! ओ रामदीन!......

पर रामदीन तो था नहीं। वह नहीं आया था। तब हिरियाका मन और उदास हो गया। उसे उस क्षण जैसे सभी कुछ शून्य-सा और नीरस-सा दिखायी देने लगा। घरके आंगनसे घिसककर वह चारपाईपर गयी और पड़ते ही बिलख-बिलखकर रोने लगी।

रात आ गयी। काली-काली और भयावनी परछायी हिरियाको अपने घरमें दिखायी देने लगी। हिरिया भूखी थी, प्यासी थी, पर जैसे सब-कुछ भूल, वह केवल रामदीनकी सीमामें बंधी थी। मुहल्लेके कुत्ते भूंकते थे, गांवके बाहर जङ्गलमें सियार बोलते थे, तो हिरियाका मन बैठता जा रहा था। उसी समय हांफता और भागता रामदीन घरमें घुसा। आते ही उसने मांको पुकारा। वह तब हिरियाका बिना उत्तर पाये ही, उसकी चारपाईके नीचे घुस गया।

हिरियाने सहमकर आशङ्कित स्वरमें कहा—अरे, बेटा रामदीन?......

रामदीनने कहा—चुप! चुप!

तब हिरिया आगे नहीं बोल सकी। वह कहना चाह कर भी कुछ न कह पायी। नहीं तो, तभी कुछ देर पूर्व उसके मनमें था कि जब रामदीन आयेगा, तो देखते ही आड़े हाथ लेगी। चाहे पिट जाये, पर वह नहीं चूकेगी, वह जरूर कहेगी, अरे, दुष्ट, अब आया है तू! इतनी रात गये आया है? दिन भरके बाद आया है। डूब न मरा। बता तो, किस महतारी-ने तुझे परोसे खिला दिये। एकबार भी सोचा कि जिस मांकी कमरको तोड़ दी है, वह भूखी है या प्यासी...

पर अब क्या कहे, हिरिया! अब तो यह जरूर कोई उत्पात कर आया है। चोरी, मार-पीट...! हिरिया फिर कांप गयी। उसने फिर छिपे हुए रामदीनकी ओर देखा। उसने उस रहस्य-भरे पुत्रको जैसे समझना और पढ़ना चाहा।

तभी बाहर आहट सुनायी दी। टार्च लिए दो सिपाही घरमें आ घुसे। हिरियाके पास आते ही एकने डपटकर पूछा—अरी, ओ, कुम्हारिन, बता कहां है, तेरा लड़का। वह अभी चोरी करके आया है। इधर ही भागकर आया है। बता, हरामकी बच्ची!...

सुनते ही हिरियाके देवता कूच कर गये। कांपते स्वरमें उसने बड़ी कठिनाईसे कहा—हवलदारजी, वह सुबहसे ही नहीं आया। देख लो, चूल्हेपर रोटियां रखी हैं।

'यहां नहीं आया? सच बोलना।'

'हां, हवलदारजी, घर तो पड़ा है, देख लो। सुई-धागा तो है नहीं, जो छुप जायेगा।'

बात सुनकर सिपाहियोंको विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सारा घर देखना चाहा। जब वे खोजने लगे, तो हिरियाने बड़ी निपुणतासे अपने लहंगेके छोरको नीचे लटका लिया था, उसीमें रामदीनको छिपा रखा था।

जब सिपाही चले गये, तो रामदीन बाहर निकला। उसने हिरियाकी ओर देखकर कहा—सालोंको खूब उल्लू बनाया, मां। अब वे मेरा कुछ नहीं कर सकते,—कुछ नहीं!

'और तू इसी तरह चोरी करता रहेगा, क्यों!'—जाने कैसी खिझलाहटके साथ रोषके स्वरमें हिरियाने कहा।

सुनते ही उपेक्षित स्वरमें रामदीनने कहा—अच्छा, अच्छा, तू अपना उपदेश छोड़! आज तेरा ही मुख देखा था। सुबहसे मुंहमें दाना भी नहीं गया। ला, है रोटी?

हिरियाने झिड़ककर कहा—कोई तेरी नौकरानी रख गयी है, ना?

'देख मां, तू फिर सुबहकी बातपर आयी। अब भी न चैनसे खाने देगी, न बैठने देगी। तू तो चाहती है, मर जाय रामदीन! सो, सन्तोष कर, यह अधिक दिन नहीं जीयेगा। तेरा दांत जो उठा है, यह जल्दी, आंखोंके सामने ही मर जायेगा।

तब हिरिया बोली नहीं थी। वह अपनी उस गुमसुम अवस्थामें ही चारपाईसे उतरकर चूल्हेके पास पहुंच गयी थी। रामदीन भी वहीं पहुंच गया था। उसने मांसे रोटी और दालका बर्तन लेकर अपने सामने रख लिया था। जब वह खाने लगा, तो जाने किस भावनासे भर, हिरियाने उसे एकटक देखते हुए कहा—रामदीन, तुझसे कहती हूं, तू मेरा गला घोंट दे। मुझे मार डाल। तुझे छुटकारा मिल जायेगा और मुझे भी, मैं जो दुश्मन हूं तेरी। तुझे नौ महीने पेटमें रखा, पाला, बड़ा किया और आज कहता है, मैं तेरा मरना चाहता हूं। अच्छा! कहते हिरियाका स्वर रुक गया, उसका गला रुंध गया। जो आंखें भर आयीं वह गालोंपर बह आयीं; जिन्हें लिये-लिये ही वह घुटनोंपर मुंह रख फफक कर रो पड़ी।

तब उस चोर, जुआरी और हृदय-हीन रामदीनमें भी मातृ-स्नेह उमड़ आया। वैसे, उसने जाने कितनी बार मांको रोते देखा था, पर उस क्षण जो आरोप उसने मांपर थोप दिया था, वह जैसे अन्याय था, उसका अपराध था वह लजा गया। हाथका टुकड़ा रखकर, उसने मांके झुके हुए सिरपर हाथ रखा और कहा—मा...

'मेरे बच्चे! अरे, तू कबतक इस तरह सोचता रहेगा, रामदीन! मां तेरे बिना भूखी रहे, वह तेरे बगैर तड़पती रहे, और तू! तू!'—हिरियाने हिचकी ली और रो पड़ी।

'तू तो पगली हो गयी है, मा! ले, मैं खा चुका रोटी। तू बैठकर रोये और मैं रोटी खाऊं! मैं भी सारी रात रोते ही काट दूंगा।'

सुनते ही हिरियाने तुनककर कहा—बस, बस, रहने दे अपनी बातें। बड़ा भला चाहता है, मांका। हाथ पैर तोड़ दिये। चलने-फिरनेसे भी मोहताज कर दिया, अब मुझे मार ही डाल, तब सुखसे रहेगा। तब मनचीता करेगा, तू। फिर थोड़े ही आयेगी यह डायन मां कहने या समझाने तुझे।

यह सुनते ही रामदीन मुसकराया। उसने फिर मांके सिरपर हाथ रखकर कहा—मां, तू यह भूल जाती है कि जब तक तू है, तभी तक इस गांवमें और इस घरमें राम-

दीन है। फिर उसकी छाया भी न रहेगी। जिधर ही मुंह उठेगा, उधर ही यह भाग जायेगा।

तू! अरे तू कहां भाग जायेगा, तू तो किसी जेलमें सड़ेगा। ऐसा ही रहा तो एक दिन फांसीपर भी लटकेगा। कमाई और मेहनत तो तुझसे होती नहीं। चोर और डाकू बनने चला है। अब खा न रोटी, लिये बैठा क्यों है?

उसी क्षण हिरियाने फिर कहा—ऐसा न होता, तो आज क्या मुझे यह दिन देखना होता। घर बसता, बाल-बच्चे होते। मुझे भी इस बुढ़ापेमें, इस अपाहिजीमें चूल्हा न फूंकना पड़ता। जो तुझसे छोटे हैं, वे कई बच्चोंके बाप बन गये हैं। और एक तू है, कोई पूछता नहीं, कोई पूछकर जाता है तो आता नहीं। आये कैसे, गांव भरसे तो लड़ता है, लोगोंके सिर तोड़ता है। मैं तो भुगत लूंगी, पर तुझे बताये देती हूं, यह जवानी ऐसे ही नहीं रहेगी। बुढ़ापा भी आयेगा। तब याद करेगा, मांकी बात। तब मांकी बात याद करेगा, सिर पकड़कर रोयेगा मेरी बहू होती, मेरे बच्चे......

'अच्छा, अच्छा, फिर तूने पुराना राग छेड़ दिया, सौ बार कह दिया, मुझे बहू नहीं चाहिये। नहीं चाहिये।'

'चाहिये तो बहुत, मगर मिले भी तो। मैं कहती हूं, तू सलीकेसे क्यों नहीं रहता। तू लोगोंसे प्यार-मुहब्बत क्यों नहीं रखता। देख, बेटीवाले इसी चौखटपर खड़े न दिखायी दें, तो मेरा हिरिया नाम नहीं। और कमी क्या है तुझमें। हिरियाके पास अब भी इतना है कि वह अपनी बहूको जेवरोंसे लाद देगी। इसके हाथ-पैर थक गये हैं, पर तकदीर नहीं थकी है। बेटा, ऐसी कौन डायन मां है, जो अपनी बहूका मुंह नहीं देखना चाहती, जो अपने पोतेको गोदमें नहीं खिलाना चाहती। मां, बेटेके सब कसूर माफ कर सकती है, पर यह नहीं, यह नहीं।'

रामदीनने रोटी खाते-खाते कहा—गांवमें लड़ाई भी तेरे कारण होती है। तू ही घर-घर जाकर लड़ती है।

यह सुनते ही हिरियाका पारा चढ़ गया। उसने गर्म होकर कहा—बस, बस, रहने दे, तू! चुपचाप रोटी खा ले। चला है बात बनाने।

यह सुनकर रामदीन जोरसे ठठाकर हंस पड़ा। उसी हंसीमें उसने घर भरको गुंजा दिया।

हिरिया और रामदीन गांवके लिए एक पहेली—एक समस्या थे। मां लड़ाका है, बदमिजाज है, डायन है, और लड़का, उसके ही अनुरूप, उसीकी साकार प्रतिमा। सारा गांव दोनोंसे आजिज है, दोनोंसे दुःखी है। सभी मनाते हैं कि दोनोंका जनाजा जल्दी निकले। मुहल्लेमें जब रातको अमन-चैन होता है, दिन भरके थके आदमियोंको सोनेका अवसर मिलता है, तब हिरिया और उसका बेटा का आपसमें लड़ना और मुहल्ले और गांववालोंको कोसना शुरू कर देते हैं। हिरिया अपने घरके द्वारपर बैठी है, कोई बच्चा, औरत या मर्द उसके सामनेसे जा रहा है, कहीं भूलसे उसने हिरिया की ओर देखा है, तो बस, हिरियाका पारा चढ़ गया। उसने उस बेचारेके बाप-दादोंके कुलका बखान करना आरम्भ किया। कहीं, रातमें उसे शोर मचाते देख किसीने कह दिया, अरी, हिरिया, ओ चुड़ैल, अब सोने दे, हमें रात काटने दे, तो लीजिये, हिरियाने उसीको कोसना शुरू कर दिया।

लेकिन जाने किस दुर्भावनासे, किस अभिशापके कारण रामदीन बीमार पड़ गया। दो-चार दिन साधारण ज्वर रहा। फिर रोग बढ़ गया। यह देख हिरिया चिन्तित हुई। उसने गांवके वैद्य और झाड़ने-फूंकनेवालोंके द्वार खटखटाये। जिस हिरियाने कभी किसीको एक पैसा भी नहीं दिया, वही अब मुंह मांगा देती। वह गांव भरमें चक्कर लगाती फिरती। जो स्त्री और पुरुष देखते, वह कहते, अरे, पागल हो गयी है, हिरिया। देखा, रोज कहती फिरती थी, राम-दीन मर जाये, तो ठीक; जब बीमार पड़ा है, तो अपनेको बेचने और खपानेके लिये तैयार है, बेटेको बचानेके लिए अपने प्राणतक देनेको प्रस्तुत है। और जानती नहीं, मां है मां। माका दिल लिये है, जिसे बेटेके सामने दुनियाका कुछ भी नहीं चाहिये। मां दौलत ठुकरा देगी, बेटा उठा लेगी!......

और रामदीन क्षण-क्षण कालका ग्रास बनता चला। हिरिया रो रही है, वह अपने और परायेके सामने गिड़-गिड़ा रही है, अर्ज-बिनती कर रही है, पुराने लड़ाई झगड़ोंपर खाक डाल रही है, पर सभी व्यर्थ। रामदीन न बचा। अपनी मां, हिरियाको, अपङ्ग और अपाहिज, छोड़कर चुपचाप चला गया। वह मर गया।

तब हिरियाके हाथका तोता उड़ गया था। जो गर्व और मान उसके अन्दर मंड़रा रहा था, वह पुत्र-शोकमें आंसुओं की राह बह गया। गांवके बच्चे, स्त्री और पुरुष, पहले जब उसके द्वारपरसे आते-जाते थे, तब हिरिया बे-बात ही, कुछ-न-कुछ पाकर किसीको गाली और झिड़की

दे देती थी। परन्तु अब मानो उस हिरियाके स्थानपर कोई और हिरिया आ गयी है, उसकी आत्मामें कोई और हिरिया प्रतिष्ठापित हो गयी है। जो बच्चे पहले उससे डरते थे, दूर-दूर रहते थे, या शैतानियतपर आकर उसे छेड़ गालियां सुनते जाते थे, अब हिरिया उन्हें अपने पास बुलाती है, प्यार करती है और उन्हें खेलनेके लिए शिकोरा, घड़ा या सुराही देती है।

लोग कहते, अरे, तुझे क्या हो गया है, हिरिया? क्यों बर्तन बांटती है? इन बच्चोंको क्यों देती है? तोड़ देंगे।

तो हिरिया, जाने कैसे भावावेशमें आकर कहती—तोड़ देंगे, तो तोड़ दें। बर्तन क्या, एक दिन इस हिरिया-को भी टूटना है।

यह सुनकर कहनेवाला जानकर भी नहीं कहता कि तू पहले क्या थी। तू ही तो थी, जो बे-बात ही लोगोंको उल्टी-सीधी सुनाती थी और कोसती थी।

हिरिया गांवमें किसी मरे हुए लड़केका मुंह देखती और फूटकर रोती हुई कहती—रामदीन भी इसी तरह सोता हुआ चला गया। हाय! हाय! तू भी जा बेटा! वहां रामदीन भी होगा। उससे कहना—अरे, ऐसे नाता तोड़ गया...अरे, ऐसे चला गया, मेरे लाल...

हिरियाकी इस दशाको देखकर गांववाले पहली हिरियाको भूल गये हैं। उनके सामने बस केवल अपाहिज हिरिया है, जिसका जवान हाथी-सा बेटा मर गया है। वह उसे सान्त्वना देते हैं, अरी, अब क्या रहा, हिरिया। जो हुआ, हुआ। ईश्वरकी लीला है, सब उसीकी इच्छा है...

यह सुनकर हिरिया गांवके बच्चेसे लेकर बूढ़े तकमें मानो ईश्वरकी लीलाको खोजती है और तब वह अपने घुटनोंपर सिर रखकर, जैसे उसके पास कोई है, अपने आप कहती है, तुम मुझे भी बुलाओ, रामदीन बेटा! ईश्वर तुम्हीं...

तब हिरिया एकबारगी अपने-आपमें खो जाती। और जाने कितनी अधीर बन, वह युग-युगके एकत्र हुए, पाये हुए, उस अक्षत और अलभ्य जीवनके मधुर आशीषकी ओर झुकती, जिसे उसने अभी सुना, अभी पाया था, उसने।

गर्भवती स्त्रियोंकी अनोखी लालसाएं

श्री व्रजकिशोर वर्मा, 'श्याम

गर्भिणी स्त्रियोंकी भोजन-लालसा अद्भुत होती है। यह लालसा कोई नयी अथवा सभ्यता-जनित चीज नहीं है, वरन् सभी देशों, जातियों और सभी युगोंमें मिलती है। यूरोपमें यह बहुत दिनोंसे ज्ञात है। पुराने कालमें यहूदी वैद्य उससे परिचित थे। भारतीय आयुर्वेदके ज्ञाताओंको उसका पूरा-पूरा ज्ञान था। उन्होंने इसकी छानबीन की है और उसके पूरे होने, न होनेका फलाफल भी बताया है। न केवल यही, वरन् गर्भिणीका मन जिन चीजोंपर चलता है, उनका एक विशेष नाम ही रख दिया है, वह है 'दौहृद', जिसका अपभ्रंश 'दोहद' आज भी देहातोंमें प्रचलित है। 'दौहृद' शब्दका अर्थ है गर्भवती स्त्रीका वांछित पदार्थ। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि ग्रन्थोंमें 'दौहृद'का वर्णन मिलता है। महाकवि कालिदासके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'रघुवंश' के तीसरे सर्गके प्रथम श्लोकमें सुदक्षिणाके दौहृदका वर्णन है। उत्तरी, दक्षिणी अमेरिकाके रेड इण्डियनोंको, अफ्रिका-में सूडान और नील नदीके तटपर बसनेवाली बर्बर हबशी जातियोंको, तथा ओशीनियामें मलाया द्वीपपुञ्जकी असभ्य जातियोंको उसका पता है।

गर्भवतीकी इस लालसामें दो विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। एक तो यह कि उसकी यह लालसा ऐसा उग्र रूप धारण कर लेती है कि वह उसे दबानेमें असमर्थ हो जाती है और उसे तृप्त करनेके लिए ऐसे काम कर बैठती है, जिसे साधारण अवस्थामें वह स्वप्नमें भी करनेको तैयार न होगी। दूसरे यह कि उसकी इच्छा बहुधा ऐसी चीजोंके खानेके लिए चला करती है, जो संसारकी किसी भी जाति-की भोजन-सूचीमें नहीं हैं। एक बहुत ही ऊंचे घरानेकी यूरोपियन गर्भवती महिलाकी लालसाकी कहानी अत्यन्त मनोरञ्जक है। वह अपनी बहिनके साथ 'स्ट्राबेरी'के खेतों-के पाससे घूमनेके लिए निकली। सहसा उसके मनमें स्ट्रा-बेरी खानेकी प्रबल इच्छा उठ खड़ी हुई। बहिनके लाख रोकनेपर भी वह जबर्दस्ती खेतमें घुस गयी और इतनी स्ट्रा-बेरी खायी, जिसे देखकर बेचारी बहिन परेशान रह गयी। एक सम्भ्रान्त कुलकी महिलाका खेतमें पैठकर स्ट्राबेरी खाना, उसकी उग्र लालसाका ही द्योतक है;अन्यथा साधारण अवस्थामें वह ऐसा करना कभी गवारा न करती। इसी प्रकार एक दूसरी युवती स्त्रीको गर्भावस्थामें तम्बाकू पीनेकी

इच्छा इतनी बलवती हो उठी थी कि जबतक वह तम्बाकू न पी लेती, उसे चैन ही न पड़ता था, यद्यपि गर्भसे पहलेन तो उसने कभी तम्बाकू पिया था और न उसे कभी तम्बाकूपीनेकी इच्छा ही हुई थी और न प्रसवके बाद भी कभी उसे धूम्रपान की इच्छा हुई। इस प्रकारके लाखों उदाहरण मिलेंगे।

हमारे देशमें गर्भिणी स्त्रियोंमें मिट्टी खानेकी लालसा बहुधा दिखायी देती है। मैंने बहुत-सी स्त्रियोंको सुराहियां, हांड़ियां, कुल्हड़ आदि तोड़कर खाते देखा है। कोई-कोई गङ्गा-जमुनाकी रेतीली मिट्टी खाती देखी गयी हैं। बहुतेरी चूल्हेके भीतरकी जली हुई मिट्टी स्वाद ले-लेकर खाती हैं। लखनऊ, बनारस आदि नगरोंमें कुम्हार लोग गर्भिणी स्त्रियोंकी इस मिट्टीकी भूखको तृप्त करनेके लिए मिट्टीकी बहुत पतली-पतली पकायी हुई छोटी-छोटी टिकियां बेचते हैं। ये टिकियां गर्भिणी स्त्रियोंके सिवा दुनियामें और किसीके काम नहीं आतीं। लखनऊमें वे सनकियां कहलाती हैं। अन्य नगरोंमें उनके अलग-अलग नाम हैं। मिट्टीके अतिरिक्त खड़िया, लकड़ीका कोयला आदि चीजें भी खाती हैं। वेकसलके फलोंकी ओर उनका मन अक्सर चला करता है। सोंधी चीजें गर्भिणीको प्रायः अधिक प्रिय होती हैं। एक महिलाको तेलका अचार बहुत भाता था। एक अन्य महिला गर्भावस्थामें महीनों तक एक वक्त केवल दही खाकर ही रही थी।

यूरोपियन महिलायें भी नाना प्रकारकी चीजें खाया करती हैं, जिनमें बालू प्रधान है। प्रसिद्ध यूरोपियन विद्वान थूरिंगने अपने 'फिलोजिया' नामक ग्रन्थमें गर्भिणीकी इस लालसाके सम्बन्धमें एक पूरा अध्याय ही लिखा है। वे कहते हैं कि एक इटालियन महिलाने कई पौण्ड बालू बड़े चावसे खा डाला था। यूरोपियन स्त्रियां बालूके अलावा चूना, कीचड़, खड़िया, कोयला, अलकतरा आदि भी खाती देखी जाती हैं। एक स्त्री तन्दूरसे निकली हुई गरमागरम पावरोटी बहुत परिमाणमें खाती थी। एक महिलाने एक दिनमें एक सौ चालीस मीठे केक खाये थे। गेहूं, जौ तथा दूसरे अनाजों और फल-तरकारियोंकी ओर मन चलना यूरोपियनोंमें भी साधारण बात है, परन्तु एक स्त्रीने गर्भावस्थामें दस सेर काली मिर्चोंका खातमा कर डाला था! एक दूसरी महिला अदरक बहुत खाती थी। एक महिला अपने तकियेके नीचे जावित्री रखा करती थी। एकने एक रातमें तीस-चालीस नींबू चूस डाले थे। दालचीनी, नमक, राब, बादामका शर्बत भी बहुतोंको भाता है।

यूरोपियन मांसाहारी होते हैं। अतः उनमें नाना प्रकारकी मछलियों, सिप्पी, केकड़े, सांपके आकारकी मछली आदिकी ओर बहुधा रुचि देखी जाती है। परन्तु इतनेसे ही समाप्ति नहीं हो जाती। उनमें मेढक, छिपकली, मकड़ी और पतिंगों तकका स्वाद लेनेकी लालसा देखी गयी है। थूरिंगने लिखा है कि एक तेंतीस वर्षकी स्त्रीने, जो साधारण दशामें बहुत शान्त और वात-प्रधान स्वभावकी थी, एक बार गर्भावस्थामें एक जीवित पक्षी पकड़कर बड़े स्वादसे खाया था। चमड़ा, ऊन, रूई, कपड़ा, ब्लाटिङ्ग पेपर और कितनी ही अखाद्य तथा घृणोत्पादक वस्तुओंकी ओर भी गर्भिणीका मन चलता हुआ देखा गया है। सिरका और बर्फकी ओर भी आकर्षण दिखायी देता है। कोई-कोई लोहा और चांदी आदि धातुयें भी निगलती देखी गयी हैं। एक स्त्रीकी इच्छा नर-मांस-भक्षणकी थी; अतः वह कभी-कभी लोगोंका हाथ काट खाती थी।

गर्भिणीमें केवल किसी पदार्थ विशेषके खानेकी उग्र-रुचि ही उत्पन्न नहीं होती, बल्कि किसी पदार्थके लिए वैसी ही प्रबल अरुचि और घृणा भी उत्पन्न होते देखी जाती है। कोई दूध पीनेमें असमर्थ होती है, तो किसीको घी तथा फल, तरकारी बिल्कुल नहीं भाती। प्रायः दालोंके प्रति गर्भिणियोंमें अक्सर अरुचि दिखायी देती है। मेरी एक परिचित महिला पान-तम्बाकूकी बहुत आदी हैं, परन्तु गर्भावस्थामें उन्हें पान-तम्बाकू फूटी आंखों नहीं सुहाता। यूरोपियन महिलाओंमें जिन वस्तुओंके प्रति अरुचि और घृणा उत्पन्न होते देखी जाती है, थूरिंगने उनकी एक सूची दी है। इस सूचीमें रोटी, मांस, मछली, चिड़ियोंका मांस, केकड़े, दूध, मक्खन, पनीर, शहद, शक्कर, नमक, अण्डे, प्याज, काली मिर्च, राई, सिरका, बिल्ली, मेढ़क, मकड़ी, आदि है। उसने लिखा है कि बहुतोंको सेब बुरा लगता है और बहुतोंको उसकी महक। गुलाब और उसकी गन्धके प्रति भी बहुतोंमें अरुचि होती है। इस सूचीसे यह प्रकट होता है कि यह घृणा केवल भोज्य पदार्थों तक ही सीमित नहीं है। थूरिंगने लिखा है कि एक स्त्रीको अपने पतिके मुखपर अण्डे फेंकनेकी इच्छा होती थी तथा एक अन्य स्त्री अपने ऊपर अण्डे फेंकवानेकी इच्छुक रहती थी। भारतीय आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें भी यह लिखा है कि 'दौहद' केवल खाने-पीनेकी तृषिका ही नहीं होता, वरन् वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि इन्द्रियोंके सभी भोगोंका होता है।

गर्भिणी स्त्रियोंमें यह इच्छायें क्यों पैदा होती हैं, इन लालसाओंका कारण क्या है? लालसाओंका गर्भिणीके गर्भसे क्या सम्बन्ध है? खाद्य पदार्थोंके अतिरिक्त अखाद्य पदार्थोंकी ओर गर्भिणीका मन क्यों चला करता है? इन सब प्रश्नोंकी ओर चिकित्सा-शास्त्रके अनेक विद्वानोंने बड़ी खोज की और उनके समाधानके लिए पचीसों सिद्धान्त निकाले हैं।

भारतीय आयुर्वेदके आचार्य चरक कहते हैं—माता और उसकी गर्भस्थित सन्तान—दोनोंका हृदय रसवाहिनी नाड़ीके द्वारा सम्बद्ध रहता है, इसलिए दोनोंमें इसी रसवाहिनी नाड़ीके द्वारा इच्छा उत्पन्न होती है। (चरक, शरीर स्थान, चतुर्थ अध्याय) वाग्भट्टने भी संक्षेपमें ऐसाही लिखा है—मातासे उत्पन्न सन्तानका हृदय माताके हृदयसे सम्बन्ध रखता है, इसलिए गर्भिणीकी इच्छाका विघात करना अच्छा नहीं है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका कहना है कि गर्भिणीकी यह लालसा उसके शरीरकी स्वाभाविक प्रेरणाका निदर्शन है। अर्थात् गर्भिणीके शरीरको जिस-जिस वस्तुकी आवश्यकता होती है, उसके मनमें उसी वस्तुको ही खानेकी प्रेरणा होती है। बहुत सम्भव है किसी हद तक यह बात ठीक हो, परन्तु यह पूर्णतः ठीक नहीं मानी जा सकती। सच बात तो यह है कि संसारके शरीर विज्ञानके आचार्य अभी तक इसी बातका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर सके कि गर्भिणीके शरीरको किन-किन वस्तुओंकी आवश्यकता होती है। यह बात बिल्कुल समझमें नहीं आती कि मिट्टी, बालू, कोयला आदि अखाद्य-वस्तुओंमें कौन-सा ऐसा सार द्रव्य है, जिसकी गर्भिणीके शरीरको आवश्यकता होती है और जो साधारण खाद्य पदार्थोंमें नहीं पाया जाता?

दूसरी बात यह कही जाती है कि गर्भिणीकी इच्छा उन चीजोंके खाने-पीनेकी होती है, जिनमें कै और मतली रोकनेके गुण हों। गर्भके आरंभिक दिनोंमें स्त्रियोंका जी अक्सर मतलाया करता है और उन्हें कै हुआ करती है। इसलिए यदि उनका मन मतली रोकने वाली चीजोंकी ओर चले, तो स्वाभाविक ही है। परन्तु मि० गाइल्स तीन सौ गर्भिणी स्त्रियोंकी परीक्षा करके इस सिद्धान्तके विपरीत नतीजे पर पहुंचे हैं। उनकी परीक्षामें लालसा रखने वाली स्त्रियोंकी संख्या, मतलीसे पीड़ित स्त्रियोंमें भी उतनी ही मिली, जितनी उन स्त्रियोंमें जिन्हें मतलीकी बीमारी कभी हुई ही नहीं। दूसरी बात परीक्षामें यह सिद्ध हुई कि गर्भिणीमें भोजनकी लालसा प्रायः उस समय होती है, जब उसकी मतलीकी बीमारी बिल्कुल अच्छी हो जाती है। फिर कीचड़, कोयला, मिट्टी, लकड़ी, बालू, आदि चीजें ऐसी हैं, जिनसे मतली बन्द होना तो दूर, उलटे जिन्हें खानेसे भले-चंगे व्यक्तियोंको भी मतली होने लगे।

इस सम्बन्धमें यह भी कहा जाता है कि गर्भिणीकी यह लालसा एक प्रकारकी परम्परागत 'स्वयं सूझ' है। मिस्टर गाइल्सका कहना है कि अधिकांश स्त्रियोंकी लालसा इसी परामपरागत 'स्वयं सूझ' का परिणाम है। इस 'स्वयं सूझ' का एक अच्छा उदाहरण नैपोलियनके प्रसिद्ध सेनापति मार्शल जूनोकी पत्नी डचेज दूअबेरान्तेके संस्मरणमें मिलता है। डचेजने लिखा है कि उसकी प्रथम संतानोत्पत्तिके समय किस प्रकार जबरदस्ती यह लालसा उस पर लादी गयी थी। उसके मनमें पहले किसी प्रकारकी कोई इच्छा या लालसा नहीं थी। एक दिन भोजनके समय उसकी मां ने कहा—अरे हां, मैंने तुमसे आज तक यह तो पूछा ही नहीं कि तुम्हारा मन किस चीज पर चलता है। डचेजने सच्ची बात कह दी कि उसका मन किसी बात पर नहीं चलता। इसपर डचेजकी माताको बड़ा आश्चर्य और चिन्ता हुई। उसने डचेजकी सास और पतिसे इस बातका जिक्र किया। बस, उसी दिनसे उसके पति प्रति दिन भांति-भांतिके भोजनके नाम गिना-गिना कर उसकी रुचि पूछने लगे। एक दिन डचेज मिठाई खा रही थी, जिसमें अनन्नासकी खुशबू दी हुई थी। एकाएक उसके मनमें विचार आया कि अनन्नास बड़ा बढ़िया फल है, यद्यपि उसने उससे पहले अनन्नास कभी चखा तक नहीं था; क्योंकि उस समय आवागमनकी आज-जैसी सुविधा न होनेसे गर्म देशोंमें पैदा होने वाले अनन्नासका यूरोप तक पहुंचना दुस्तर होनेके कारण पेरिसके बाजारमें वह एक दुर्लभ फल था। अब तो डचेजको अनन्नास खानेकी लालसा उत्पन्न हो गयी। जब उसे मालूम हुआ कि अनन्नास पेरिसमें नहीं मिलेगा, तब यह लालसा इतनी प्रबल हो उठी कि उसे बोध होने लगा कि यदि अनन्नास न मिलेगा, तो वह मर जायेगी। उसके पतिने इस फलके लिए पेरिस छान डाला। वह एक अनन्नासके लिए पचीस अशर्फियां देनेको तैयार था! अन्तमें नैपोलियनकी साम्राज्ञीकी सहायतासे एक फल बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुआ। मार्शल रातमें उसे लेकर घर पहुंचे। उन दिनों डचेज उठते-बैठते, सोते-जागते अनन्नासको छोड़कर और किसी चीजकी बात ही

नहीं करती थी। मार्शल जब घर पहुंचे, तब वह सोनेके लिए जा चुकी थी, परन्तु अनन्नासका नाम सुनते ही उठ बैठी और उसे उसी समय खाना चाहा। मगर पेरिसके एक बड़े डाक्टरने मार्शलसे कहा था कि अनन्नास गरिष्ठ होता है; उसे रातमें न खिलाना। अतएव मार्शलने उसे उस समय नहीं खाने दिया। डचेज रात भर अनन्नासको पलंगपर रखे हुए दुलराती और हाथ फेरती रही। किसी तरह सवेरा हुआ। फल काटकर डचेजके सामने लाया गया। सहसा उसके मनमें अनन्नासके प्रति बड़ी प्रबल अरुचि उत्पन्न हो गयी। उसकी खुशबूसे उसका जी घबराने लगा। उसने फौरन उसे सामनेसे हटाने और कुमरेके सब खिड़की—दरवाजे खोलनेका हुक्म दिया। बस,उसी दिनसे डचेज जिन्दगी भर कभी रुचिसे अनन्नास न खा सकी। यदि कभी थोड़ा-सा खाया भी, तो अपने ऊपर जुल्म-जबर्दस्ती करके। हां, उसकी खुशबू उसे प्रिय थी। निस्संदेह यह मानना पड़ेगा कि 'स्वयं सूझ' का थोड़ा बहुत प्रभाव गर्भिणी-पर पड़ा करता है। यदि इससे उसके मनमें लालसा उत्पन्न नहीं होती, तो कमसे-कम बढ़ अवश्य जाती है। परन्तु यह 'स्वयं सूझ' ही गर्भिणीकी लालसाका एक मात्र कारण नहीं हो सकती। क्योंकि यदि परम्परासे अपनेसे बड़ी गर्भि-णियोंकी देखादेखीकी यह लालसा उत्पन्न होती, तो कई संतानोंकी जन्मदात्री माताओंमें वह अधिक होती, नवीन माताओंमें कम, परन्तु देखा यह जाता है कि स्त्रियोंके प्रथम गर्भके समय ही यह लालसा अधिक उग्र होती है। मि० गाइल्सकी खोजका परिणाम यह निकला है कि प्रथम प्रसवके समय ही यह लालसा बहुत अधिक मिलती है, और बादके गर्भोंमें क्रमशः कम होती जाती है, यहां तक कि दस या अधिक संतानें उत्पन्न होने पर यह होती ही नहीं।

मि० आर्थर गाइल्सने प्रायः तीन सौ गर्भिणियोंकी परीक्षा की थी, जिनमें उन्हें निन्यानवे स्त्रियोंमें यह लालसा मिली। परन्तु विशेष बात यह है कि इन ९९ में, बहुत बड़ी संख्यामें—यानी ७९ स्त्रियोंमें यह लालसा किसी-न-किसी प्रकारके फलके लिए थी। फलोंमें भी सबसे पहला नम्बर सेबका था। चौतीस महिलाओंने सेब खानेकी इच्छा बतलायी थी। मैं दिन-रात सेब कुतरा करती थी—यह वाक्य अकसर स्त्रियोंके मुंहसे निकला था। सेबके बाद दूसरा नम्बर नारंगीका था, जिसे १३ स्त्रियोंने पसन्द किया था। तरकारियोंमें टोमाटो छः स्त्रियोंको भाता था। बाकीने भिन्न-भिन्न चीजोंकी इच्छा प्रकट की थी।

मि० हैवलाक एलिस कहते हैं—हम लोगोंको यही समझना चाहिए कि यह लालसा देह-धर्म और मनोवृत्तिके झुकावपर अवलम्बित है। यह झुकाव जगत-व्यापक और एक स्वाभाविक—नार्मल—बात है।

गर्भिणीकी लालसा पूर्ण होने या अपूर्ण रह जानेका गर्भिणी या संतानपर क्या प्रभाव पड़ता है, इसपर भी विद्वानोंने खोज की है। चरक कहते हैं—गर्भिणीके दौहृदकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। अवहेलना करनेसे गर्भ नष्ट या विकृत हो जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि-में माता और गर्भको समान इच्छा होती है, इसलिए गर्भिणीके प्रिय और हित पदार्थोंसे उसका उपचार करना चाहिए। वाग्भट्टका कथन है—गर्भिणीकी इच्छाका विघात अच्छा नहीं। गुणकारी वस्तुओंके साथ-साथ यदि अहित वस्तुओंकी ओर गर्भिणीका मन चले, तो उन्हें भी अल्प मात्रामें दे सकते हैं, क्योंकि उसकी इच्छाका विघात होनेसे गर्भ नष्ट अथवा विकृत हो जाता है। सुश्रुतने लिखा—दौहृद न मिलनेसे बालक कुबड़ा, लूला, पागल, मूर्ख, बौना और बिकारयुक्त होता है, परन्तु दौहृद प्राप्त होनेसे बालक पराक्रमी, दीर्घायु और उत्तम होता है।

भोजन-लालसाके अतिरिक्त अन्य इन्द्रियोंके दौहृदके विषयमें सुश्रुत कहते हैं—राजाके दर्शनका दौहृद होनेसे संतान बुद्धिमान, भाग्यशाली होती है, रेशम, पाट और टसरके अच्छे वस्त्र और आभूषणोंका दौहृद होनेसे संतान अलंकारकी इच्छुक और शौकीन होती है। आश्रम, मंदिर और महात्मा आदिके दर्शनकी इच्छा होनेसे पुत्र धर्मशील, सत्पात्र होता है। सर्पादि हिंसक जन्तुओंके देखनेकी इच्छा होनेसे बालक क्रूर और हिंसक होता है। गर्भिणीकी जिस इन्द्रियकी लालसा तृप्त न होगी, संतानकी उसी इन्द्रियमें विकार हो जायेगा।

भारतीय आयुर्वेदके अन्य आचार्योंने भी सुश्रुतसे मिलती-जुलती बातें कही हैं, परन्तु उनके कथन और निरी-क्षणमें कितना सत्य है, इसका निर्णय आधुनिक विज्ञानके द्वारा अभी तक नहीं हो सका है। यूरोपियन विद्वान तो अभी इसी परिणामपर पहुंच सके हैं कि गर्भिणीकी लालसा तृप्त न होनेसे संतान पर उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। हां, यूरोपके जनसाधारणमें इसके विषयमें एक दूसरा ही विश्वास अवश्य फैला है।

बहुतेरे बच्चोंके शरीरपर कहीं-कहीं एक धब्बे-सा दाग हुआ करता है। इस दाग या धब्बेका रङ्ग आस-पासकी

खालके रङ्गसे थोड़ा गहरा होता है और उसका आकार नाना प्रकारका हुआ करता है। यह निशान पैदायशी होता है। हिन्दीमें उसे प्रायः 'लहसुन'के नामसे पुकारते हैं और अंगरेजीमें वह 'मदर्समार्क' कहलाता है। यूरोपके जन-साधारणका विश्वास है कि गर्भिणीकी लालसा पूरी न होनेसे ही उसकी सन्तानपर यह दाग पड़ जाता है। वह यह भी कहते हैं कि गर्भिणीके मनमें जिस चीजकी लालसा होती है, उसके पूरा न होनेपर बच्चेके शरीरका यह दाग, उसी वस्तुके आकारका होता है। हमारे देशमें युक्तप्रान्तकी ओर बहुत-सी जातियोंमें यह धारणा प्रचलित है कि गर्भिणीकी लालसा पूरी न होनेसे उसकी सन्तानकी लार बहुत बहा करती है।।

बहुत-सी जातियोंमें यह लालसा बड़ी पवित्र मानी गयी है। यूरोपके ब्लैक फारेस्टमें—जर्मनी और आस्ट्रियाके सीमा प्रदेशमें—यह दस्तूर था कि गर्भिणी स्त्री किसी भी व्यक्तिके बागमें घुसकर जो फल चाहे, बिना मूल्य ले सकती थी, बशर्ते वह उसे उसी स्थानपर बैठकर खा ले। प्राचीन कालमें इंगलैण्डमें गर्भिणी स्त्रियां अपनी लालसाको पूरी करनेके लिए जो कुछ कर डालती थीं, उसके लिए वे उत्तरदायी नहीं समझी जाती थीं। मिस्टर किरननने अपने एक लेखमें इस नियमका समर्थन किया है और उसे उचित बतलाया है। फ्रान्समें राज-क्रान्तिके बाद जो कानून बने थे, उनमें गर्भिणी स्त्रियोंके अनुत्तरदायित्वको स्वीकार किया गया था। कुछ अन्य कानून-वेत्ताओंके मतानुसार गर्भिणी स्त्रियां किसी अदालतके सामने विचारके लिए उपस्थित नहीं की जा सकती थीं। फ्रान्समें ये नियम नेपोलियन बोनापार्टके शासन-काल तक प्रचलित रहे। नेपोलियनके समयमें वे तोड़ दिये गये, क्योंकि मोशिये पिनाईका मत था कि गर्भिणी स्त्रीकी लालसा अदमनीय बात नहीं है।

कवि

कवि कविताका वरदान बना !
कवि अपनी दुनियादारीमें उलझा भी तो व्यवधान बना !

कविका है चिर मधुमय जीवन
कवि है मधुका गोपन सिहरन
कवि अपने भोले भावोंको छलता है एक विधान बना !

कवि अपनी विस्मृतिका परिचय
परिचय जिसमें कितने युग लय
कवि अपने निखरे वैभवपर छाया है तुनुक वितान बना !

कवि चला वेदना साथ चली
कवि चला कल्पना साथ चली
कवि अपने लिए रुदन, जगके सुख-सपनोंका मुस्कान बना!

कविका मन गीतोंका सागर
छूता असीमको लहराकर
कवि नव यौवनके प्यालेका अरमान बना तूफान बना !

कवि कविताका वरदान बना !

—श्री पन्नालाल महतो 'हृदय'

क्रिमिनल

श्री चित्तरञ्जन दास

अंग्रेजी पैमानेसे चार फुट एक दशमलव एक इञ्च—यह थी शिवदासकी ऊंचाई। रंग था काले और भूरेके बीचोबीच। एक आंख बड़ी थी, एक छोटी—न जलती थीं, न बुझतीं—हमेशा टिमटिमाती रहती थीं। हाथीके दांत दिखानेके होते हैं—बड़े होते हैं। चूहेके दांत कामके होते हैं—छोटे होते हैं। शिवदासके दांत हंसनेके थे—न बहुत बड़े थे और न छोटे। ओठोंके अनुशासनको धता दिखाकर मौके-बे-मौके जब चाहे तब निकल पड़ते थे। बाल छोटे-छोटे थे और सब खड़े रहते थे। कपालसे फासला रखते हुए दोनों आंखोंके बीचमें जो ऊंचाई थी, उसे नाक भी कह सकते हैं, मेंड़ भी कह सकते हैं। ओंठ मोटे थे—बहुत मोटे और कान छोटे थे—बहुत छोटे।

चलते समय दोनों हाथोंको एक साथ, आगे बढ़ाता हुआ वह चलता था—कन्धोंको ऊंचा-नीचा करता हुआ, कभी उचकता हुआ और कभी घसीटता हुआ—पहली थी मेंढक-की चाल और दूसरी सांपकी। खड़ा होता तो एक पैरपर और बैठता तो एक ओर झुककर। बातें करता तो सिरको दाहिनी ओर झुका लेता और हंसता तो पीछेकी ओर झुका लेता।

जब सब हंसते हों, वह गम्भीर हो जाता और जब सब गम्भीर हों, वह एकाएक हंस पड़ता। कभी उसपर दया आती थी और कभी गुस्सा। जब हम लोग उसके पीछे लगते, तब वह खुदको लेकर व्यस्त हो जाता और जब उसके साथ अच्छा बर्ताव करते, तब वह हमें नाहक सजा दिलाने-के लिए मगज-पच्ची करता रहता। मास्टर साहबके क्लास-में आते ही सब खड़े हो जाते, वह बैठा ही रहता। मास्टर साहब उसे देख लेते। सब बैठ जाते, उसे खड़ा रहना पड़ता। जब हम लोग सच बोलते, वह नहीं मानता और जब झूठ बोलते, वह बिना सोचे ही बहक जाता।

* * *

शैशव और बाल्यके वे मधुर दिन निकल गये। फिर आये किशोरके स्वप्न—आकांक्षाकी रंगी हुई कल्पनायें! स्कूलसे गया कालेजमें—फिर शुरू हुआ वास्तवसे संग्राम! नये चेहरे आये, नये साथी आये, नयी रोशनी, नयी आंखें—बसन्त, यौवन—फिर? सब उड़ गया, जैसे पानीका बुल-बुला हो! और आज! आज पतझड़ निकट आ गया है—स्वप्न नहीं है, हरियाली नहीं है। है कर्म, है गाम्भीर्य, है सम्मान। स्वस्ति है—सुख नहीं है। दिन ढलते-ढलते प्रौढ़ताकी सीमापर आ पहुंचा है। आज मैं दर्शन और राजनीतिकी बहसोंमें भाग लेता हूं। छोटोंको उपदेश देता हूं, अर्थात् खुदको दिये गये उपदेशोंको दुहराता हूं, अपराध-का विचार करता हूं और अतीतके पन्ने उलटाता हूं। मैं जज हूं—न्यायाधीश।

खैर, मेरी बातोंको जाने दीजिये। उस दिन एक अपराधीका विचार कर रहा था। एक मामूली-सा केस था। असामी चोरी करने गया था, लेकिन होशियार पुलिसने उसे पकड़ लिया था।

कठघरेमें मुजरिम लाया गया। मैंने उसे देखा—ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे मैं उसे पहचानता हूं। पर याद नहीं आया, कहां देखा है। छोटा-सा आदमी था। रङ्ग था काला—कोयलेके साथ उपमा दी जा सकती है। दाढ़ी और मूंछें थीं, जैसे पोतनेकी कूची हों। आंखोंकी पुतलियां चमक रही थीं।

"तुमने चोरी की है?"

"जी हां!"

"स्वीकार करते हो?"

"जी हां।"

"क्यों? खानेको नहीं था, तो मेहनत-मजदूरी क्यों नहीं करते?"

"जी—खानेकी कमीके लिए नहीं—"

'तो!" मैंने आश्चर्यसे पूछा।

"जी चाहा कि चोरी करूं—इसीलिए की।"

अद्भुत चोर है! ऐसा चोर मैंने पन्द्रह वर्षकी जजीमें नहीं देखा—जी चाहा!

"चोरीके लिए किसीका जी चाहता है?"

"जी हां, मेरा जी चाहता है।"

विचित्र चोर है!

"तुम्हारा नाम?"—आखिर मैंने पूछा।

"शिवदास।"

मैंने कलम उठायी "शि—व—!"अचानक दिमागमें

बिजली दौड़ गयी। स्मृतिके दरवाजेको खोलकर एक अध-मिटा चेहरेने मनमें झांका। कलम रुक गयी। मैं पीछे झुक गया।

"कौन!"

"शिवदास।"

"शिवदास?"

"जी।"

मैंने अपनेको सम्हाल लिया। शिवदास इस अवस्था-में कैसे पहुंचा? खैर, यह बादमें सोचा जायेगा—अभी इसे बचाना है—कैसे बचाऊं? पागल!—

शिवदास बच गया और मैंने उसे अपने घर भेजवा देने-के लिए चपरासीको चुपके-से हुक्म दिया।

अतीतकी स्मृतिमें एक कैसा-सा आकर्षण रहता है! बीते हुएको फिरसे पानेकी इच्छा मनुष्यमें स्वभावगत है। लेकिन बीता नहीं आता—जीवनकी सबसे बड़ी ट्रैजिडि! शिवदास जब मेरे सामने आया, मुझे भी यही मालूम हुआ। शिवदासकी स्मृति इतनी मीठी या असाधारण नहीं थी कि वह मनकी कोठरीमें सयत्न रक्षित हो। तो फिर यह आकर्षण क्यों?—ऐसा ही होता है। छुटपनमें मेरी एक पेन्सिल खो गयी थी। छोटी-सी चीज थी—खो गयी थी तो खो गयी थी। मैंने उसे खोजा तक न था। कुछ दिनोंके बाद वह मुझे वापस मिल गयी। मुझे याद है कि मैं 'मेरी पेन्सिल' कहकर ऐसे जोरसे चिल्ला उठा था, जैसे मुझे दुनियाकी बादशाहत मिल गयी हो।

"साहब वही कैदी लाया गया है।"—चपरासीने खबर दी।

"अन्दर आने दो।"

शिवदास अन्दर आया।

"कहो शिवदास, तुम मुझे पहचान नहीं सकते?"—मैंने पूछा। वह ऐसे प्रश्नके लिए तैयार नहीं था। कुछ देर विमूढ़-सा खड़ा रहा। फिर उसने गौरसे मुझे देखा, तो उसका चेहरा खिल उठा—"रतन, तुम!"—फिर कुछ सम्हलकर बोला—"जी हां, मैंने आपको पहचान लिया।" उसकी आंखें चमककर फिर टिमटिमाने लगीं। नाकसे लेकर ओठ तक दोनों ओर जो रेखायें खिंच गयी थीं, वे फिर मिट गयीं।

"आप नहीं, आप नहीं, तुम कहो, तुम"—मैंने उसे साहस देते हुए कहा, "बैठो, बैठो—वहां नहीं अरे, भाई कुर्सियां काहेके लिए हैं?"

वह अब भी हिचक रहा था, मैंने उसे पकड़कर बैठा दिया। "अरे भाई, तुम ठहरे छुटपनके मित्र। और फिर,यह कोर्ट थोड़े ही है। यहां तो बराबरीका नाता है।"

शिवदासकी आंखोंमें पानी आ गया।

"क्या बात है!"

"कुछ नहीं रतन, कुछ नहीं"—सिरको जोरसे हिलाते हुए उसने कहा। उसका गला भींगा हुआ था।

"देखो शिवदास, मैं अकेला हूं। तुम मेरे ही साथ रहो। तुम्हें किसी बातकी कमी नहीं होगी। और फिर कभी ऐसा मौका नहीं—"

"नहीं रतन, ऐसा न कहो। मैं यह नहीं सह सकूंगा। इतनी दया मैं रखूंगा कहां? तुम्हें यदि मेरे जीवनकी सब बातें मालूम होतीं, तो तुम शायद मुझे अन्दर भी न आने देते।"

"जीवनकी बातें? हां, मैं सुनूंगा सब, तुम कुछ खा-पीकर आराम कर लो।"

वह चुप-चाप बैठा रहा। मैं भी मनोविलासमें डूब गया। वे स्कूलके दिन—दौड़ धूप, वे शरारतें और सजायें—"

"मैंने कहा, एक बिड़ी है?"

"ऐं--हां, नहीं सिगरेट है—लो"

फिर वही चुप्पी—मैं डूब गया अपनेमें, वह डूब गया अपनेमें।

रातको शिवदास अपनी राम-कहानी सुना रहा था। मैं सुन रहा था मंत्रमुग्ध-सा। वह कह रहा था—

तुम्हें तो मालूम ही है रतन, कि पढ़ने लिखनेमें मैं कितना कमजोर था। छः बार परीक्षा देनेपर भी जब मैट्रिक पास न कर सका, तब पढ़नेका उत्साह ही जाता रहा और वैसे पूछो, तो उत्साह कभी था भी नहीं। इसी बीचमें मामाको क्या हो गया कि चालीस सालकी उम्रमें एक शादी कर बैठे। मामी आयीं, अपना घर बसाने। मुझे देखकर जल उठीं। हर-एक बातमें मेरी खबर ली जाती। एक दिन मामाने मुझे बुलाकर पूछा, "कहो लल्ला, अब क्या करनेका इरादा है?"

"जी, जो आप कहें।"

"हूं, मैंने सोचा है। मेरा ख्याल है कि एक दूकान खोलकर तुम्हें बैठा दूं—चला सकोगे न?"

"जी, क्यों नहीं।"—मैं खुश हो गया। इस तरह निकम्मा बनकर नहीं रहा जाता था। मामीको मालूम हुआ तो कुड़कुड़ाती रहीं। मामाको मना करती रहीं, रुपया बरबाद कर रहे हो, समझे?'

मामाने एक न सुनी और कुछ ही दिनोंमें मैं एक दूकानका मालिक बन बैठा। लेकिन मैंने जन्म लेकर जैसे भारी भूल की थी, उसी प्रकार हर एक कार्यमें भूल ही करता रहा। कुछ ही दिनोंमें दूकान उठा देनी पड़ी। मामा कुछ असन्तुष्ट तो हुए, लेकिन मेरे प्रति सहानुभूति ही दिखलायी। मैं फिर निठल्ला बन गया।

कभी-कभी क्या होता है रतन, कि मैं पागल-सा बन जाता हूं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि पृथ्वीके सब मनुष्य मुझसे घृणा करते हैं—मेरी हंसी उड़ाते हैं। क्या मुझे केवल यही मिलना है ? मैं इतना निकम्मा क्यों हुआ? क्या यह मेरा ही अपराध है ? क्या इसमें दुनियाका कोई दोष नहीं ? मुझे ईश्वरके पाससे क्या मिला ? फिर मेरा क्या कसूर है ? स्कूलके साथी मुझे क्यों दुत्कारते थे ? घरके नौकर-चाकर क्यों मेरी तौहीनी करते ? मजाक और घृणाकी उंगली क्यों हमेशा मेरी ओर उठती ? जब सड़कसे निकलता, बच्चे क्यों मेरे पीछे चिल्लाते हुए दौड़ते ? जब घर आता, मामी मुंह बनाकर क्यों पूछतीं—'आ गये लल्ला ?' मेरा कोई मित्र नहीं, कोई साथी नहीं—क्यों ? फिर क्या इच्छा होती है, तुम्हें मालूम है ? इच्छा होती है कि तोपके मुंहपर रखकर ईश्वरकी इस दुनियाको उड़ा दूं और चिल्लाकर कहूं 'ले अपने कियेका फल भोग'—पानी रतन, पानी चाहिये !"

वह खड़ा हो गया और कमरेमें इधरसे उधर इस तरह घूमने लगा, जैसे पिंजड़ेमें शेर हो। पानी पीकर वह कुछ शान्त हो गया। फिर कहने लगा—

"एक दिन मैं सोया हुआ था। नींद नहीं आती थी। बगलके कमरेमें मामा और मामी भी बातें कर रहे थे। उन्हें भी नींद नहीं आ रही थी ? क्या ख्याल आया कि चुपचाप जाकर दरवाजेके पास खड़ा हो गया। कान खड़े कर सुनने लगा। चुपकेसे किसीकी बातें सुन लेना अपराध है। अपराध करनेमें मुझे नशा-सा आता है। शायद पृथ्वीके ऊपर प्रतिहिंसाने ही मुझे अपराधसे आनन्द पाना सिखाया है। खैर, कुछ भी हो, मैं सुनने लगा। मेरे ही बारेमें बातें हो रही थीं।

'निकाल क्यों नहीं देते इस झंझटको ?'

'ऐसा क्यों करूं। उसके साथ हमारा रिश्ता लाभ-नुकसानका तो है नहीं।'

'लाभका न हो, नुकसानका तो है।'

'तुम इसको नहीं समझती। मरते समय जीजीने उसे मुझे सौंपा था। आज वह नहीं है, आज मैं ही उसका सब कुछ हूं।'

'ठीक है अबकी उसके लिए एक बड़ी दूकान खोल देना' —"मैंने और नहीं सुना। वहांसे हट आया। दो-चार जो मेरे कपड़े थे उनकी पोटली-सी बनायी। कम्बलको कन्धेपर डाल लिया और निकल पड़ा। बाहर अन्धियारा था। अमावस्या होगी। स्टेशनकी ओर चला। अपने पैरोंकी आवाजसे ही बीच-बीचमें डर जाता था। लेकिन मैं कहां जा रहा हूं ? खाऊंगा क्या ? पैसा ? न जाने कैसी एक उत्तेजनाने मुझे आच्छन्न कर दिया। मैं लौटा घरकी ओर। दिल धड़क रहा था। धीरे-धीरे सम्हल-सम्हलकर चल रहा था। किसीके जूतोंकी आवाज आयी। मैं छिप गया। एक पुलिसवाला था। वह निकल गया। मैं फिर चलने लगा। लेकिन मैं छिपा क्यों ? मैं मामाके घर चोरी करने जा रहा था।"

वह रुक गया।

'रुको मत'—मेरे मुंहसे निकला।

"धीरेसे मैंने दरवाजा खोला और अन्दर घुसा। घरमें सन्नाटा था और अन्धियारा। खर्राटेकी आवाज आ रही थी। दोनों सो रहे थे। मैं पैर बढ़ाता हुआ सन्दूककी ओर चला। उत्तेजनाने मुझे अपना लिया था। सांस धीरे-धीरे चल रही थी। मैं मन्त्रमुग्ध-सा चल रहा था। बाहर कहीं एक कुत्ता भूंक उठा। खर्राटा बन्द हो गया। मैं रुक गया। मेरी सांस बिलकुल रुक गयी। फिर खर्राटा—मामाने शायद करवट बदली। जीमें जी आया। मेरे पैर फिर बढ़े। इतनेमें यह क्या ! किसी चीजसे धक्का लगा। आवाज हुई। खर्राटा बन्द हो गया।—'चोर, चोर', मामीका गला था। मेरा दिल धड़कने लगा। आंखोंके सामने अन्धियारा छा गया। पसीना छूटने लगा। 'खट'-कमरेमें रोशनी हो गयी। मेरा सिर घूमने लगा—पृथ्वी घूम रही थी। पैर टलने लगे। मैं लुढ़क गया—फिर मुझे याद नहीं।"

"जब आंखें खुलीं तो देखा कि सिरहाने मामा बैठे हैं। मुझे आंखें खोलते देख उनका चेहरा खिल उठा—'कहो लल्ला, कैसी तबीयत है ? मैंने मुसकुराकर फिरसे आंखें बन्द कर लीं।"

"कुछ दिनोंके बाद मैं बिलकुल अच्छा हो गया। वातावरण बदल गया था। मामी अब मुझसे शायद ही बोलतीं। भोजनके समय मामा कुछ बोल लेते तो बोल लेते। मैं उत्सुक था—मामा कुछ पूछते क्यों नहीं ? इससे

तो मैं पहले ही अच्छा था। रोज सवेरे उठकर सोचता—"आज मामा अवश्य ही पूछेंगे। रातको खाना खानेके बाद भी जब कुछ नहीं पूछते तो मैं उस दिनको खोया समझकर दूसरे दिनकी बाट जोहता। इस प्रकार कई दिन निकल गये। मैं और न सह सका। एक दिन मैंने हिम्मत बांधी। मामाके कमरेके पास पहुंचा। मैंने हथेलीसे मुंह रगड़कर एक बार खखार लिया और फिर अन्दर घुसा। मामा शायद कुछ लिखा-पढ़ी कर रहे थे। सिर उठाकर चश्मेकी आड़से एक बार मेरी ओर देखकर बोले—कहो लल्ला—कुछ कहना है?—बैठो।"

"जी हां।—मैंने कहा।"

"कहो।"

"जी उस दिन—मैंने हिम्मत पानेकी चेष्टामें एक बार फिरसे खखारा।"

"ओ, उस दिनकी बात जाने दो। मैं समझ गया हूं। तुम ऊब उठे थे और यहांसे चले जाना चाहते थे—है न—उसमें हुआ ही क्या?—वे हंसने लगे।"

"कितनी बातोंको सजाकर ले आया था। मामाके उत्तरने सब बिखेर दिया। अब क्या बोलता?"

"मैं कुछ दिनोंके लिए घूम आना चाहता हूं"—मैंने कहा। मामाने मेरी ओर ताका। थोड़ी देर तक चुपचाप रहनेके बाद बोले, तो जाओ, तुम्हारे लिए यह जरूरी है। जाओ मैं नहीं रोकता।"

"तो मैं तैयारी करूं?"

"आज ही?"

"जी।"

"अच्छा जाओ।—उन्होंने शब्दोंको किसी तरह निकालकर ही सांस ली।"

"मैं निकल पड़ा।"

"टाटा नगरमें मेरा एक चचेरा भाई रहता है—कृपाशङ्कर—दूरका रिश्ता है। मैं पहुंचा उसके पास। कृपाशङ्कर मुझे देखकर खुश नहीं हुआ। मुझे बुरा नहीं लगा—मुझे देखकर कोई खुश नहीं होता।"

"मुझे एक नौकरी दिला सकते हो, कृपाशङ्कर?"

"देखूंगा।"

"कृपाशङ्कर कोशिश करने लगा। कई महीने निकल गये।"

'कृपाशङ्कर जब पांच बजे घर लौटता, मेरी आंखें जल उठतीं। उसकी आंखोंमें मैं उत्तर खोजता—फिर मेरी आंखें बुझ जातीं। रोज ऐसा होता था। रोज एक ही प्रश्न मैं करता था और रोज मुझे एक ही उत्तर मिलता था।"

"क्या बताऊं लल्ला, अगर तुम कमसे कम मैट्रिक पास भी होते तो चल जाता।—एक दिन उसने कहा।"

"मैट्रिक पास? मैट्रिक पास! मैं सोचता रहा—सोचता रहा, दो दिन तक सोचता रहा। बुद्धके समान एक दिन मुझे भी बोधि प्राप्त हुई। अपराध था, उत्तेजना थी, आनन्द था। रात—हां रात और अपराधमें घनिष्ट सम्बन्ध है—रातको मैं उठा, चुपकेसे धीरे-धीरे। मैं अपनेको भूल गया। क्या कर रहा हूं, इसका खयाल ही न था। मैं खो गया था—अपराधकी उत्तेजना बड़ी मीठी लगती है मुझे। जब अपनेमें वापस आया, तब मैंने खुदसे प्रश्न किया 'यह क्या?' उत्तेजना समाप्त होकर निष्ठुरताकी सीमापर आ गयी थी। उत्तर मिला, ठीक है—आगे चल।' दूसरे दिन मुझे गायब देखकर कृपाने मुझे अवश्य ही खोजा होगा, लेकिन जिस चीजको खोजना था, वह थे उसके सर्टिफिकेट। मैंने उसके सर्टिफिकेट चुरा लिये थे, उसकी आलमारीसे। मनुष्य यदि गलती करता है तो सोचनेमें—हाः हाः हाः—"

वह हंस उठा। उसकी हंसी धीरे-धीरे निःशब्द हो गयी, फिर वह बोलने लगा—

"फिर मैं वहांसे भागकर बनारस गया। वहां मैंने अपनेको कृपाशङ्कर बताना शुरू किया। सर्टिफिकेटोंकी बदौलत मुझे कुछ ही दिनोंमें एक नौकरी मिल गयी।"

"लेकिन मैं काम कैसे करता। कुछ मालूम हो तब न! मुझे एक तरकीब सूझी। दो-चार दिन इधर-उधर करके मैंने उसी आफिसके एक बाबूके साथ इन्तजाम किया। उनका नाम था रामगुलाम! मैं आफिसमें झूठमूठ कलम चलाता और सब काम घर ले आता। रामगुलाम मेरा सब काम कर देता। मैं आधी तनख्वाह उसे दे देता। आधी तनख्वाह, यानी पचीस रुपये। कम नहीं हैं! इतने रुपये उसे क्यों दूं? एक दिन मैंने उससे साफ-साफ कह दिया कि मैं इतने रुपये नहीं दूंगा। वह नहीं माना। मैंने एक दूसरे बाबूके साथ इन्तजाम किया। यहींपर मैंने गलती की और फल भी भोगा। सजा उसीको मिलती है, जो अपनी गलतीको छिपा नहीं सकता। मैंने गलती की, लेकिन छिपा नहीं सका। बस सजा आकर दरवाजेपर खड़ी हो गयी। तीन सालकी सख्त कैदकी सजा मिली।"

"तीन सालके बाद जब मैं जेलसे निकला, तो मुझे मालूम

हुआ कि जीवन-निर्वाहके सब रास्ते मेरे लिए बन्द हैं। क्या करूं, क्या करूं—इतनेमें मुझे किसीने इशारेसे बुलाया—अपराधका इशारा था। फिर अपराध! रोम-रोम खड़े हो गये—आनन्दसे या भयसे, मालूम नहीं। किसीने कानोंमें कहा, तू बदला लेना चाहता है न? मैंने उत्तर दिया, हां बदला, जबरदस्त बदला लेना चाहता हूं। लेकिन किससे? सबसे—दुनियासे, ईश्वरसे, रामगुलामसे। मनमें यह प्रश्न भी उठा था कि नेकी क्या कहेगी? लेकिन यह बहुत कमजोर प्रश्न था। साथ ही उत्तर भी मिलता था कि नेकी तो तुझमें मर चुकी है। तुम्हें आश्चर्य होगा, रतन, कि अपराध करनेके लिए मैंने कभी अपनेको धिक्कारा नहीं।"

"मैं अब पक्का अपराधी हो गया—क्रिमिनल! चोरी, जुआ वगैरह छोटे-छोटे अपराधोंसे लेकर खून, यहां तक कि बच्चे उड़ाकर धनवान पितासे पैसे वसूल करना, वगैरह बड़े-बड़े अपराध किये। एक भी छूटा नहीं। परन्तु इससे भी जी नहीं भरता था। और भी कुछ—इससे भी बड़ा कुछ—ताकि मनुष्यके दिलमें कुछ दिनोंके लिए गहरी चोट बनी रहे—मैं ऐसा कुछ करना चाहता था। मैं पागल-सा हो गया। रामगुलामकी याद आयी।"

"दो दिन तक मैं गङ्गाके किनारे घूमता रहा। तीसरा दिन आंधी और पानीमें डूब गया। रातको भी यही हालत रही। लगातार पानी बरस रहा था। पृथ्वीको डुबाने-के लिए ही मानों मेघने प्रतिज्ञा की हो। वज्रने रह-रहकर ऐसा गरजना शुरू किया कि बार-बार शरीर रोमांचित हो उठने लगा। प्रकृतिके उस प्रलय-नाचमें बिजली कौंध-कौंध उठती, लेकिन उसकी कोई नहीं सुनता। सांय-सांय हवा चल रही थी—वज्र कड़क रहा था—और पानी ऊधम मचा रहा था; प्रकृतिके उस भीषण सुन्दर रूपका वर्णन मैं नहीं कर सकता, लेकिन उसी शुभ मुहूर्त्तमें मैंने रातको अप-नाया। अश्वत्थामाको महादेवने कितनी कुत्सित हत्यामें सहायता की थी, याद है? उस दिन मुझे भी उन्होंने उसी प्रकार पथका सन्धान दिया। मैं निकल पड़ा। आनन्द—चारों ओर आनन्द था। मैं नाचने लगा—मेरा मन नाचने लगा। कमरसे छुरा निकालकर मैंने धारको परख लिया। हाः हाः हाः आगे सुनोगे रतन—हाः हाः—"

शिवदास विचित्र रूपसे हंसने लगा।

मैंने उसकी हंसीको कुछ भी नहीं समझा।

"उसी रातको मैंने रामगुलामसे बदला लिया था, भीषण बदला—हाः हाः, देखोगे? यह देखो—"शिवदासने कमीज ऊपर उठायी। उसके पेटके दाहिनी ओर एक बहुत ही गहरे घावका दाग था।

"यह क्या?"—मैंने आश्चर्यसे पूछा।

"नहीं समझे? तो सुनो—शायद तुम्हें विश्वास ही नहीं होगा। उस अपराधकी उत्तेजनाने मुझे ऐसा उन्मत्त कर दिया कि मैं बिलकुल खो गया और—और रामगुलाम-को याद करते-करते अपने ही पेटमें—हाः हाः—कैसा मूर्ख हूं देखा—हाः हाः।"

"ऐं!" मैं चौंक उठा।

"हां, फिर मैं बेहोश हो गया। फिर मुझे कौन अस्प-ताल लाया और किसने बैंडेज किया—मालूम नहीं। शायद कोई पुलिसवाला होगा। चार महीने अस्पतालमें रहनेके बाद जब मैं अच्छा हो गया, तब आत्महत्या करनेकी चेष्टा-के अपराधमें मुझे दो वर्ष जेलमें रहना पड़ा। मरेको जिला कर मारना सभ्य जगतकी एक सुन्दर प्रथा है। खैर, आगे सुनने योग्य कुछ नहीं है। इसके बाद भी उसी अपराधके साथ आज तक घूम-फिर रहा हूं—यह मूर्ति किसकी है, रतन?"

मैंने सिर घुमाकर मूर्तिको देखा। मेरी स्त्रीकी जो मूर्ति मैंने बनवायी थी, उसीके बारेमें शिवदासने प्रश्न किया था। उत्तर देनेमें कुछ समय लगा। शिवदासने एकाएक अपनी बातोंको मोड़ दिया था न!

"यह—यह मेरी स्त्री है। शादी हुए दो वर्ष भी न हो पाये थे कि मौतने उसे छीन लिया।" मेरा गला भर आया, पुराने घावपर जैसे फिरसे चोट लगी।

"कितने वर्ष पहले शादी हुई थी?'

"बारह-तेरह साल हो गये।—मूर्ति कैसी है? सुन्दर है न?"

"बहुत सुन्दर है।"

"क्यों न होगी—मैं उसीके सहारे जी रहा हूं जो",—मैंने लम्बी सांस ली। दोनों चुप हो गये।

शिवदासने कमरेमें घूमना शुरू कर दिया था। बाहर एक निशाचर पक्षी आवाज कर उठा—दूर उससे भी दूर एक कुत्ता भूंक रहा था। मैंने खिड़कीमेंसे झांका—अंधेरा, केवल अंधेरा था।

"बहुत रात हो गयी है, तुम सो जाओ शिवदास, मैं जाताहूं"—मैंने कहा और उसे अकेला छोड़कर निकल आया।

बाहर धूप निकल आयी। ऊषाका कोमल स्पर्श हमें छूता हुआ निकल गया। मैं जागा। अंगड़ाई ली। फिर उठकर बैठ गया। रातकी बातें याद आयीं—हां, शिवदास! अद्भुत! मच्छरदानीके बाहर सिर निकाल कर मैंने इधर-उधर देखा।

"कल्लू!" मैंने पुकारा।

"जी!" बाहरसे उत्तर देते हुए कल्लू अन्दर घुसा।

"वह जाग गया?"

"जी, वह कैदी?"

"हां।"

"जी—"

"अभी तक सो रहा है?—हां, कल रात भी तो बहुत—"

"जी, सो नहीं रहे हैं।"

"हां, तो जाओ, देखो उन्हें क्या चाहिये?"

"जी वह तो सवेरे उठकर बाहर निकल गये।"

"बाहर निकल गये!"

"जी हां, मालूम होता है कि वे चले गये। आपके लिए यह चिट्ठी छोड़ गये।"

"चिट्ठी!"—मैंने आश्चर्यसे हाथ बढ़ाया। चिट्ठीमें लिखा था—

प्रिय रतन,

तुमने सहानुभूति और दया मुझे दी। मामाके सिवा और किसीने भी मुझे अपना न समझा। मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं और है ही क्या मेरे पास! लेकिन क्षमा करना मुझे! मुझे ऐसा मालूम होता है रतन, कि इस दयामें मेरे प्रति कटाक्ष ही छिपा हुआ है। यह मेरे ही स्वभावका दोष है—बुरा न मानना। लेकिन मैं मैं हूं—मुझे ऐसा ही लगता है। नहीं तो दयाका प्रश्न ही नहीं उठता। मैं इस व्यङ्गको नहीं सह सकता। मुझे क्षमा करना। आज मेरा मन बहुत ही बेचैन हो रहा है! जल्दीसे चिट्ठी खतम कर चला जाता हूं।

रतन, आज मैं—शायद नहीं, अवश्य, कोई बड़ा अपराध करूंगा—हो सकता है खून! शायद अपना ही खून। आत्महत्या न समझना इसे। आत्महत्यामें मर्यादा है, यह खून है। इसमें है केवल हिंसा और प्रतिहिंसा। मुझे यही आनन्द हो रहा है, रतन कि पृथ्वीके दो मनुष्योंको—यानी तुमको और मामाको रुला सकूंगा। सब न सही—कमसे कम दो मनुष्योंसे बदला ले सकूंगा मैं। तुम कृपा करके मामाको खबर दे देना और हो सके तो मेरी कहानीको छपवा देना—शायद दो-चार और रोवें। मेरे लिए इतना ही बहुत होगा।

तुम्हारा शिवदास

पुनश्च—और हां, देखो तुम्हारी स्त्रीकी प्रतिमूर्तिको मैंने तोड़ दिया है। तुम उसे बहुत चाहते थे न? तुमने कहा था कि तुम उसी पत्थरके सहारे आज तक जी रहे हो! उसके टूट जानेसे तुम्हारा दिल एक बार फिर-से टूटेगा। तुम्हें दुःख होगा यह जानकर मुझे आनन्द हो रहा है।

—शिवदास

चिट्ठी खतम हुई। एक ऐसा धक्का दिलमें लगा जिसके लिए मैं बिलकुल तैयार न था। धीरे-धीरे उसी टूटी हुई मूर्तिके सामने आकर मैं खड़ा हो गया।
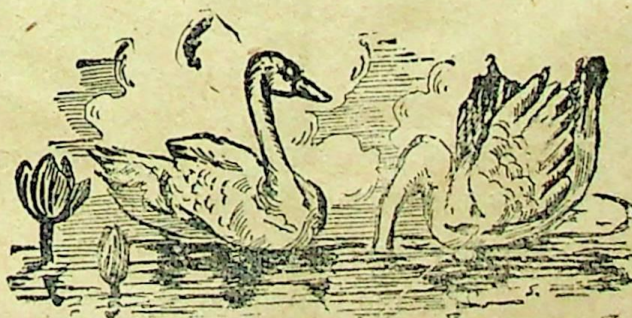
कलीकी कहानी

मैं कली अनजान थी, भ्रममें मुझे किसने भुलाया ?

बन्द सम्पुटमें सुरभि थी,
प्राण थे निस्पन्द मेरे,
नींदसे पलकें झपी थीं !
सुप्त था तन,
सुप्त था मन,
पर, उषामें किरण-रथपर आ मुझे किसने जगाया ?
मैं कली अनजान थी, भ्रममें मुझे किसने भुलाया ?

अधरपर नव हास छाया,
उमड़ आया सिन्धु सुखका,
नयनमें मधु-रस समाया;
प्राण पुलकित
रोम हर्षित,
मुझ कलीको निखिल वैभव-दान दे किसने खिलाया ?
मैं कली अनजान थी, भ्रममें मुझे किसने भुलाया ?

मौन अन्तर्रागिनी थी,
सुप्त थीं उर-कामनायें,
भावनायें जड़ बनी थीं ;
तार अभिनव,
स्पर्श कर सब;
एक ही झङ्कारसे उर-वीणको किसने बजाया ?
मैं कली अनजान थी, भ्रममें मुझे किसने भुलाया ?

हर्षसे दो पल हंसी मैं,
मुग्ध-प्रेमी - मधुप-मनमें
कुछ क्षणों तक ही बसी मैं !
छीन यौवन,
छीन जीवन,
छिन्न कर फिर डालसे रजमें मुझे किसने मिलाया ?
मैं कली अनजान थी, भ्रममें मुझे किसने भुलाया ?

—जितेन्द्रकुमार

गीत

तुम मुझसे कितने दूर रहे।
उरमें, प्राणोंमें, तन-मनमें !
इस पञ्च-भूतके कन-कनमें,
अन्तर-बाहर जब पूर रहे।
तुम मुझसे...

तुम दृष्टि-परिधिसे हो ओझल।
प्राणोंपर और हुए बोझल
(यह मिलन-विरह वह विरह-मिलन)
किसके हित प्राण बिसूर रहे।
तुम मुझसे....

मैंने प्रत्यक्ष कर देख लिया, ओ अगुण, तुम्हारा सगुण-रूप
अब छिपो लाख परदोंमें तुम, कैसे मानूं तुमको अरूप।
तुम प्रणय-भिक्षु मेरे मुझसे,
क्यों व्यर्थ मान-मद चूर रहे।
तुम मुझसे...

—कृष्णचन्द्र शर्मा, 'चन्द्र'

महाराष्ट्रकी मीरा—जना बाई

श्रीकृष्णलाल हरसोरे, साहित्य रत्न

ज्ञानेश्वर कालीन मराठी साहित्यके इतिहासमें जनाबाईका महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी साहित्यमें जो स्थान मीराबाईका है, वही स्थान मराठी साहित्यमें जनाबाईका है। अन्तर केवल यही है कि मीराबाईने एक सम्पन्न परिवारमें जन्म लिया था और वैभवपूर्ण राज-परिवारमें ही उसका जीवन-यापन हुआ, पर जनाबाईका जन्म एक अत्यन्त दरिद्र परिवारमें हुआ था और मराठीके सुप्रसिद्ध कलाकार और भक्त नामदेवके आश्रयमें ही उसके जीवनका अधिकांश काल बीता। उसका जन्म-स्थान तो गोदावरीके तटपर स्थित गङ्गा खेड़ नामक ग्राम था, पर बाल्यावस्थामें ही माता-पिताकी मृत्यु हो जानेके कारण वह नरूसी बमनीमें नामदेवके घर रहने लगी थी। कौन जानता था कि नामदेवके पिता दामाजीके घर एक नौकरानीके रूपमें कार्यकर अपना जीवन-निर्वाह करनेवाली जनी, जनाबाईके रूपमें चिरस्मरणीय होगी और भगवान कृष्णकी भक्तिमें अपनेको भुलाकर एक कवियित्रीके रूपमें मराठी साहित्यके इतिहासमें अपना नाम अमर कर देगी।

नामदेवका समस्त परिवार ही विट्ठल (श्रीकृष्ण) भगवानकी भक्तिके रङ्गमें अनुरञ्जित था और जनाबाई उस परिवारसे पूर्णतः सम्बद्ध थी। अवस्थामें नामदेव जनाबाईसे छोटे थे और उसने उन्हें एक बालकके रूपमें अपनी गोदमें खेलाया था, पर नामदेवकी भक्तिका विकास होनेपर जनाबाईने उन्हें ही अपना गुरु स्वीकार किया और उनके साथ रहकर भजन-कीर्तन करने लगी। कुछ दिनोंमें ही जनाबाईके हृदयमें भी विट्ठल-भक्तिका बीज अंकुरित हो उठा। यही अंकुर नामदेवके सत्सङ्गके जलसे सिंचित हो एक सुन्दर पौधा बना और साधनके बसन्तने उसे भक्ति और ज्ञानके सुन्दर सुरभित पुष्पोंसे सुसज्जित कर दिया। जनाबाई थी तो अशिक्षित, पर भक्तिके प्रसादसे उसका कवि-हृदय जाग्रत हो उठा और वह सुन्दर, भक्तिपूर्ण पद लिखकर प्रभुके गुण-गान करने लगी। एक दिन नामदेवके साथ जनाबाईकी महाराष्ट्रके तत्कालीन सुप्रसिद्ध सन्त और कवि श्री ज्ञानेश्वरसे भेंट हो गयी। जनाबाईकी भगवद्-भक्तिकी तल्लीनता देखकर ज्ञानेश्वर भी मुग्ध हो गये। सन्तोंकी सङ्गतिका प्रभाव अनुभवसे ही जाना जा सकता है। इसी प्रभावके परिणामस्वरूप जनाबाईके पदोंमें प्रौढ़ता आ गयी। उसने कुछ पद तो इतने सुन्दर लिखे हैं कि उसके पदोंमें और नामदेवके पदोंमें अन्तर करना कठिन हो जाता है। यद्यपि जनाबाईके पदोंपर ज्ञानेश्वर और नामदेवकी रचनाका अत्यधिक प्रभाव है, तथापि उसके स्वतन्त्र अस्तित्वसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि हम जनाबाईके पदोंको ज्ञानेश्वरकी योगानुभूति, नामदेवकी सगुणोपासना और उसकी स्वयंकी रसानुभूतिकी त्रिवेणी कहें, तो अत्युक्ति न होगी। उसकी काव्य-सरिताके एक तटपर भक्तिका माधुर्य, दूसरे तटपर योगका गुञ्जन और दोनों तटोंके बीच प्रासादिक प्रेमका निर्मल प्रवाह है। जनाबाईके लगभग ३५० पद उपलब्ध हैं, जो इतने सुन्दर और मधुर हैं कि उन्हें बार-बार गानेपर भी तृप्ति नहीं होती। उसकी विमल भक्तिके प्रवाहमें हृदय सहसा बहने लगता है और मन-मयूर उस प्रवाहमें उसके आनन्द-घन कृष्णकी छबि देखकर थिरक उठता है।

मीराबाईका विवाह उदयपुरके राजकुमार भोजराजसे हो गया था, पर जनाबाई आजन्म अविवाहित ही रही। मीराबाई पतिकी मृत्यु हो जानेपर अपने आराध्य भगवान कृष्णको ही अपना पति मानती रही, और उनकी पतिरूपमें ही उपासना भी करती रही, पर जनाबाई अपने आराध्यदेवको अपना पति ही नहीं, वरन् अपना सर्वस्व ही समझती रही और उनकी उपासना निज पतिके रूपमें नहीं, वरन् जगत-पतिके रूपमें करती रही। जिस प्रकार मीराबाईकी भगवान कृष्णसे एकान्तमें सम्भाषण करनेकी बात प्रसिद्ध है, उसी प्रकार जनाबाई भी अपने आराध्यसे एकांतमें बातें करती थी। उसने अपने एक पदमें कहा है :—

"सर्व सुख पायीं लोले। जनी संगे विट्ठल बोले॥"

अर्थात् जिस समय मेरे साथ विट्ठल बातें करने लगते हैं, उस समय मैं संसारके समस्त सुखोंको अपने चरणोंपर लोटते देखती हूँ।

जनाबाईने ध्रुव, प्रह्लाद, द्रौपदी, शबरी, शुक आदिके उदाहरण देकर अपने पदोंमें ईश्वरकी महत्ताके गीत गाये हैं। उसके कुछ पद राधा-कृष्णके प्रेमपर भी उपलब्ध हैं। इन गीतोंमें भी उसने उपास्यके प्रति अपनी असीम भक्ति प्रगट

की है। इसके अतिरिक्त उसने कुछ पदोंमें गोरा कुम्हार, सेना नाई, चोखा मेला, नामदेव, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव आदि तत्कालीन भक्तोंकी भी प्रशंसा की है और उनके प्रति सम्मान प्रकट किया है। पाठक इस महाराष्ट्रकी मीराके निम्नांकित पदपर दृष्टिपात करें और देखें कि उसने इस एक ही पदमें कितनी सुन्दरतासे तत्कालीन भक्त-मण्डलीका चित्र खींच दिया है —

"विठोबा माझा लेंकुरवाला। संगे लेंकुरांचा मेला॥
निवृत्ति हा खांद्यावरी। सोपाना चा हात धरी॥
पुढे चाले ज्ञानेश्वर। मागें मुक्ताई सुन्दर॥
गोरा कुम्हार मांडीवरी। चोखा जीवा बरोबरी॥
बंका कड़िये बरी। नामा करांगुली धरी॥
जनी म्हणे रे गोपाला। करीं भक्तां चा सोहात॥"

इस पदमें जनाबाईने अपने उपास्य विट्ठलका गृहस्थके रूपमें दर्शन किया है। समस्त भक्तोंको वह उसके पुत्र-पुत्रियोंके रूपमें देखती है। वह कहती है कि "विट्ठल अनेक पुत्र-पुत्रियोंका पिता है। जब वह चलता है, तब उसके साथ बालक-बालिकाओंका एक छोटा मेला ही रहता है। उसके एक कांधेपर निवृत्तिनाथ है, जो दूसरे कांधेपर बैठे हुए सोपानदेवका हाथ पकड़े हुए है। उसके आगे ज्ञानेश्वर और पीछे मुक्ताबाई चल रही है। उसके जङ्घाके एक ओर गोरा कुम्हार और दूसरी ओर चोखा मेला तथा जीवा है। बङ्का कसाई उसकी गोदमें है। नामदेव उसकी करांगुली पकड़े हुए चल रहा है।" यह है जनाबाईके आराध्य विट्ठलका गृहस्थ रूप।

जनाबाईकी नामदेवके प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी और सदैव उनके साथ ही रहा करती थी। जब वे कीर्तन करने लगते, जनाबाई करताल लेकर उनके साथ हो जाती और मधुर सङ्गीत-ध्वनिसे सारा मण्डप गूंज उठता। उसका विश्वास था कि वह अनेक जन्मोंसे नामदेवके साथ रहती आयी है। नामदेवके प्रह्लादके रूपमें प्रगट होनेपर वह पद्मिनी हुई; नामदेवने अङ्गदके रूपमें जन्म लिया, तब वह मन्थरा हुई; नामदेव उद्धव बने, तो वह कुब्जा हुई और अब नामदेवके इस रूपमें आनेपर उसने उनकी दासी जनाबाईके रूपमें जन्म लिया। वह कहती है :—

"चौयुगांचा भक्त नामा उभा कीर्तनीं।
पाठी मागें डोले झांकुनि उभी दासी जनीं॥"

"नामदेव चारों युगका भक्त है; जब वह कीर्तन करनेको खड़ा होता है, तब उसकी दासी जनाबाई आंख बचाकर उसके पीछे खड़ी हो जाती है।"

जनाबाईके योग-विषयक पद अत्यन्त सूक्ष्म भावनाओंसे पूर्ण हैं और वे उसके योग-साधन-विषयक ज्ञान और उपलब्धिके द्योतक हैं। उदाहरणार्थ यह पद देखिये :—

"रक्तवर्ण त्रिकुट स्थान। श्रीहाट पाहे श्वेत वर्ण॥
श्याम वर्ण ते गोल्हाट। नील विंदु औट पीठ॥
वरी भ्रमर गुंफा पाहे। दशम् द्वारी गुरु आहे॥
नव द्वारांते भेदुनी। दशम् द्वारी गेली जनी॥"

इस पदमें संक्षेपमें योग-सिद्धिकी रीति बतलायी है। इसके साधनमें त्रिकुट स्थान (दोनों भौंहोंके बीचका स्थान) में रक्तवर्ण, तालू-स्थानमें श्वेतवर्ण, हृदयमें (प्राण वायुके स्थानमें) श्यामवर्ण और स्थूल देहको नील बिंदुके रूपमें देखना बतलाया है। ब्रह्माण्डमें भ्रमर गुंफा (जाल) और दसवें द्वार (मस्तिष्कके पीछेका भाग) में ज्ञान-सञ्चालन करनेवाली चेतना है। जनाबाई कहती है कि शरीरके नव द्वारोंको पारकर मैंने दसवें द्वारमें प्रवेश किया; अर्थात् योग-क्रियाके द्वारा चेतन स्वरूप परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त किया।

जनाबाईके भक्ति विषयक पद भी बड़े सुन्दर हैं। उदाहरणार्थ यह पद देखिये — वह भगवानकी प्रतीक्षा करती थक जाती है और विह्वल होकर कहती है :—

"कागां न येसी विट्ठला। ऐसा कोण दोष मला!
माय-बाप तूं च धणीं। मला सांभाली निर्वाणी॥
त्वां बा उद्धरिले थोर। तेथं कोण मी पामर!
दीनानाथ दीनबन्धु। जनी म्हणे कृपासिंधु॥"

"हे विट्ठल! मेरा ऐसा कौन अपराध है, जिससे तू नहीं आ रहा है! मेरे लिए तो तू ही माता-पिता और स्वामी है। हे प्रभु! शीघ्र आ और मेरी सुधि ले। तूने तो असंख्य पापियोंका उद्धार किया है, फिर मुझ पापिनीकी क्या गणना? हे अनाथोंके नाथ, दीनबन्धु, कृपासागर, प्रभु, शीघ्र आ।" कितना अगाध प्रेम और दृढ़ बिश्वास है भक्तका अपने भगवानके प्रति।

जनाबाईके इस पदके साथ मीराका निम्नाङ्कित पद भी देखिये। दोनों अपने आराध्यकी एक-सी दीवानी हैं। दोनों ही उनकी प्रतीक्षामें विह्वल हैं—उनके दर्शनकी प्यासी हैं और उन्हें अपने उद्धारके लिए पुकारती हैं :—

"वाल्हा मैं बैरागिणी हूंगी।
जोइ-जोइ भेष म्हारो साहिब रीझे, सोई-सोई भेष धरूंगी॥
सील-सन्तोष धरूं घट भीतर, समता पकड़ रहूंगी।
जाको नाम निरञ्जन कहिये, ताको ध्यान गहूंगी॥

गुरु ज्ञान रंगू तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूंगी ।
प्रेम-प्रीत सूं हरि गुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी ॥
या तनकी मैं करूं कींगरी, रसना नाम रटूंगी ।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, साधां सङ्ग रहूंगी ॥"

यद्यपि जनाबाई सगुण उपासिका थी, तथापि निर्गुण ब्रह्ममें भी उसकी रति थी और अंशतः वह ज्ञानेश्वरके प्रभावसे निर्गुणवादी हो गयी थी। उसका निम्नाङ्कित पद इसी भावनासे निहित है :—

"धरिला पंढरी चा चोर। प्रेमें बांधोनिया दोर ॥
हृदय बंदिशाला केलें। आंत विठ्ठला कोंडिलें ॥
शब्दें केली जड़ा जोड़ी। पायीं विठ्ठला घया वेड़ी ॥
सोहं शब्दें मारा केला। विठ्ठल काकुलती आला ॥
जनी म्हणें गा विठ्ठला। आतां जीवें न सोड़ितुला ॥"

जनाबाईका यह पद निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाकी दृष्टिसे ही नहीं, वरन साहित्यिक दृष्टिसे भी कितना सुन्दर है! जनाबाईकी काव्य-प्रतिभा, रूपककी सजावट और स्नेहपूर्ण भावनाका चित्रण प्रेक्षणीय है। उसने इस पदमें अपने आराध्य विठ्ठलको चोरका रूप देकर हमारे सामने एक सुन्दर रूपक प्रस्तुत कर दिया है। उसने अपने आराध्यको अब ठीक तरह समझ लिया है। जो चोर उसका दिल चुरा कर भाग जाता था, उसे उसने पा लिया है! वह कहती है "आज मैंने पंढरपुरके चोरको पकड़ लिया और उसे प्रेमकी डोरीमें बांध दिया है। मैंने अपने हृदयको बन्दीगृह बनाकर उसमें विठ्ठलरूपी चोरको बन्द कर लिया। शब्द (नाम-स्मरण) के योगसे अपनेको विठ्ठलसे संलग्न किया और उसके पैरोंमें बेड़ी डाल दी। इस प्रकार कैदकर जब मैंने उसे सोहं शब्दकी मार लगाना आरम्भ किया, तब वह व्याकुल होकर खुशामद करने लगा, पर इससे क्या? मैं जब तक जीवित हूं, तब तक उसे कभी भी अपने हृदयके कारागृहसे मुक्त नहीं कर सकती।" किस कठोर हृदय उपास्यका हृदय इस आजन्म कारावासका दण्ड सुनकर गद्गद् न हो उठेगा!

संक्षेपमें जनाबाई सचमुच महाराष्ट्रकी मीरा है। उसकी भक्ति, साधना, ज्ञान, प्रेम मीमांसा आदि सभी कुछ राजरानी होकर भी अपने आराध्यकी लगनमें वैभवको ठोकर मारनेवाली मीराकी साम्यता रखती है। योगमें वह मीरासे आगे है, पर वैराग्य-साधन भी तो एक योग ही है। काव्य-प्रतिभा और रचना-चातुर्यमें वह मीरासे अधिक विकसित जान पड़ती है, जिसका कारण ज्ञानेश्वर और नामदेव-जैसे मराठी साहित्यके प्रमुख सन्त कवियोंका प्रभाव और सत्सङ्ग है, जो मीराको हिन्दीके किसी ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न सन्त कविसे प्राप्त न था। महाराष्ट्रकी इस मीराका मराठी साहित्यमें अपना स्थान है और उसे मराठी साहित्यके कोषको अपने मूल्यवान काव्य-रत्नोंसे समृद्धिशाली बनानेका श्रेय प्राप्त है।
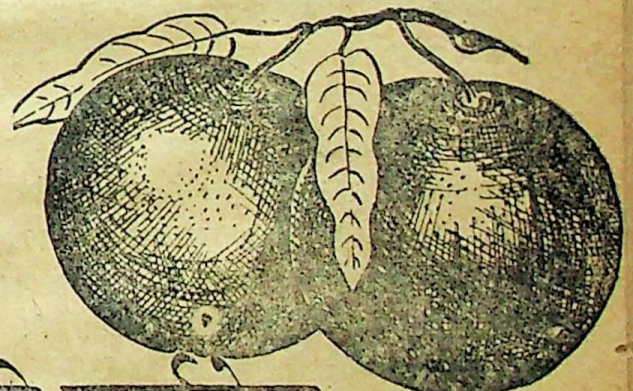
———

चनेवाला

श्री चित्रकार

कालेज होस्टलमें वह रोज ही आया करता था और बाबू लोगोंको अपने चनेका मजा चखाता था। समय उसका बंधा था। यही शाम साढ़े चार बजे। होस्टलके लड़के कालेजसे आते। नहा-धोकर ठण्डे होते और वह अपने 'चना जोर गरम बाबू मैं लाया मजेदार' गाता हुआ हाजिर हो जाता। बिक्री उसकी अच्छी हो जाती। कारण भी था। चना तो स्वादिष्ट था ही, साथ ही उसके लटकोंपर यारोंकी तबीयत डोल जाती। उसके लटकेमें कुछ ऐसी गजबकी मधुरता रहती थी कि लड़के घण्टों सुननेपर भी नहीं थकते। लटकोंकी पंक्तियां एक नये ढङ्गकी रहतीं। वह था भी तो बहुत पुरमजाक आदमी। लटकोंमें ही ऐसी चुटकियां लेता कि लड़के हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाते। कुछ लड़के तो बिल्कुल उससे घुल-मिल गये थे।

नाम तो न जाने उसका क्या था, लेकिन लड़के उसे घासीराम ही कहा करते थे और उमेश तो, जो उसे बहुत मानता था, उसे घासू ही कहकर पुकारता था। उसे त्यौहारमें बख्शीस देता। कभी-कभी फटे कपड़े उसके बदन पर देख, नये दे देता। घासू भी बड़ा एहसान जताता।

* * *

चन्द महीनोंसे उसके लटकोंमें एक परिवर्तन-सा दीखता था और वह कुछ ज्यादा नहीं था, सिर्फ जरा वक्तके साथ-साथ चलता था। दुनियाको सब चालें—सब रद्दोबदल वह अपने गीतोंमें सुना जाता।

आज जो वह होस्टलमें पहुंचा तो उसके चेहरेपर पहले-जैसी उतनी ताजगी नहीं थी। घबराया हुआ था। अनमना हो चना देने लगा। आज लड़कोंको दिलसे वह हंसा नहीं सका। लटके तो शुरू किये उसने आज भी, लेकिन स्वर और मनका कोई सम्बन्ध नहीं दीखता था।

उमेशने टोका—"क्यों जी, क्या हुआ है तुम्हें आज ?"

उसने कह तो दिया—'कुछ नहीं बाबू जी'। मगर एक-ब-एक न जाने क्या उसे ख्याल आया। वह सहम-सा गया। न जाने किस भूली बातको यादकर वह सिहर उठा और धमसे वहीं बरामदेके फर्शपर बैठ गया। आंखें उसकी खुली थीं, पर उनमें कुछ तेज न था। वह बिल्कुल निश्चल हो गया था, श्वास रुक-सी रही थी। चना जोर गरमकी हांड़ी सामने लुढ़क गयी !

उमेश चिल्ला उठा—"अरे यार, इसे क्या हुआ देखो' और पास आकर उसे झकझोरा।

वह जैसे सोया था। अकबका उठा। खड़ा हो गया और जल्दी-जल्दी होस्टलके हातेसे बाहर हो गया। पीछेसे लड़के चिल्लाते रह गये—"अरे अपनी हांड़ी तो ले जाओ।"

'पैसे तो लेता जा।'......

* * * *

शामको उमेश टेनिस खेलकर रैकेट घुमाता अपने कमरेके सामने पहुंचा, तो देखा कि एक नीच कौमका आदमी हाथमें एक कागजका बण्डल लिये खड़ा है। आते ही उसने पूछा—'बाबू जी, उमेश बाबूका यही कमरा है ?'

'हां, क्या है ?'

'कहां हैं वे ?'

'क्यों, मैं ही हूं ?'

'बाबू जी, घासू चनेवालेने यह बण्डल भेजा है...'

'कहां है वह ?'

'बाबू जी, वह तो चल बसा आज सवेरे......हम लोग गरीब ठहरे। कुछ मदद हो जाती तो......'

'अजी......तो हुआ क्या था उसे ?'

'बाबू जी, ठीक तो नहीं कह सकता। मैं उसीकी बगलमें रहता हूं। चार दिन हुए, रातमें उसके कराहने की आवाज सुनायी पड़ी। मैं वहां गया, तो देखकर कलेजा कांप उठा......'

'सो क्या ?'

'देखा तो आंखें चढ़ी थीं। चेहरा बहुत रूखा। डर मालूम होता था। सरपर हाथ रखा तो तवा-सा जल रहा था। कभी-कभी अड़बड़ बक देता था—"घावपर नमक छिड़कनेके लिए ही शायद......दुनिया पाखण्डियों, बदमाशोंका अड्डा......"मैंने चाहा,वह होशमें आये, लेकिन हालत उसकी रद्दी होती गयी। एक दफा तो हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ और खूंखार जानवर-जैसा मेरे ऊपर टूट पड़ा। फिर वह रुक गया। उसके रोएं खड़े हो गये थे।

'तब ?'

'बाबू जी, मैं तो बहुत घबरा गया था। पैसा बिल्कुल पासमें न था। चाहता था कि बाहर जाकर कहींसे इन्तजाम कर डाक्टरको बुला लाऊं। लेकिन जैसे ही मैं निकलने लगा कि उसने मुझे रोका। कांपती आवाजमें बोला—"गलती हुई...माफ करना। दिलकी आगसे खुद ही झुलसता रहा। चन्द घण्टोंका मेहमान हूं...बक्समें कागजका बण्डल है...भैया मेरे, उसे उमेश बाबूको मिंटो होस्टलके कमरा नंबर ३९ में दे देना...और..." फिर तो वह मेरे गलेसे लिपट गया और मुझें इतने जोरसे दबाया कि मेरा दम घुटने-सा लगा। फिर तुरन्त मुझे छोड़ अलग हो गया और लपककर चना कूटनेके लोढ़ेसे अपना सर फोड़ लिया...'

'उफ!' उमेश कांप उठा। बण्डल उसके हाथसे ले, कमरेको खोला और अन्दरसे पांचका एक नोट उसके हाथमें दे दिया।

पड़ोसीने देखा, उमेश बाबूके हाथ कांप रहे थे...और फिर वे जल्दीसे कमरेमें घुस पड़े और किवाड़ बन्द कर लिये।

* * *

उमेशने बण्डलको एक बार उलट-पलटकर देखा, फिर टेबुलपर उसे रख दिया। उसकी आंखोंके सामने चनेवालेकी छाया-सी नाचने लगी......बेचारेके मुंहपर कितनी गहरी विषादकी रेखा खिंची थी। परिस्थितिकी चक्कीसे पीसा मांसका एक लोथड़ा......फिर झोपड़ीके अन्दर लोटता हुआ, बेचैन, गरजता हुआ—खूंखार चेहरा, पड़ोसीको पकड़ना......

सोचता रहा उमेश—जिन्दगीके शेष पलमें दिलके अन्दर दबा हुआ भाव किस तरह ज्वालामुखी-सा फटा!

खटखट......

उमेश चौंक पड़ा—'कौन है?'

'खोलो न।'

'लो...प्रमोद, खोलता हूं...।'

'किवाड़ बन्द कर क्या कर रहे थे?'

'कुछ नहीं, दोस्त, वह हम लोगोंका घासू चनेवाला आज मर गया...!'

'ऐं! तुम्हें किसने कहा?'

'उसीका पड़ोसी आया था। उसने यह बण्डल मेरे लिए भेजा है।'

प्रमोदने बण्डलको खोला। एक फटी पुरानी नोट-बुक-सी थी।

'अरे, इसमें तो कविता......'

'उलटकर देखो। इधर तो इसमें अनेक लटकोंके रफ स्केच हैं।'

प्रमोदने उलटकर देखा, तो आंखें फाड़-फाड़कर उमेशको देखने लगा—'मैं तो पहलेसे ही कहता था कि जरूर इस आदमीमें कुछ छिपा है।'

'पढ़ो न, क्या लिखा है?'

प्रमोद पढ़ने लगा—

"बिखरी हुई अतीतकी स्मृतियां आज मैं लिखने बैठा हूं, इसलिए नहीं कि कोई इसका मूल्य होगा या साहित्यकी कोई अमर चीज होगी। सिर्फ मेरे दिलमें बेचैनी है—किसीको ढूंढ़ नहीं पाता, जिससे कह सकूं। लिख रहा हूं...शायद इससे आत्मामें शान्ति मिले।

बीस वर्ष पहले—

जवानीमें उमङ्ग, आशा, साहस लेकर मैं जिन्दगीके हर एक पलको बिताये जा रहा था। दिलमें ऐसा विश्वास था—किसी भी इन्सानके दिलमें विश्वासका रहना जरूरी है...स्वाभाविक है—कि वह ऊपर ही चढ़ता चला जाय। राह भी मैंने कोई गलत पकड़ी हो, ऐसा कोई नहीं कह सकता; क्योंकि मेरे अभिभावक, पिताजी मुझे कभी गलत रास्तेपर छोड़ न देते। मेरे होनहार होनेमें भी कोई शक करनेकी गुंजाइश नहीं थी, क्योंकि बीस वर्षकी उम्रमें ही मैं एम० ए० का छात्र बन गया था। प्रथम श्रेणीके आनर्सके साथ बी० ए० पास किया था। इरादे बहुत ऊंचे थे। सिर्फ मेरे ही नहीं, बल्कि पिताजी तो शायद बेहद खुश थे, कि उनकी किस्मत जाग उठेगी। लड़का कोई अच्छे ओहदेपर जो पहुंच जायेगा।...कैसी मानवी दुर्बलता है! इन्सान भविष्यको सोचकर क्यों इतना फूल उठता है? भविष्यके इरादेको पूरा होते हुए क्या किसीने कभी देखा है!—नहीं, तो फिर क्यों हर एक इन्सान हवाई किले बनाता फिरता है?—शायद शान्ति मिलती है। लेकिन वैसी शान्ति किस कामकी, जिसके मनोहर क्षण पानीके बुलबुलेकी तरह हैं? यह प्रकृति है कि इन्सान सुखके पलनेमें हमेशा झूलता रहना चाहता है, और मजा यह कि उसको झुलानेवाला भी आसानीसे मिल जाय—कोई तरद्दुद न करनी पड़े! और यही वजह है कि दुनियाके लोग इतने दुखी हैं। मैं भी संसारका एक अदना प्राणी था। पिताका प्यारा लड़का, बेहद प्यार मिला था मुझे। मांकी मृत्यु, जब मैं पांच वर्षका था, हो गयी थी। दो बहनें थीं। पिताजी कलक्टरीमें

किरानी थे। ४०) रुपये मिलते थे। मुझे एम० ए० पढ़ानेकी उनकी औकात न थी, लेकिन हौसला था। अफसोस है कि वे अपना हौसला पूरा होनेके पहलेही दुनियासे कूच कर गये। मुझे परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा। नजदीकमें कोई अपने कहलानेवाले न थे, जो उस वक्त मदद करते। दूरके ममेरे भाई थे। उनकी हालत खुद ही पतली थी। विवश होकर पढ़ना बन्द कर देना पड़ा और नौकरीकी तलाश शुरू हो गयी। एक तो उम्र कम और दूसरे कोई पीठपर हाथ रखनेवाला नहीं। तीन-चार महीनों तक इधर-उधर आफिसोंमें दौड़ता रहा, लेकिन कहीं नौकरी नहीं मिली।

सात सौ पचीस रुपये पिताजीको प्रोविडेंट फण्डसे मिले थे। तीन सौ तो उनके काममें खत्म हो गये। रह गये चार सौ पचीस। इन महीनोंमें दो सौ खर्च हो गये। अब सिर्फ सवा सौ रह गये थे। मेरा दिमाग अब चकरा रहा था, किस तरह घरका खर्च चलेगा। एक दिन मैं पिताजीका बक्स खोलकर देख रहा था। एक चिट्ठी मिली। पन्द्रह वर्ष पहलेकी थी। खतके पढ़नेसे मालूम हुआ—मेरे फूफाके भतीजे पहले यहीं रहते थे। उनको पिताजीने ही पढ़ाया-लिखाया था और वे इस वक्त जमशेदपुरमें हेड मेकनिक थे। मेरी आशा कुछ बंधी। एक पोस्टकार्ड लिख दिया—पिताकी मृत्युकी खबर और अपनी मौजूदा हालत। वे जल्द आवें और मदद करें। लेकिन हफ्तोंपर हफ्ते बीत गये, कोई जवाब न आया। मैं हताश हो उठा। बहनने कहा—'भैया, नौकरी नहीं मिलती तो कहीं लड़के पढ़ानेका काम ढूंढ़ो।'

न जाने क्यों, मैं ट्यूशन करना हेय समझता था। लेकिन मजबूरी थी। इसके लिए भी दो हफ्तों तक परेशान होना पड़ा। पन्द्रह-पन्द्रह रुपयेकी दो ट्यूशनें मिलीं। किसी तरह दिन कटने लगे। लेकिन इन चांदीके तीस टुकड़ोंसे कितने दिन चलते। मैं नौकरी खोजनेसे बाज न आया। एक वर्ष बीत गया। इसी बीच एक और आफतका सामना करना पड़ता। बड़ी बहन बीमार पड़ी। टायफड बुखार हो गया था। रुपये पासमें ज्यादा न थे कि बड़े डाक्टरोंको दिखलाता...फिर भी चालीस-पचास खर्च ही हो गये, लेकिन उसे बचा न सका! उसकी सेवामें गैरहाजिर होनेकी वजहसे एक ट्यूशनसे भी हाथ धोना पड़ा। इसी तरह जिन्दगीके पांच वर्ष कड़ी परीक्षाओंमें बिताने पड़े। बीच-बीचमें ऐसा भी मौका आता, जब दो-दो, तीन-तीन शाम तक फाकाकशी करनी पड़ती। एक बात मैं गौर कर रहा था कि धीरे-धीरे मुझमें तकलीफोंको सहनेकी आदत-सी होती जा रही थी। अब दिल ज्यादा न घबराता था। कभी दिमागमें तूफान उठता—इतना पढ़-लिखकर क्यों मैं इतनी तकलीफ सह रहा हूं?

* * *

हफ्तों तबीयत खराब थी, इसलिए कुछ लिख न सका। आज तीन दिनसे अन्न नहीं खाया है। मैं सौदागर (पड़ोसी) का बहुत कृतज्ञ हूं। दुनियामें मेरा यही एक मीत है!

'बाबूजी, भोजन यहीं ले आऊं' कमरेमें होस्टलके महाराजने आकर पूछा।

'नहीं, ...क्यों उमेश, वहीं चलकर खा लेंगे।'

'नहीं भाई, मुझसे तो वहां न जाया जायेगा...और शायद खा भी न सकूंगा।'

'कुछ खा लेना।...जाओ हम दोनोंका खाना यहीं भेज दो।'

'अच्छा, सरकार।' महाराज चला गया।

उमेशने एक लम्बी सांस लेते हुए कहा—'दोस्त, उसका चेहरा तो भूलता ही नहीं, कितना नेक आदमी था...हां, ...तो आगे...'

प्रमोदने फिर पढ़ना शुरू किया—

—वक्त कभी एक-सा नहीं रहता। जिसकी ट्यूशन करता था, उस लड़केके पिता हाईकोर्टके जज थे। उन्हींकी कृपासे मुझे बैङ्कमें खजानचीकी जगह मिली। पचास रुपये वेतन। किसी तरह दिन तो कट रहे थे। लेकिन बहनकी शादीकी चिन्ता थी। बीस वर्षकी हो गयी थी। मैं एक ऐसे लड़केकी खोजमें था, जो अच्छा हो, काम करता हो, लेकिन तिलक एक पैसा न लगे। एक वर्ष और गुजर गया। बड़ी मुश्किलसे, ईश्वरकी कृपा हुई। एक लड़का वैसा ही मिल गया। शादी हो गयी। लेकिन लड़का दो ही मासके बाद मोटर एक्सीडेण्टसे इन्तकाल कर गया। मैं बौखला उठा। छुट्टी लेकर गया। बहनको ले आया। दो-तीन रोज आफिस गया। फिर मैं भी बीमार हो गया। दो हफ्तों तक खाटपर मियादी बुखारका शिकार बना रहा। अच्छा होनेपर आफिस गया। तीन-चार रोज ही काम करने पाया था कि एक हजार रुपये गबन करनेके चार्जमें गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमा चला और मैं जेल भेज दिया गया। असलमें बात यह हुई थी कि जिस वक्त छुट्टीमें गया था, दूसरे आदमीने, जो मेरी जगहपर काम करने आया था,

सेफकी डुपलीकेट चाभी लोहारसे मेलकर बनवा ली और मेरे कामपर आनेके बाद ले-दे चम्पत हो गया। छिः-छिः मनुष्यका कितना अधःपतन हो गया है!

* * *

सजा भुगतनेके बाद मेरा शरीर आधा भी न रह गया। जेलसे निकलनेपर सोचने लगा—कहां जाऊं, किसके पास जाऊं, क्या करूं। एक बार प्रबल इच्छा हुई—जाकर यह भी तो मालूम करूं, बहन कहां है—कैसी है। लेकिन हिम्मत न कर सका। यों ही दो दिनों तक इधर-उधर गलियों, सड़कोंकी धूल छानता रहा। भूखसे जान जा रही थी। शक्ति बहुत ही क्षीण हो गयी थी। इन दो दिनोंमें मैंने न जाने कितनी दूरी तै की, लेकिन कहीं भी ठहरनेकी जगह नहीं दिखलायी दी। चलते-चलते जब थक जाता, तो किसी कुएं या कलपर पानी भर पेट पी लेता और थोड़ी देर किसी पेड़के नीचे पड़ा रहता। लेकिन नींद नहीं आती। दिमागमें भावोंकी आंधी उठती रहती। कभी भीख मांगनेके भाव आते, तो कभी चोरों और डकैतोंमें मिल जानेका भाव आता—कभी खुदकुशी कर लेनेको भी सोचता और कभी सारे बदनमें आग लग जाती। जाकर अभी उसका खून कर दूं, जिसने मुझपर झूठा इलजाम लगाकर मेरी ऐसी हालतकर दी थी। इरादे पक्के हो जाते और मैं भी तेजीसे खून करने चल भी देता, लेकिन आत्मा डांट बताती—क्या करने जा रहे हो? एकने बेइन्साफी की, एकने जुल्म किया, तो बदला लेकर तुम भी अन्तरको कलुषित कर रहे हो...छिः छिः... लौट जाओ...लौट जाओ! और मैं लौट जाता। इसी तरह मन और आत्मामें संघर्ष होता रहता, लेकिन आज तीन दिन हो गये—बिल्कुल फाकाकशी! सारे पेटमें आगकी लहर-सी धू-धू कर रही थी, दिमागमें सिर्फ एक ही भाव उठता था—कैसे क्षुधाको शान्त करूं। तीन दिन तो सिर्फ पानी पी-पीकर किसी तरह काट दिये। अब जो भी पीता, वह पेटमें जोरका दर्द पैदाकर कै हो जाता—और अब तो बिना मुंहमें अन्न डाले एक कदम चल न सकता था। क्या भीख मांगूं?

भिक्षाटनसे अधम काम कोई नहीं।—अन्तरसे आवाज आयी।

'तो क्या मर जाऊं?' मैंने पूछा।

'दूसरेका भरोसा करना पाप है।'

'लेकिन इस हालतमें अपनेपर भरोसा भी किस तरह कर सकता हूं?'

'इन्सानको दुःखसे घबराना नहीं चाहिये। ये सब परीक्षाएं हैं। इन्सान जो इन परीक्षाओंमें कामयाबी हासिल करता है, वह खरा सोना-सा हो जाता है। परिस्थितिसे लड़ना ही मानवका धर्म है।'

—"चना जोर गरम बाबू मैं लाया मजेदार......" कहता एक बूढ़ा झोला बगलमें लटकाये चला आ रहा था। मेरी आंखें उसपर जा अटकीं और मनने कहा—मांग लो, क्षुधाको शान्त करना बहुत जरूरी है।

......तो भीख मांगूं ...? नहीं, नहीं, यह कभी मुझसे नहीं हो सकता।

जैसे-जैसे वह पास आता गया, मनकी कमजोरी दूनी होती गयी। मालूम होता था, आत्माकी आवाज दब जायेगी।

एक कह रहा था—'मांग लो।'

दूसरी कह रही थी—'नहीं, मेहनत कर खाओ। भीख मांगना पाप है।'

चेहरेपर अजीब परेशानी और बदहवासी छा गयी होगी। चनेवाला मेरे पास आते ही रुका। उसने मुझे गौरसे देखा। उसके चेहरेका भाव एक ऐसा आदमी-सा था, जिसने जिन्दगीमें पहले-पहल किसी अजनबीको देखा हो......

मेरे अन्तरमें अभीतक द्वन्द्व जारी था।

आत्माकी लाज रह गयी। चना जोर गरमवाला खुद ही पहचान गया। मैंने खूब अच्छी तरह देखा—उसकी आंखोंमें आंसू उमड़े चले आ रहे थे। दर्द-भरी आवाजमें बोला—'तुम भूखे दीखते हो, लो यह चने खाओ।' उसने कागजके बने सात-आठ दोने मेरी गोदमें डाल दिये।

मैं हैरतकी नजरोंसे उसे देखने लगा—यह इन्सान है या फरिश्ता।

'देखते क्या हो, पेटकी आग बुझा लो। हरेक इन्सान का यह फर्ज है कि वह शरीरकी रक्षा करे......'

नहीं समझ सका, यह मेरे मनकी आवाज थी या आत्माकी!

'भैया मेरे, जल्दी खा लो, आंखें भूखसे धंसी जा रही हैं, जल्दी खाओ, मैं पानी लेकर आता हूं।'

वह पानी लाने चला गया। भूखकी ज्वाला और भयङ्कर हो उठी। पांच मिनटके अन्दर सब चना साफ हो

गया —बहुत ही मजेदार बना था, वह भी पानी लेकर आ गया। एक लोटा पानी पी गया, तब कहीं जाकर मन ठिकाने हुआ। गयी हुई शक्ति लौटती-सी दीखने लगी।

'पूछो न, यह कौन है?' अन्तरकी आवाज थी।

'भाई, मैं तुम्हारा आजन्म एहसानमंद रहूँगा। तुम्हारा घर कहां है?' मैंने पूछा।

'एहसानमन्दीकी तुम कुछ फिक्र न करो। इन्सान इन्सानकी नहीं मदद करेगा, तो वह इन्सान ही क्यों कहलायेगा।...मैं शहरसे दूर देहातमें रहता हूं। और तुम...'

बीचमें ही काटकर मैं बोला—'अच्छा, भाई यह बता सकते हो, तुम्हें इसमें कितना नफा होता है?'

'कभी एक और कभी डेढ़ रुपये...'

'मुझे भी अपना चेला बना लो। मैं बहुत गरीब हूं...'

उसने फिर मुझे गौरसे देखा—शायद वह मालूम कर लेना चाहता था कि मैं सचमुच उस पेशेको अख्तियार करने जा रहा था कि नहीं।

'दिलसे कहता हूं।'

'तो चलो।'

मैंने देखा, उसके चेहरेपर एक सन्तोषकी झलक आ गयी थी।

और आज—

आज मेरी तबीयत बहुत खराब है। दिलमें बेहद धड़कन है। मालूम होता है, जैसे कोई चीज दिलसे निकल गयी है। मुझे मालूम हो रहा है, कि मेरी मौत करीब है। आज दस वर्ष हुआ चना बेचते। मुझे इस पेशेमें बड़ा आनन्द आने लगा था। लेकिन कभी-कभी जब बीते हुए जीवनपर निगाह दौड़ाता था, तो बहुत बेचैनी हो जाती थी। और इधर महीनोंसे अजीब हालत हो गयी है। इस वक्त सरमें बहुत दर्द है......अगर अच्छा रहा तो कल फिर लिखूंगा......

* * *

उमेशने धोतीके कोनेसे आंखोंके आंसुओंको पोंछते हुए कहा—'दोस्त, यह हाल होता है हमारी यूनिवर्सिटियोंके ग्रेजुयेटोंका। कितनी आशाएं रखते हैं हम और उन सबपर पानी फिर जाता है। सोचते हैं कभी बड़े होंगे, ऐशो-आरामसे जिन्दगी कटेगी और वास्तवमें कटती कहां है—शहरके गन्देसे गन्दे मुहल्लोंमें...... छोटेसे-छोटा काम कर। उफ्, दूसरोंका पाप अपने सर आये! इससे बढ़कर अन्याय और क्या हो सकता है!'

———
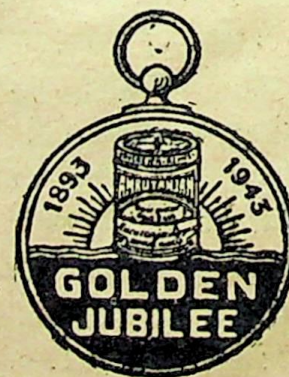
अमेरिकाका धनकुबेर—हेनरी फोर्ड

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल०

आजसे ८० वर्ष पूर्व एक मेघमलिन दिनके तीसरे पहर अमेरिकाके अन्तर्गत थिगिगनके एक साधारण कृषक-परिवारमें एक बालक पैदा हुआ। प्रसूतीको प्रसव-क्रियामें सहायता पहुंचानेके लिए निकटवर्ती शहर डेट्रोयाटसे जो डाक्टर बुलाया गया था, विदा होते समय उसने घरके मालिकको पुत्र-जन्मपर बधाई देते हुए कहा:—"मि० फोर्ड, मैं आशा करता हूँ कि यह बालक किसी दिन उपयोगी नागरिक होगा।" डाक्टरकी वह आशा आज किस रूपमें चरितार्थ हुई है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। वही बालक आज संसारका विख्यात धनकुबेर, विराट व्यवसायोंका मालिक—हेनरी फोर्ड है।

पिताके प्राचीन वासस्थान और कृषि-क्षेत्रके कई मीलोंके अन्दर फोर्डके गगनचुम्बी राजप्रासादोपम महल खड़े हैं। इन महलोंपर खड़े होकर दृष्टि दौड़ाइये—चारों तरफ बहुत दूर तक आपको कितने ही टेढ़े-मेढ़े मार्ग इधर-उधर बिखरे हुए दिखायी पड़ेंगे। इन मार्गोंसे होकर अजस्र दौड़ रही हैं मोटर गाड़ीपर मोटर गाड़ियां। गिनतीका कोई ठिकाना नहीं। सारे संयुक्तराष्ट्र अमेरिकामें आज इस प्रकारके मार्ग जालकी तरह परिव्याप्त हैं और उनपरसे होकर मोटर गाड़ियोंका तांता लगा रहता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार मोटर गाड़ियोंकी बहुतायतका श्रेय उसी बालकको है—जिसने ८० वर्ष पूर्व अमेरिकाके एक साधारण किसान परिवारमें जन्म ग्रहण किया था।

हेनरी फोर्डका आज जहां वासस्थान है, वहां इस समय भी एक कृषि-क्षेत्र मौजूद है। कृषिके विभिन्न विषयोंमें नाना प्रकारकी योजनाओंके अनुसार यहां आज भी कार्य हो रहे हैं। कमसे कम जमीनमें कितने प्रकारकी फसलें उपजायी जा सकती हैं, इसकी परीक्षा आज भी कृषकका यह धनकुबेर बालक करनेसे बाज नहीं आता। कभी एक साथ ही प्याज और फूलगोभीकी खेती कराता और गोभीमें फूल लगनेके साथ-साथ प्याजमें भी फल लग जाते। इस प्रकार बराबर कोई-न-कोई नया प्रयोग इस छोटे-से कृषि-क्षेत्रमें चलता ही रहता है।

थोड़ी दूरपर ही आपको उसके विभिन्न विराट कारखानोंकी सादी चिमनियां आकाशमें चमकती हुई दिखायी पड़ेंगी। इन कारखानोंमें ही उसके जीवनके स्वप्नने वास्तव रूप ग्रहण किया है। आकाशकी ओर सिर उठाये हुए ये चिमनियां मानों अंगुलीके इशारेसे यन्त्र-युगकी महिमाकी घोषणा कर रही हैं।

हेनरी फोर्डसे मिलनेवाले सभी श्रेणीके महानसे महान व्यक्ति होते हैं। उनके साथ वार्त्तालाप करनेके लिए बड़े-बड़े आफिसोंमें फोर्डके लिए सजे हुए कमरे हैं, किन्तु इन कमरोंमें बैठकर वे बहुत थोड़ा समय व्यतीत करते हैं। कम्पनीके विशाल कार्यालय-भवनके इस कमरेसे उस कमरेमें घूम-फिरकर देखने-उननेमें ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता है।

रहन-सहन और वार्त्तालापमें हेनरी फोर्ड बहुत कुछ दार्शनिक-जैसे प्रतीत होते हैं। अमेरिकनोंमें जो सहजात चतुरता एवं जड़वादिता पायी जाती है, उसके साथ अध्यात्मवादका एक अपूर्व सम्मिश्रण फोर्डके चरित्रकी एक विशेषता है। संसारके सर्वश्रेष्ठ धन-कुबेरोंमें जिसका स्थान प्रमुख है, उसे अर्थके प्रति आसक्ति नहीं। यन्त्र-युगका एक ज्वलन्त प्रतीक, किन्तु मन-प्राणसे एक सच्चा आस्तिक एवं ईश्वरवादी। बाह्यरूपमें शिल्पजात वस्तुओंके प्रति उसकी कोई आसक्ति नहीं देखी जाती, किन्तु सुन्दर कलात्मक वस्तुओं या पुरातन वस्तुओंका संग्रह करनेकी ओर उसकी प्रवृत्ति प्रायः देखी जाती है। इन वस्तुओंके सौंदर्यकी ओर यदि कोई संकेत करता, तो फोर्ड कहता, केवल सुन्दर होनेके कारण ही इनका संग्रह नहीं किया है। बरन् इन वस्तुओंका गठन किस रूपमें हुआ है, यह देखनेके लिए। केवल सौन्दर्यको ही वे उतना महत्व नहीं देना चाहते। सौन्दर्यके सम्बन्धमें उनका अभिमत इस प्रकार है:—

"प्रत्येक सुन्दर वस्तुकी कुछ उपयोगिता होनी चाहिये। यदि कोई वस्तु सुन्दर है, तो इसलिए कि वह उपयोगी है।"

फोर्ड प्रायः यह राय जाहिर करते देखे जाते हैं कि दान करना अच्छा नहीं है, किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि स्वयं वह दान करनेसे विरत नहीं रहते। अपने कारखानोंमें उन्होंने अन्धे, लूले, लंगड़े, अपाहिजोंके लिए खाने-पीनेकी व्यवस्था की है—जो व्यक्ति जिस कामके योग्य

है, उसे उसी कामपर उन्होंने नियुक्त किया है। कुछ लोग हेनरी फोर्डको श्रमिकोंका विरोधी समझते हैं, इसके विपरीत ऐसे लोगोंकी संख्या भी कम नहीं है, जो श्रमिकोंके परम हितैषीके रूपमें उनकी प्रशंसा करते हैं।

जिस व्यक्तिने सर्वसाधारणके लिए मोटरगाड़ी सुलभ करके, पुराने ढङ्गकी बहुत-सी सवारियोंके प्रति लोगोंके मनमें विराग उत्पन्न कर दिया है, उसी व्यक्तिका पुराने ढङ्गकी गाड़ीके प्रति एक प्रकारका कौतूहलमिश्रित आग्रहभाव देखकर विस्मय होता है। पूछनेपर वह बताते हैं कि सवारियोंके इतिहासमें ये सब पुरानी सवारियां एक-एक स्तर हैं, इसीलिए इनके सम्बन्धमें मेरा विशेष आग्रह है। भावकताके प्रति वे आक्षेप करते हैं, किन्तु डियरबोर्नमें अपनी परिकल्पनाके अनुसार उन्होंने जो ग्राम-सङ्गठन किया है, उसमें उनके अनुरागकी कोई सामग्री छूटने नहीं पायी है। वहां ऐसी किसी वस्तुका अभाव नहीं है, जिससे शिक्षाको प्रेरणा नहीं मिले। ६-७ बीघांसे कुछ अधिक जमीनमें यह ग्राम बसाया गया है। हेनरी फोर्डने इसका नामकरण किया है "ग्रीनफिल्ड ग्राम"

मि० फोर्ड अनेक व्यक्तियोंके साथ वार्त्तालापके प्रसङ्गमें यन्त्रयुग, श्रमिक समस्या, अर्थ-समस्या, "वाल स्ट्रीट" अनाचार आदिके सम्बन्धमें अनेक बार अपना मतामत प्रकट कर चुके हैं। किन्तु उनके अभिमत एवं कार्य-कलापमें सर्वदा एक प्रकारका विरोध देखा जाता है।

जो व्यक्ति साधारण अवस्थासे बढ़कर इतना महान हुआ है, उसका जीवन अवश्य आरम्भसे ही एक बंधे हुए नियमके अनुसार चलता होगा, इस प्रकारकी धारणा उनके सम्बन्धमें अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। कई साल पहले एक पत्रकारने फोर्डसे पूछा था कि उनकी सफलताके मूलमें जीवन-यात्रा-प्रणालीका कोई रहस्य काम कर रहा है या नहीं, किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि जिस व्यक्तिने श्रम-शिल्पके प्रत्येक कार्यको बंधे हुए नियमोंके अन्तर्गत ला रखा है, उसके जीवनमें इस प्रकारकी किसी सुसम्बद्ध नियमानुवर्जिताका आभास नहीं मिलता। पत्रकारके प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने बिल्कुल सरल भावसे कहा था—

सचमुच आहार-विहारमें फोर्ड किसी निश्चित परिपाटीका पालन नहीं करते। वे बहुत अल्प परिमाणमें भोजन करते हैं और वह भी दिनमें दो बारसे अधिक नहीं। आहार करनेका भी कोई निर्दिष्ट समय नहीं होता। किसी निर्दिष्ट समयमें भोजन न करके जिस समय भूख लगे, उस समय भोजन करनेके वे पक्षपाती जान पड़ते हैं। अनेक समय वह अपने कारखानेमें अपने सहकर्मियोंके साथ एकत्र भोजन करते हैं। उनकी शारीरिक विशेषतासे भी उनके आडम्बरहीन सरल जीवन-प्रणालीका बहुत-कुछ आभास मिलता है। शरीरका गठन पतला, शरीरके प्रयोजनके अतिरिक्त मेदका बाहुल्य नहीं। कृशकाय होनेपर भी सुदृढ़ गठन एवं शक्तिशाली, चलने-फिरनेमें अत्यन्त सतेज और सप्रतिभ। जिस समय वह अपने ग्रीनफिल्ड ग्राममें इधर-उधर घूमते-फिरते हैं या विराट कारखानेके एक आफिससे दूसरे आफिसका परिदर्शन करते हैं, अथवा अपने कार्यकर्त्ताओंके कार्योंका निरीक्षण करनेके लिए दौड़-धूप करते हैं, उस समय उनके चलनेके ढङ्गको देखकर मनमें यह दृढ़ धारणा हुए बिना नहीं रहती कि इस व्यक्तिने किसी प्रकारकी बाधा-विपत्तिकी परवाह न करके समस्त कार्योंका सुव्यवस्थित रूपमें परिचालन करनेके लिए ही जन्म ग्रहण किया है। यह शक्ति केवल शारीरिक शक्ति ही नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि शारीरिक शक्तिकी अपेक्षा भी दृढ़तर एक दुर्जय स्नायविक शक्ति मानो उसके समस्त कार्योंमें प्रेरणा प्रदान कर रही हो।

विशेष किसी रूटीनके अनुसार जीवन परिचालित करनेकी श्रृङ्खला न होनेपर भी साधारणतः यह देखा जाता है कि प्रातःकाल आठ बजते-बजते मि० फोर्ड अपने कारखानेके "एडमिनिस्ट्रेशन बिल्डिग"में आ पहुंचते हैं। यदि कोई विशेष बाधा नहीं हुई तो कारखानेका काम देखते हुए बीचमें वे अपने ग्राम्य विद्यालयके छात्रोंकी पढ़ाईकी खोज-खबर लेनेके लिए भी समय निकाल लेते हैं। छोटे-छोटे बच्चोंके साथ बात-चीत करनेमें उन्हें विशेष आनन्द मिलता है—इस प्रकार कभी-कभी वह देर तक विद्यालय-भवनमें ही रहकर समय व्यतीत करते हैं। अनवरत कार्योंके बीच अपनेको निमग्न कर देनेमें उन्हें आलस्य नहीं मालूम होता। संध्यामें पांच बजेसे पहले वह अपने वास-भवनमें कदाचित ही लौटते हैं।

बातचीतमें मि० फोर्ड अत्यन्त विनयी हैं। उनका कण्ठस्वर भी बहुत कोमल है, सिरमें घुंघराले सादे बाल, ऊंचे ललाटके पास पाटी किये हुए। उनके वृद्ध वयसके पीले वर्ण देह-चर्मकी तुलनामें, उनके बालोंने मानों अधिक सफेदी धारण कर ली है। अपने चिरजीवनमें नाना बाधा-विपत्तियोंके बीच संग्राम करते हुए जो व्यक्ति जयी हुआ है, उसके मुख-नेत्रोंमें उसीकी स्पष्ट झलक दिखायी पड़ती है।

हेनरी फोर्ड, भाग्य-जैसी किसी वस्तुपर विश्वास नहीं करते। जिसे हम दुर्भाग्य समझते हैं, उसके सम्बन्धमें उनकी राय यह है कि इस दुर्भाग्यकी अभिज्ञताको विवेकपूर्वक ग्रहण करनेसे वह भी सुविधामें परिणत हो जाता है। अल्प वयसमें उन्होंने एक बार एक पात्रमें जल भरकर और उसके मुंहको ढंककर स्टोवके ऊपर रख दिया और उसकी परीक्षा करने लगे। जलके अति उत्तप्त हो जानेपर जल-पात्र फट गया और उन्हें चोट लगी। आज तक उनके कपालमें उस आघातका चिह्न मौजूद है। उस दिन उन्हें जो चोट लगी, उस दुर्भाग्यके परिणाम-स्वरूप ही वाष्पकी कितनी शक्ति है, इसका पता उन्हें चला। इसीलिए दुर्घटनासे वह विशेष दुखित नहीं हुए और न अपने सङ्कल्पसे विरत हुए।

१९ वर्षकी आयुमें हेनरी फोर्ड पिताके कृषि-क्षेत्रको छोड़कर डेट्रोयाट शहरमें कामकी खोजमें गये और वहां एक कलकांटेकी दूकानमें काम सीखने लगे। यहीं काम करते हुए उन्हें फुरसतके वक्त घड़ी-मरम्मत करनेका काम सीखनेका मौका मिला। उस समय घड़ीका दाम बहुत ज्यादा था। घड़ी-मरम्मतका काम करते हुए, उनके मनमें हुआ कि यदि घड़ीके विभिन्न कल-पुर्जे मशीनकी सहायतासे व्यापकरूपमें तैयार किये जायं, तो इससे घड़ी बनानेका खर्च बहुत कम हो जा सकता है। मोटर-व्यवसायमें गाड़ीके विभिन्न भागोंके निर्माणमें उनकी तरुण वयसकी इस अभिज्ञताने कम काम नहीं किया है। आज उनके विभिन्न कारखानोंमें मोटर-गाड़ीके अत्यन्त क्षुद्रसे क्षुद्र अंश तक मशीनोंकी सहायतासे तैयार होते हैं।

हेनरी फोर्डकी शुरूसे ही यह आदत रही है कि वह जिस काममें हाथ डालते हैं, उसके सम्बन्धमें प्रत्येक छोटीसे-छोटी बातोंकी जानकारी स्वयं प्राप्त कर लेते हैं। खेतीके काममें सहायता पहुंच सके, इसके लिए कोई इञ्जिन तैयार करनेके दृढ़ सङ्कल्पको लेकर वह कार्यमें प्रवृत्त हुए। इस रूपमें उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किया है, उसके मूल्यको मि० फोर्ड कभी अस्वीकार नहीं करते।

१८८८ ई० में २५ वर्षकी अवस्थामें फोर्डका विवाह क्लारा ब्रायाण्ट नामकी एक सुन्दरी बालिकाके साथ हुआ। इस बालिकाके प्रति पहलेसे ही वह अनुरक्त थे। फोर्डकी यह धारणा है कि इस विवाहके बादसे ही उनके जीवनमें सफलताकी सूचना मिलने लगी। इसी समय इन्होंने 'डेट्रोयाट एडिसन'में इञ्जिनियरका पद ग्रहण किया। स्थानीय नगरमें बिजलीकी बत्तियोंका जितना प्रयोजन होता था, उसकी सुहय्या उपर्युक्त कम्पनी द्वारा होती थी। फोर्ड इस काममें पांच साल तक नियुक्त रहे। फुरसतके समयमें वह अपनी परिकल्पनाके अनुसार नाना प्रकारके कल-पुर्जोंको लेकर परीक्षा-कार्य चलाते। विवाहके बाद पांच वर्ष पूरा होते-न-होते उनका प्रथम 'अटोमोबाइल' तैयार होकर निकला।

इस विषयमें वह कहा करते हैं, "इस प्रकार कुछ करनेके सम्बन्धमें बराबर ही मेरे मनमें विचार उठा करता था, इसलिए कुछ किये बिना मैं रह नहीं सकता था। मनमें सङ्कल्प करके जो काम करनेमें प्रवृत्त हो जाता था, उसे समाप्त करके ही छोड़ता था। आपने मुझसे यह प्रश्न किया है कि मेरी जीवन-यात्रामें कोई नियमित आदर्श रहा है या नहीं। मैं पहले ही कह चुका हूं कि इस प्रकारका कोई आदर्श मेरे जीवनमें नहीं रहा है। जो कुछ मैंने किया है वह इसलिए कि बिना किये रह नहीं सकता था।"

वाष्पद्वारा चालित एक गाड़ीको लेकर बहुत समय तक काम करनेके बाद उन्होंने अकस्मात एक दिन निकोलस ओटो द्वारा उद्भावित गैस-चालित एक इञ्जिनका वर्णन पढ़ा और इससे ही उनकी अपनी परिकल्पना सफल हुई। फोर्डका आज भी यह विश्वास है कि यह घटना उनके जीवनमें आये बिना नहीं रह सकती थी, इसलिए आयी। उनके इस प्रकारके विश्वासपर बहुत लोगोंको आश्चर्य हो सकता है। किन्तु उनका मत यह है कि "विश्वास" को केवल धर्ममूलक संज्ञाके अन्दर सीमाबद्ध रखना ठीक नहीं, उनका कथन है—"विश्वासका अर्थ यह नहीं है कि हमारा मन किसी बातको स्वीकार करता है, बल्कि हम जो कुछ जानते हैं, वही विश्वास है। मनुष्य आज जिसे विश्वास समझता है, उसे किसी समय वह ज्ञानके रूपमें धारण किये हुए था। एक बार जब आपको यह ज्ञान प्राप्त हो गया, तब आप उसे भी खो नहीं सकते। मनुष्य अपने मिथ्या भ्रमको खो सकता है, अपने विश्वासको नहीं। यह विश्वास उसके व्यक्तित्वके साथ ओत-प्रोत भावसे जड़ित हो जाता है।"

किसी एक कार्यको ग्रहण करके बराबर उसीमें संलग्न रहना उचित है—इस प्रकारकी एक धारणा हम लोगोंके मनमें बद्धमूल-सी हो गयी है। किन्तु इस सम्बन्धमें हेनरी फोर्डका कहना है कि किसी विषयमें जहां तक अनुभव संग्रह करना सम्भव हो, वहां तक करके बीच-बीचमें दूसरे काममें हाथ डालना बुरा नहीं है। केवल देखना यही होगा कि किसी कार्यको हम अधूरा नहीं छोड़ दें। अपने जीवन-

में भी मैंने एक-एक उद्भावनामें बहुत समय बिताकर उसे रद्द करके नवीन विषयमें मन लगाया है। फोर्डका मत यह है कि एक विषयमें असफल होनेपर भी उससे हमें जो अनुभव प्राप्त होता है, वह दूसरे विषयमें सफल होनेमें हमें सहायता पहुंचाता है।

धन चाहनेसे ही सब समय धन नहीं मिल जाता। हेनरी फोर्ड इसके लिए विशेष कामना भी नहीं करते। वह स्वयं कहा करते हैं, धन मेरे कार्यमें उप-उत्पादनके रूपमें आया है। सच्चे काममें पुरस्कार प्राप्त होगा ही। अभिज्ञता प्राप्त करना ही जीवनकी सबसे बड़ी बात है। अनुभव प्राप्त करने और दूसरोंको प्राप्त करनेमें सहायता पहुंचानेके लिए ही हम इस पृथ्वीपर आये हैं। विद्याकी तरह अनुभवको भी कोई हमसे छीन नहीं सकता।

सर हेनरी फोर्ड अनेक विषयोंमें अत्यन्त गम्भीर एवं सङ्कोचशील प्रकृतिके व्यक्ति हैं। वह अपने सम्बन्धमें विशेष कुछ कहना नहीं चाहते। वह क्या सोचते हैं, उनकी जीवन-चर्या किस प्रकारकी है, इन सब प्रश्नोंके सम्बन्धमें लोगोंके आग्रहको देखकर उन्हें आश्चर्य होता है। इसीलिए उनके साथ आलाप-आलोचनामें अनेक समय विस्मित होना पड़ता है। आधुनिक मोटर-युगके प्रवर्त्तक हेनरी फोर्डने जिस दिन अपनी उद्भावित प्रथम मोटर गाड़ीको रास्तेपर दौड़ाया था, उनके जीवनका वही सबसे बढ़कर स्मरणीय एवं श्रेष्ठ दिन होगा। इस प्रकारका खयाल करना हम लोगोंके लिए अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। किन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि इस प्रकारकी धारणाको लेकर जब एक पत्र-प्रतिनिधिने आपसे प्रश्न किया कि आपके जीवनमें सर्वश्रेष्ठ दिन कौन-सा है, तो आपने हंसते हुए उत्तर दिया, "जिस दिन श्रीमती फोर्डके साथ परिणय-सूत्रमें मैं आबद्ध हुआ, वही मेरे जीवनका सर्वश्रेष्ठ दिन है।"

यन्त्र-युगके इस श्रेष्ठ व्यवसाय-वीर धनकुबेरके इस उत्तरको सुनकर मनमें यही धारणा उत्पन्न होती है कि ख्याति, यश, प्रतिष्ठा एवं अर्थका भार आज भी इस विश्व-विश्रुत व्यवसायीके प्रेमी मनको, उसकी सुकुमार वृत्तियोंको आच्छन्न नहीं कर सका है *

* "न्यूयार्क टाइम्स"में प्रकाशित एक लेखके आधारपर।

दुर्भिक्षका दायित्व

केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषदके गत अधिवेशनमें भारत-की वर्तमान खाद्य-समस्याके सम्बन्धमें जो वादविवाद हुआ, उसमें विपक्षी दलके सदस्योंने देशमें इस विकट स्थितिके उत्पन्न होनेका सारा दोष भारत-सरकारपर आरोपित किया। उत्तरमें सरकारकी ओरसे सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव, सर रामास्वामी मुदालियर, सर अजीजुल हक और मि० हचिन्सने विपक्षी दलकी ओरसे लगाये गये अभियोगोंका खण्डन करनेकी चेष्टा की। पर उन्हें अपनी इस चेष्टामें सफलता नहीं मिली। वे किसी तरह भी सरकारको निर्दोष प्रमाणित नहीं कर सके। इस सम्बन्धमें उनका दायित्व इतना स्पष्ट है कि वे अपने इस कथनके समर्थनमें कोई युक्तिसंगत तर्क नहीं उपस्थित कर सके। अन्तमें उन्हें बाध्य होकर अपनेको अपराधी स्वीकार करना ही पड़ा। खाद्य-विभागके सेक्रेटरी मि० हचिन्सने इस सम्बन्धमें जो कहा, वह इतना स्पष्ट है कि उसपर विशेष टीका-टिप्पणी करनेकी आवश्यकता नहीं। आपने स्वीकार किया कि इसके पहले खाद्य-समस्याका समाधान करनेके उद्देश्यसे कोई निश्चित नीति निर्धारित नहीं की गयी थी। बर्माके पतनके बाद भी भारत-सरकारने खाद्य-विभाग खोलनेकी आवश्यकता नहीं समझी। मि० हचिन्सने यह भी स्वीकार किया कि यदि देशवासी आधपेट या निराहार रहकर दिन काटें, खाद्यके अभावमें अपनी जगह-जमीन, यहां तक कि स्त्री और बच्चोंको भी बेंचनेके लिए बाध्य हों, गृहस्थ पथका भिखारी हो, तो शासन-यन्त्र परिचालन करनेका कोई अर्थ नहीं। भूतपूर्व खाद्य-मन्त्री सर अजीजुल हकने इस सम्बन्धमें जो युक्ति उपस्थित की, वह समर्थन योग्य नहीं। उन्होंने कहा कि जिस समय मैं खाद्य-विभागका मन्त्री था, उस समय यह विश्वास करना कठिन था कि अवस्था इतनी गम्भीर होगी। गलतियां और भूलें अवश्य हुई हैं, पर वे जान-बूझकर नहीं की गयी हैं। सर ज्वाला प्रसादने भी इसी तरहकी लचर दलील पेश की। आपने बतलाया कि जनवरीसे जुलाई महीने तक भारतवर्षसे खाद्यान्न बाहर भेजा गया, क्योंकि सरकार यह नहीं समझ सकी कि देशमें अन्नका इतना अभाव है। भारत-सरकारने देशकी खाद्य-स्थिति समझनेमें जो भूल की, उसके लिए जो इस तरहकी सारहीन युक्तियां उपस्थित की गयीं, उनका क्या मूल्य है, क्या महत्व है?

आज भारतमें अन्नाभावके कारण जो शोचनीय स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जिससे हजारों आदमी अकाल ही काल कवलित हो गये, हम नहीं समझ सकते कि उसका कारण यह है कि शासन विभागके कर्मचारियोंने स्थितिकी गम्भीरता समझनेमें भूल की। वास्तवमें शासन-विभागके अधिकारियोंने, देशके अन्नाभावका मुकाबला करनेके लिए यथासमय कोई योजना बनानेमें उदासीनता दिखलायी। उनकी इसी उदासीनताके परिणामस्वरुप ही यह अन्न-की दारुण समस्या उपस्थित हुई है। केवल यह कह देनेसे कि वे अवस्थाकी गम्भीरताको अच्छी तरह समझ नहीं सके, उनसे भूल हो गयी, वे अपने दोषसे मुक्त नहीं हो सकते। अपनी सफाईमें दिये गये उनके कथनके विपरीत यह कई तरहसे प्रमाणित कर दिया गया कि उन्होंने अवस्था-की गम्भीरताको दबा देनेकी भी चेष्टा की। श्री पी० एन० सप्रूने बङ्गालके खाद्य-मन्त्री मि० सुहरावर्दीके कथनका उल्लेख करते हुए कहा कि वर्तमान वर्षके प्रथम भागमें उन्होंने कहा था कि बङ्गालकी अवस्था आशाप्रद है। मुसलिम लीगकी ओरसे मि० हसन इमामने मि० सुहरावर्दी-का पक्ष-समर्थन करते हुए कहा कि भारत-सरकारके खाद्य विभागके आदेशसे ही मि० सुहरावर्दीने ऐसा कहा था। मि० हसन इमामके इस कथनसे यह स्पष्ट है कि तथाकथित प्रान्तीय स्वायत्त शासनमें, मन्त्रियोंकी कैसी असहाय

अवस्था है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद्के,भारतकी खाद्य स्थिति सम्बन्धी इस वाद-विवादसे यही प्रतिपादित होता है कि केवल अवस्थाको समझनेकी भूलसे ही देशमें अन्नकी यह विकट समस्या नहीं उपस्थित हुई है, पर इसका मूल कारण यह है कि शासनके अधिकारी अपने उत्तरदायित्वके पालनमें, पराङमुख रहे हैं। यदि किसी स्वाधीन देशके अधिकारी, भारतकी वर्तमान खाद्य स्थिति-जैसी गुरुत्वपूर्ण समस्याके सम्बन्धमें ऐसा निस्सार एवं तत्वहीन तर्क उपस्थित करते, तो वे किसी तरह भी अपने पद और मर्यादाकी रक्षा नहीं कर पाते। उनके विरुद्ध लोकमत इतना प्रबल हो उठता कि उन्हें पदत्याग करके ही अपना परित्राण करना पड़ता। किन्तु भारत पराधीन देश है। इस देशमें, गम्भीर अवस्थाको समझनेमें गलती करके भी शासनके अधिकारी अपने पदोंपर कायम रह सकते हैं। जैसा कि होना चाहिये, इस तर्क-वितर्क और वाद-विवादका कुछ परिणाम नहीं हुआ। दुर्भिक्षका वास्तविक कारण जानने और इसके लिए कौन जिम्मेदार है, इसकी जांच करानेके लिए एक रायल कमीशन बैठानेकी मांग भी स्वीकार नहीं की गयी। हमें इसके लिए कोई चिन्ता नहीं। हमारी समझसे तो इससे हमारे पराधीन जीवनकी दुर्दशा ही उन्मुक्त हुई है। हमारी उस दुर्दशाका प्रतिकार कोई रायल कमिशन या जांच कमेटी नहीं कर सकती।

भारतकी स्वाधीनता और अमेरिका

अमेरिकाके राजनीतिक क्षेत्रमें मिसेस क्लेयर बूथकी बड़ी प्रसिद्धि है। साहित्य-क्षेत्रमें भी आपने काफी ख्याति प्राप्त की है। कुछ दिन पहले आपने अपने एक भाषणमें कहा है कि अमेरिकनोंको इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे भारतवर्ष स्वाधीनता प्राप्त करे। यह सच है कि भारतको स्वाधीनता देनेसे, ब्रिटेनको काफी क्षति उठानी पड़ेगी, किन्तु अमेरिका यदि अङ्गरेजोंकी उस क्षतिको पूरा करनेकी व्यवथा कर दे, तो अङ्गरेजोंको भारतीयोंकी स्वाधीनताकी मांग स्वीकार करनेमें क्या आपत्ति हो सकती है? मि० विल्डेल विल्कीने 'न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून'के वार्षिकांकमें एक लेख लिखा है, जिसमें आपने कहा है कि एक जातिके ऊपर दूसरी जातिका शासन करनेका दिन अब शेष हो गया। किसी देशकी शासननीति क्या हो, यह निर्धारित करनेका अधिकार उस देशके निवासियोंको है, किसी बाहरी जातिको नहीं। पराधीन जातियोंके प्रति सहानुभूति दिखलाकर अमेरिकावासी जो इस प्रकारकी श्रुतिमधुर बातें कहते हैं, उनका आदर्श बहुत उच्च है। पर राजनीतिक क्षेत्रमें जब आदर्श कार्यरूपमें परिणत न हो, तो महानसे महान होनेपर भी उसका कोई महत्व नहीं। आदर्शकी बातें केवल आदर्शके लिए कही जाती हैं, वास्तवमें सुयोग मिलनेपर कोई जाति दूसरी जातिपर अपना प्रभुत्व क़ायम करनेमें नहीं चूकती। और न किसी जातिको पराधीनतासे मुक्त करनेके लिए, क्षतिपूर्ति करनेका भार अन्य कोई जाति अपने ऊपर लेनेके लिए तैयार ही होती। अतः इस प्रकार स्वाधीनताकामी, उदारचेता महानुभावोंके मौखिक सहानुभूति-प्रदर्शनमात्रसे पराधीन भारतवासियोंको सान्त्वना नहीं मिल सकती।

आदर्शोंका सङ्घर्ष

उस दिन प्रयाग विश्व विद्यालयके समावर्तन समारोह के अवसरपर डा० विधानचन्द्र रायने जो भाषण दिया था, उसमें आपने पाश्चात्य और पूर्वी आदर्शोंके सङ्घर्ष एवं उससे सम्बन्धित समस्याओंपर अपने बड़े गम्भीर विचार प्रकट किये हैं। आपने कहा है कि भौतिक सुखकी प्राप्ति ही मानव-जीवनका लक्ष्य नहीं है। भौतिक मार्गका अवलम्बन करनेसे मनुष्यकी सभ्यता, संस्कृति और जीवनकी पूर्णताका विकास नहीं होता। भौतिकवाद और तत्सम्बन्धित वैज्ञानिक साधना, यदि आध्यात्मिकतासे सर्वथा रहित हो तो उससे अनर्थकी ही सृष्टि होती है। वर्तमान महासमर उसी स्वार्थपरायण भौतिकवादका ही परिणाम है। इस सम्बन्धमें भावी संसारकी सभ्यता और संस्कृतिके लिए भारतके अध्यात्मवादका कितना महत्व एवं मूल्य है, इसका भी उल्लेख डाक्टर रायने स्पष्ट शब्दोंमें किया। आपने कहा कि पाश्चात्य भौतिकवादका प्रबल प्रवाह बड़े वेगसे भारतकी तटभूमिपर आघात कर रहा है और हममेंसे अनेक उससे प्रभावित हो, उसकी ओर झुक रहे हैं। पश्चिमी सभ्यताके आडम्बरने हमारी आंखोंमें विभ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि हम अपनेको पाश्चात्य जातियोंसे सभ्यता और संस्कृतिमें हीन समझने लगे हैं। हम अपनी आंखें बन्दकर पाश्चात्य जातियोंका अन्धाधुन्ध अनुकरण कर रहे हैं और अपने देशकी सभ्यता और संस्कृतिको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। सभी विषयोंमें पाश्चात्य संस्कृति और आदर्शकी प्रशंसा करनेकी हमारी प्रवृत्ति हो रही है। हममें आत्मलघुताकी भावना जितनी ही दृढ़ होती जायेगी, उतना ही हम आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता खोते जायेंगे। इस प्रकार डाक्टर रायने हमारे

वर्तमान ग्लानिमय जीवनका वास्तविक रूप सामने रखते हुए, छात्र समाजको आत्म-निर्भर रहनेका उपदेश दिया है। डाक्टर रायके मतानुसार आधुनिक विज्ञानवाद और अध्यात्मवाद मिलकर ही मानव सभ्यता और संस्कृतिका पूर्ण विकास कर सकते हैं। आपने कहा कि जड़ विज्ञानके बलसे युद्धमें विजय प्राप्त करना सम्भव है, पर उससे संस्कृति की रक्षा नहीं की जा सकती। हमें आशा है, डाक्टर रायके इस भाषणसे भारतका तरुण-समाज, परानुकरणकी घृणास्पद प्रवृत्तिको परित्याग कर अतीत भारतकी गौरवमय सभ्यता, संस्कृति और आदर्शके मूल्य और महत्वको समझेगा और उसी मार्गका अवलम्बन कर अपनेमें आत्म-निर्भरताकी भावना लानेके लिए अनुप्राणित होगा।

भारत हितैषियोंकी व्यग्रता

वर्तमान अन्नाभावसे दुर्दशाग्रस्त भारतवासियोंका उद्धार करनेके उद्देश्यसे उस दिन अङ्गरेज धर्माचार्योंके प्रयत्नसे ब्रिटेनके गिर्जाघरोंमें सार्वजनिक प्रार्थना की गयी। पता नहीं भगवानने ब्रिटेनके इन परदुखकातर महानुभावोंकी प्रार्थना स्वीकार की या नहीं, पर हम जानते हैं कि भारतकी इस दयनीय स्थितिके लिए भगवान जिम्मेदार नहीं। न वे कुपित होकर ही भारतीयोंको किसी गुरुतर अपराधके लिए यह यातनापूर्ण दण्ड दे रहे हैं। इसलिए क्या वे अङ्गरेज पादरियोंकी प्रार्थना स्वीकार कर इसका सारा दोष अपने सिर पर लेनेके लिए तैयार होंगे? उस दिन भारतकी व्यवस्थापिका परिषदमें स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि भारतको इस सङ्कटमें डालनेके लिए वस्तुतः कौन जिम्मेदार है। किसकी अवहेलना और उदासीनतासे, अन्न बिना हजारों आदमियोंको अपनी इहलीला संवरण करनी पड़ी। इसकी सारी जिम्मेदारी सरकारपर है। सरकारकी ओरसे इस आरोपका विवाद भी नहीं किया गया। और सभी दलों और सम्प्रदायोंके प्रतिनिधियोंने एक स्वरसे प्रमाणित किया यह दुर्भिक्ष दैवकृत नहीं, मनुष्य-कृत है। भारतवर्षकी प्रजाके जो भाग्यविधाता हैं, उन्हींकी गलतीसे, उन्हींकी भ्रान्तिसे देशमें यह हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित हुआ है। सम्भवतः इङ्गलैण्डके पादरियोंने इस वास्तविक तथ्यको हृदयङ्गम नहीं किया और न करनेकी चेष्टा ही की। अन्यथा भारतवासियोंको इस सङ्कटसे मुक्त करनेके लिए वे केवल भगवानसे ही प्रार्थना कर अपना कर्तव्य पालन न करते, परन्तु मनुष्यकी हैसियतसे इसके लिए जो जिम्मेदार हैं, उन्हें अपने कर्तव्यका ज्ञान कराते। इस समय ब्रिटिश शासनाधिकारी ही भारतके सर्वेसर्वा हैं। उनकी कृपा न होनेसे भारतवासियोंका इस सङ्कटसे उद्धार करनेका कोई साहस नहीं कर सकता। आज समस्त विश्वका कल्याण करनेमें जो विशेष तत्पर हैं, ब्रिटिश शासकोंकी अनुमति बिना वे भी भारतका हित करनेमें असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में केवल भगवानसे ही प्रार्थना कर सन्तुष्ट होनेके बजाय, यदि ये भारत-हितैषी मि० चर्चिल और मि० ऐमरीकी भारत सम्बन्धी वर्तमान नीतिमें परिवर्तन लानेकी विशेष व्यग्रता दिखलाते, तो वास्तवमें भारतवासियोंका कुछ उपकार होता।

केवल दुराशा

हालमें ही लन्दनकी एक सभामें पार्लमेंटके श्रमिक सदस्य मि० कोवने भारतवर्षके वर्तमान दुर्भिक्षके लिए भूतपूर्व वायसराय लार्ड लिनलिथगो और भारत मन्त्री मि० ऐमरीको, दोषी ठहराया और कहा कि इन दोनोंपर खुली अदालतमें, मामला चलाना चाहिये। भारतवासियोंके प्रति अपनी आन्तरिक सहानुभूति प्रदर्शित कर,, मि० कोवने इस सम्बन्धमें जो अपना स्पष्ट मन्तव्य प्रकट किया है, उसके लिए वह भारतवासियोंके धन्यवादके पात्र है, पर उन्हें मालूम होना चाहिये कि भारतवर्ष स्वाधीन देश नहीं है। भारतवर्ष यदि स्वाधीन होता, तो शासनाधिकारी, देशकी दुर्दशाकी ओर इस प्रकारकी उदासीनता दिखलाकर एक दिन भी अपने पदोंपर कायम नहीं रह सकते। पर आज भारतवर्ष उस स्थितिमें नहीं है कि खुली अदालतमें शासनाधिकारियोंके कार्योंकी आलोचना हो और वे अभियुक्त प्रमाणित किये जायं। जब तक भारतवासियोंके हाथमें देशका शासनसूत्र नहीं आता, तब तक इस प्रकारकी आशा करना दुराशामात्र है।

लेबनान और भारत

मित्र राष्ट्रोंकी ओरसे निरन्तर उच्च स्वरसे घोषणा की जा रही है कि वर्तमान युद्ध प्रजातन्त्रकी प्रतिष्ठा और और पराधीन देशोंकी स्वाधीनताके लिए लड़ा जा रहा है, पर वास्तवमें साम्राज्यवादी राष्ट्र किसी भी हालतमें अपनी साम्राज्य-लिप्साको छोड़नेके लिए तैयार नहीं दीखते। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हालमें ही लेबनानमें देखनेको मिला है। विगत यूरोपीय महासमरके बादसे यह क्षुद्र देश फ्रांसके शासनादेशमें रहा है। अब वह स्वाधीन होना चाहता है, पर फ्रांस अपनी स्वाधीनता खोकर भी लेबनान क स्वाधीनता उपभोग करने देना नहीं चाहता। किन्तु

लेबनान-निवासी, अपने जन्मसिद्ध अधिकारको लेनेपर तुले हुए हैं। उनकी सङ्गठित मांगके सामने उनके अभिभावक बननेके प्रयासी फ्रेञ्च अधिकारोंकी चेष्टा व्यर्थ हो गयी। साम्प्रदायिक भेदनीति वहां कुछ काम न कर सकी। लेबनानके मुसलमानोंके धर्मनेता या मुफ्तीने स्पष्ट शब्दोंमें फ्रेञ्च जेनरल कातरूसे कह दिया कि हम सभी लेबनानवासी हैं। देशकी स्वाधीनताके प्रश्नपर ईसाइयों और मुसलमानोंमें किसी तरहका भेद नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जेनरल कातरू यह देखना चाहते थे कि लेबनानके ईसाइयों और मुसलमानोंमें भेद डालकर वहां फ्रांसका प्रभुत्व कायम किया जा सकता है या नहीं, परन्तु उनकी यह चेष्टा व्यर्थ सिद्ध हुई। लेबनानवासियोंके दृढ़ सङ्कल्पके सामने फ्रांसीसियोंको झुकना पड़ा। स्वाधीनताकी मांग उपस्थित करनेके लिए लेबनानके प्रेसिडेण्ट और जिनमन्त्रियोंको गिरफ्तार कर लिया गया था, उन्हें छोड़को बाध्य होना पड़ा और उन्हें अपने-अपने पदोंपर पुनः प्रतिष्ठित करना पड़ा। यही नहीं, जिन मोशिये हेल्लके आदेशसे, लेबनानके नेताओंको गिरफ्तार किया गया था, उन्हें वहांसे हटा लिया गया। इसके बाद अब साम्राज्यवादी कूटनीतिकी कोई चाल लेबनानकी स्वाधीनताको क्षुण्ण नहीं कर सकती और वह एक दिन अवश्य ही पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर रहेगा। लेबनानके सम्बन्धमें, फ्रांसीसियोंकी इस नीतिका समर्थन ब्रिटिश सरकारने किया है और यह भी कहा जा सकता है कि ब्रिटेनके ही बहुत कुछ दबावसे फ्रांसीसियोंको इस नीतिका अवलम्बन करना पड़ा है। लेबनानकी इस घटनासे, यह स्पष्ट दिखायी दे रहा है कि वहांके राष्ट्रीय नेताओंके साथ समझौता करनेके लिए ब्रिटिश सरकारने जिस नीतिका समर्थन किया है, भारतके सम्बन्धमें, वह स्वयं उस नीतिका अवलम्बन करनेको तैयार नहीं है। लेबनानकी इस घटनाके सम्बन्धमें टीका करते हुए मैंचेस्टर गार्जियनने लिखा है कि जो नाजियोंके प्रभुत्व और अत्याचारके विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं, यदि वे ही लेबनानकी दमननीतिका समर्थन करते, तब संसारके लोग यही समझते कि मानव-स्वाधीनताके आदर्शोंके सम्बन्धमें जो ये बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, उनमें कुछ सार नहीं। पर भारत सम्बन्धी ब्रिटिश सरकारकी नीति तो संयुक्त राष्ट्रोंके इस आदर्शकी सारहीनता स्पष्ट रूपसे प्रकट कर दी है। ब्रिटिश सरकारके अधिकारी अपने स्वार्थ-साधनके लिए, अन्य क्षेत्रोंमें चाहे जितनी उदारतापूर्ण नीतिसे काम लें, पर भारतके सम्बन्धमें उनकी वही पुरानी अनुदार नीति बनी हुई है, और आगे भी बनी रहेगी। ब्रिटेनके ही समर्थन से लेबनानके प्रेसिडेण्ट और मन्त्रीगण रिहा किये गये और वहांकी दमननीतिका समर्थन करनेवालोंको वहांसे हटाया गया, पर भारतमें, नाजियों और फैसिस्टोंके प्रत्यक्ष विरोधी, कांग्रेसी नेताओंको जेलोंमें बन्द कर रखा गया है। देखें, इस दुरंगी नीतिका अन्त कब होता है ?

'विश्वमित्र' प्रेस, १५।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे नवलकिशोर सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

REGD. NO. C. 2230